निर्देशन के मूल तत्त्व

लेखक
डा० (श्रीमती) इन्दु दवे
एवं
डा० अरविन्द फाटक



राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
जयपुर

शिक्षा तथा समाज-कल्याण मन्त्रालय भारत सरकार की विश्वविद्यालय ग्रन्थ योजना के अन्तर्गत राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी द्वारा प्रकाशित

प्रथम संस्करण १९७३

मूल्य १५.००

प्रकाशक
राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
ए २६/२ विद्यालय मार्ग तिलक नगर
जयपुर-४

मुद्रक
घनश्याम आर्ट प्रिन्टर्स
मनिहारों का रास्ता
जयपुर-३

प्रस्तावना

भारत की स्वतन्त्रता के बाद इसकी राष्ट्रभाषा को विश्वविद्यालय शिक्षा के माध्यम के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रश्न राष्ट्र के सम्मुख था। किन्तु हिन्दी में इस प्रयोजन के लिए अपेक्षित उपयुक्त पाठ्य पुस्तकें उपलब्ध नहीं होने से यह माध्यम-परिवर्तन नहीं किया जा सकता था। परिणामतः भारत सरकार ने इस न्यूनता के निवारण के लिए वैज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्दावली आयोग की स्थापना की थी। इसी योजना के अन्तर्गत पीछे १९६९ में पाँच हिन्दी भाषी प्रदेशों में ग्रन्थ अकादमियों की स्थापना की गयी।

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी हिन्दी में विश्वविद्यालय स्तर के उत्कृष्ट ग्रन्थ निर्माण में राजस्थान के प्रतिष्ठित विद्वानों तथा अध्यापकों का सहयोग प्राप्त कर रही है और मानविकी तथा विज्ञान के प्रायः सभी क्षेत्रों में उत्कृष्ट पाठ्य ग्रन्थों का निर्माण करवा रही है। अकादमी चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के अन्त तक तीन सौ से भी अधिक ग्रन्थ प्रकाशित कर सकेगी ऐसी हम आशा करते हैं। प्रस्तुत पुस्तक इसी क्रम में तैयार करवायी गयी है। हमें आशा है कि यह अपने विषय में उत्कृष्ट योगदान करेगी।

चन्दनमल बैद
अध्यक्ष

हमारे विद्यार्थियों को
जोकि इस पुस्तक सृजन
के मूल प्रेरणा-स्रोत
रहे हैं।

प्राक्कथन

बीसवीं शताब्दी की शैक्षिक विचारधारा में दो आग्रह स्पष्टरूपेण उभरते हुए दृष्टिगोचर होते हैं—और वे हैं अन्वेषित तथ्यों का व्यावहारिक प्रगति प्रणालियों में अनुप्रयोग तथा सैद्धान्तिक चिन्तन का प्रकार्यात्मक कार्य-योजनाओं में संपुष्टिकरण। इसी प्रकार्यात्मक अनुप्रयोग का एक प्रतीक-पुष्प निर्देशन तथा उपबोधन के नूतन विधान का स्वरूप लेकर शिक्षा के विकासमान उपवन में प्रस्फुटित हुआ। इसके सरस सौन्दर्य-सौरभ ने शिक्षाविदों का ध्यान आकर्षित किया तथा उन्होंने इसे अपने कार्य-कानन में सहर्ष स्वीकृति भी प्रदान की। किन्तु आवश्यक पोषण के अभाव में इसका नवजात कलेवर कुम्हलाया सा प्रतीत होता है। वास्तविकता तो यह थी कि इस नूतन कुसुम के मूलभूत स्वरूप तथा इसके विशिष्ट भरण पोषण के विषय में इन कार्यकर्ताओं को पर्याप्त अभिज्ञता नहीं थी। अतएव इस पुस्तक के लेखकों ने आवश्यक समझा कि निर्देशन-उपबोधन के वास्तविक स्वरूप को स्पष्ट करते हुए भारत में इसके समुचित विकास तथा इसके द्वारा शिक्षा के समुन्नयन के विषय में कुछ प्रकार्यात्मक प्रयास किया जाय। प्रस्तुत पुस्तक जो कि हमारे कई वर्षों के अध्ययन अध्यापन क्षेत्रीय कार्य तथा शोध अनुभव पर आधारित है इसी प्रयास का साकार परिणाम है।

आदिकाल से मानव जीवन के विविध आयामों में अन्तरंग रूप से घुले मिले निर्देशन के मूल महत्व को उभारते हुए हमने सर्वप्रथम उसके विकासात्मक स्वरूप का एक समाहारी चित्र प्रस्तुत किया है। तत्पश्चात विविध वर्तमान विषयों से उसके मूलाधारों का सतर्क सम्बन्ध-स्थापन करके आधुनिक युग के विभिन्न क्षेत्रों में इसकी सहज सर्वव्यापिता दर्शाई है। इस सबल सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि के सन्दर्भ में वास्तविक निर्देशन सेवाओं के परिचय तथा एक प्रकार्यात्मक निर्देशन-कार्यक्रम के संगठन की रूपरेखाओं को अधिक अर्थपूर्ण बनाने का प्रयत्न किया गया है।

इस समग्र चित्र के स्पष्टीकरण के पश्चात भी निर्देशन के क्षेत्रीय कार्मिक की कतिपय कार्य जिज्ञासाएं हो सकती हैं यथा व्यक्ति के अध्ययन हेतु किस प्रकार की प्रविधियां निर्मित की जावें? उनका प्रयोग किस प्रकार किया जावे? व्यक्ति को सर्वांगीण समंजन हेतु सहायता देने के लिए किस प्रकार की पर्यावरणीय सूचनाएं किन साधनों द्वारा कितने स्तरों पर संकलित की जावें? तत्पश्चात उनका विधिवत प्रसारण किस भांति किन प्रविधियों द्वारा हो? एवं कितने ही व्यावहारिक प्रश्न हो सकते हैं जो कि कार्यकर्त्ता के मानस में उलझन पैदा करते हैं। अध्याय व ७ में इस प्रकार के प्रश्नों का समाधान करने का प्रयत्न किया गया है।

किसी भी वनानिक-तकनीकी क्षेत्र म उपरोक्त सभी प्रकार की प्रवृद्धताए प्राप्त कर लेन पर भी एक मौलिक आवश्यकता जोकि क्षेत्रीय क्रियान्विता को प्रभावित करती है वह है कायकर्त्ताओ के विधिवत प्रशिक्षण तथा उनके अपेक्षित कार्यों के विषय म स्पष्टता की। अतएव हमन निर्देशन के विविध स्तरीय कार्मिको के वनानिक प्रशिक्षण तथा भारत म निदशन अभिकरणो के कायकलापो के सम्बन्ध मे भी सूचना तथा सुझाव दिये हैं।

समूचा पुस्तक के प्रकार्यात्मक पट के अनुरूप ही अन्तिम अध्याय म भारतीय उच्चतर महाविद्यालय के लिय एक प्रस्तावित निर्देशन-कायक्रम का नचोनी रूप रेखा को प्रस्तावित किया गया है।

मूलरूप से तो पुस्तक एम ए तथा बी एड की कक्षाओ म निर्देशन तथा उपबोधन म विशेषता अध्ययन करने वाले छात्रो के लिए लिखी गई है। वस्तुत इस नूतन वनानिक विषय पर हिन्दी म पुस्तक लिखने हेतु उनका सतत आग्रह इस प्रयास का मूलभूत प्रेरक रहा है। किन्तु पुस्तक की अन्तवस्तु का चयन तथा प्रस्तुतिकरण इस ढग स किया गया है कि निर्देशन के विभिन्न प्रशिक्षण-केन्द्रो म अध्ययन अभ्यास करन वाले प्रशिक्षार्थी पाठ्यवस्तु के रूप म इसका सफल उपयोग कर सकत हैं।

जसाकि हमन बारम्बार बल दिया है पुस्तक का ध्येय केवल सद्धान्तिक प्रशिक्षण तक ही सीमित न रह कर प्रकार्यात्मक प्रायोजनाओ को प्रेरित करने तक विस्तृत हुआ ह। तदनुसार इसके आयोजन-लेखन म इस बात का बराबर ध्यान रखा गया है कि निदशन के क्षेत्रीय कायकर्त्ताओ की प्रकार्यात्मक राहो को भी यह पुस्तक एक वास्तविक निर्देशन-आलोक प्रदान करती रहे। जहाँ एक ओर हमार निदशन-ब्यूरोज तथा एम्प्लायमेन्ट एक्सचेन्ज म काय करने वाले कार्मिको को यह चिन्तन क लिये सामग्री द सकती है वहाँ हमारी यह भी तीव्र अभिलाषा है कि माध्यमिक शाला स सम्बन्धित शिक्षाविदो को अपनी शालाओ मे व्यावहारिक निर्देशन-सेवाए प्रारम्भ करन हेतु प्ररणा-प्रसाद प्रदान करे। यदि राजस्थान शिक्षा-विभाग इस पुस्तक की सिफारिशो के अनुकूल कतिपय शालाओ म ही एक न्यूनतम निदशन-काय प्रारम्भ करने की सुविधाए प्रदान करे तो हम अपने प्रयास को एक बहुत बडी सीमा तक सफल मानेंगे। साथ ही हम वतमान क्षेत्रीय कायकर्त्ताओ स हमारे सुझावों के प्रति अनुक्रियाए प्राप्त करके भी लाभान्वित होना चाहगे।

पुस्तक-सृजन का मूल श्रय तो जसे पहले ही कह चुके है हमार निष्ठावान विद्यार्थियो को ही जाता है। अत हम सवप्रथम उन्हा के प्रति अपना आभार प्रदर्शित करना चाहगे। साथ ही वास्तविक तथ्य यह भी है कि यदि राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी प्रान्तीय भाषाओ म तकनीकी साहित्य-सृजन का उद्देश्य लकर हमे प्रयास-प्रेरणा प्रदान न करती तो कदाचित यह ग्रन्थ इतना शीघ्र प्रकाशन-

प्रकाश न देख पाता। अतएव इस अवसर पर हम अकादमी के प्रति अपना अनुभूत आभार व्यक्त करते हैं।

इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि कोई भी मौलिक पुस्तक का सृजन करने में भी कई विद्वानों के लिखित तथा व्यक्त विचार लेखक के प्रेरणाधार तथा पुस्तक के पुष्टि पदार्थ बनते हैं। हमने भी हमारे मौलिक विचारों के विकास में भी कई राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय विद्वजनों के चिन्तन को चेतन अचेतन रूप से आत्मसात किया है। पुस्तक की समाप्ति पर हम उन सभी को हृदय से धन्यवाद देना चाहेंगे।

नूतन विचारों को भाषा के माध्यम से व्यक्त करने पर भी उन्हें अधिक सजीव तथा प्रभावशाली बनाने हेतु कई बार चित्रों आरेखों तथा सारणीयों की आवश्यकता होती है। हमारे चिन्तन को इस प्रकार का मूर्त रूप देने में श्री अयूब अली बोहरा ने जिस अन्तर्दृष्टि का परिचय दिया है वह प्रशंसनीय है। हम इस कार्य के लिए उनके कृतज्ञ हैं। मुद्रित होने के पूर्व पाण्डुलिपि का समयानुसार टंकन समाप्त करना भी आजकल के वर्धमान सजटिल काल में एक समस्या है। श्री शंकर शर्मा ने बड़ी ही दक्षतापूर्वक यह कार्य उस व्यस्त समय में सम्पन्न किया जबकि वे एम. एड. के शोध प्रबन्ध अथवा ग्रीष्मावकाश की कार्य संगोष्ठियों सम्बन्धी टंकन के भार से दबे हुए थे। हम उन्हें इसके लिए हृदय से धन्यवाद देते हैं।

हमारा अन्तिम तथा सबसे महत्त्वपूर्ण आभार है अपने कुटुम्ब के सदस्यों के प्रति। पुस्तक के लेखन को समयानुसार सम्पन्न करने हेतु शाश्वत कार्य रत रहते समय न केवल उन्होंने कई निजी उत्तरदायित्वों में सहर्ष हाथ बटाया अपितु सतत प्रोत्साहन देकर कार्य पूर्ण करने में निरंतर प्रेरणा प्रदान की।

अपने विशेषज्ञता-क्षेत्र में यह मौलिक पुस्तक लिखते समय हमारी एक मूलभूत कामना यही है कि निर्देशन तथा उपबोधन का क्षेत्र अपना सही स्वरूप लेकर भारतीय शिक्षा जगत में विकसित हो।

उदयपुर

दिनांक २१. १. १६७३

इन्दु दवे

अरविन्द फाटक

विषय सूची

१

विषय-प्रवेश

जीवन का मार्ग सीधा नहीं है। प्रकृति की इन ऊबड़-खाबड़ टेढ़ी-मेढ़ी राहों पर सतत संचरण करने वाले समस्त जीवधारियों के लिये समुचित मार्ग का ज्ञान प्राप्त करना वस्तुतः सदैव से ही एक जटिल प्रश्न रहा होगा। निर्देशन का शाब्दिक अर्थ भी होता है 'दिशा दिखाना'। अतएव आधुनिक युग की एक नवीनतम विचारधारा तथा नूतनतम कार्यक्षेत्र निर्देशन को मानव-जीवन का एक चिर पुरातन प्रश्न कहा जाय तो अनुचित नहीं होगा। मानव के आदि-काल से तथा कदाचित उससे भी पूर्व जीवविकास-सोपानों पर स्थित निम्नतर जीवधारियों का जीवनयापन हेतु की जाने वाली पर्यावरणीय अन्तःक्रियाओं में भी वयस्क तथा परिपक्व प्राणियों द्वारा अपेक्षाकृत अपरिपक्व जातियों का मार्गदर्शन तथा सम्पूर्ण जीवन की एक स्वाभाविक प्रक्रिया रही होगी।

उच्चस्तरीय जाति में भी यह सहज जीव-लक्षण स्वाभाविक रूप से ही विकसित हुआ। किन्तु एक बुद्धिजीवी प्राणी होने के कारण यह लक्षण केवल उसके भौतिक पर्यावरण तक ही सीमित न रहा। जीवन के आरम्भ काल में तो अपनी मौलिक आनुवंशिक (अनुरक्षण-सम्बन्धी) आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी अल्पवयस्क मानव को केवल अपने वयस्कों पर कई मामलों में निर्भर रहना पड़ता है अपितु आत्मनिर्भरता की राह पर अग्रसर होने में उनका निर्देशन भी लेना पड़ता है। किन्तु जैसा कि कहा जा चुका है मानव एक उच्चस्तरीय बुद्धिजीवी प्राणी है। अतएव निम्नतर जीवों के सदृश ही अपनी मौलिक आवश्यकताओं से उद्भूत प्राथमिक प्रश्नों के अतिरिक्त भी उसे कई प्रकार की समस्याएं व्यथित करती रहती हैं। उसके विकास क्रम के साथ-साथ उसकी मौलिक समस्याओं का स्वरूप भी मानो अनवगुण्ठित होता जाता है। जीवन के प्रारम्भिक काल में तो उसकी प्राथमिक क्रियाएं यथा खाना पीना चलना आदि भी अन्य जीवों के समान किसी वयस्क प्राणी की सहायता से सम्पन्न होती हैं। किन्तु शनैः शनैः उनके स्वरूप में भी एक विवेकप्रेरित अन्तर दृष्टिगोचर होने लगता है। अभिभावक की अंगुली थाम कर चलना सीखने वाला बालक कुछ समय पश्चात विविध मार्गों की विभिन्न दिशाओं सम्बन्धी जिज्ञासाएं प्रकट करने लगता है। अपनी प्राथमिक आवश्यकता भूख को माँ की ममतामयी गोद में शमन करने वाला शिशु अपने विकास के मार्ग पर चलते हुए प्यास भूख तथा ऐसी कई अन्य मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये नाना प्रकार के प्रश्नों से जूझता है। ऐसे प्रश्नों जिज्ञासाओं तथा सम्बन्धित

समस्याओं का अस्तित्व विकासमान मानव के गतिशील जीवन की एक सहज वास्तविकता है।

अपने बहुआयामी व्यक्तित्व के नाना पक्षों में तथा अपने बहुमुखी पर्यावरण के कई क्षेत्रों में कई प्रकार की समस्याएं उसके सम्मुख आती हैं। अतएव जीवन के असीम विस्तार के अनुरूप ही इनके स्वरूपों में भी अनन्त विभिन्नता होती है। एक व्यक्ति इसलिए व्यथित हो सकता है कि उसकी दृष्टि कतिपय अनुपलब्धेय उद्देश्यों पर अटकी हुई है किन्तु कदाचित वह इसलिए भी सम्भ्रान्त हो सकता है कि उसके निर्धारित लक्ष्य तक पहुँचने हेतु एक से अधिक राहें हैं तथा वह उनमें से चयन नहीं कर पा रहा है। कोई व्यक्ति अपनी अनश्वर आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकने पर भी एक अपर्याप्तता की दुःखदायी भावना से निरन्तर पीड़ित होता रहता है। अपने दैनन्दिन कार्यकलापों की व्यवधान रहित पूर्ति करते हुए भी उसकी कुशाग्रबुद्धि उच्चतर चुनौतियों के स्फुरण हेतु मचलती-सी रहती है। एक अन्य मानव अपनी आकांक्षाओं के अनुकूल साधन-सुविधाओं के अभाव के कारण चिन्तित रह सकता है। पारस्परिक सम्बन्धों की सन्तुष्टि हीनता से व्यवस्थित हो सकता है और कभी-कभी किसी निष्प्रयोजनी मानसिक ... में ... अनमना रह सकता है।

उक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि बुद्धिजीवी मानव के बहुआयामी जीवन को नाना प्रकार की समस्याएं विचलित कर सकती हैं।

यहां यह ध्यान रहे कि इस प्रकार की समस्याओं का अस्तित्व मानव में दुर्बलता का द्योतक हो यह आवश्यक नहीं। वस्तुतः कई बार समस्याओं की संवेदना ही उन्नति की सूचक हो सकता है। किसी कमी की अनुभूति ही व्यक्ति को वह कमी पूर्ण करने की ओर प्रेरित करती है। अतएव मानव जीवन में जिन समस्याओं का हमने उदाहरण दिया है वह उसके जीवन की एक सहज वास्तविकता के रूप में दिया है। यदि यह कहें तो भी अतिशयोक्ति नहीं होगा कि बुद्धिजीवी होने के नाते ही वह इस प्रकार की समस्याओं का अनुभव मात्र कर सकता है। जैसाकि प्रारम्भ में ही कह चुके हैं—जीव विकास मापना के उच्चतर बिन्दु पर स्थित होने के कारण उसका यह विशेषाधिकार है कि वह अपने जीवन में इस प्रकार की कमियों से व्यथित होकर उन्हें पूर्ण करने का प्रयत्न करे। विवेक बुद्धि सम्पन्न होने के कारण ही वह जिज्ञासा से युक्त होता है—और जिज्ञासा ज्ञान की जननी है। कहने का तात्पर्य यह कि समस्याओं के अस्तित्व को किसी निषेधात्मक दृष्टिकोण से न देखा जावे यह हमारा वाचन से आग्रह है। यदि शोधकर्ता किसी समस्या से पीड़ित न होता तो उससे सम्बन्धित ज्ञान सूचनाएं एकत्रित करने हेतु क्रियाशील भी न हो सकता। प्रकृति पर मानव की अभूतपूर्व विजयों के मूल में उसके अनन्त प्रश्न रहे हैं और इन प्रश्नों का समाधान करने में उसने किसी भी प्रकार की कठिनाइयों की परवाह नहीं की है। चन्द्रमा के स्वरूप की जिज्ञासा का शमन करने में उसने अपने जीवन की बाजी लगा दी है। जो व्यथा पीड़ा प्रश्न जिज्ञासा समस्या —इन शब्दों को हम

बुद्धिजीवी मानव के एक सहज जीवन सत्य के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं। किसी नए स्थान पर पहली बार पहुँच कर उसके विविध स्थलों के सम्बन्ध में जिज्ञासा व्यक्त करना, उन स्थलों तक पहुँचने के मार्गों के सम्बन्ध में प्रश्न पूछना ये सब जिस प्रकार जीवन के सामान्य अनुभव हैं उसी प्रकार अपने बौद्धिक भावात्मक सवेगात्मक आयामो के विकास मार्गों में कई जिज्ञासाओं से युक्त होना भी मानव का विशेषाधिकार है। किन्तु समस्याओं के सहज अस्तित्व की इस स्वीकृति के साथ ही एक अधिक महत्त्वपूर्ण वास्तविकता यह है कि समस्या की सजटिलता एकक व्यक्ति की प्रकृति के अनुरूप परिवर्तित होती रहती है। मित्र न बना सकने के कारण एकाकी होना जहाँ एक व्यक्ति के लिए सतत हीनता–भावना का कारण हो सकता है वहाँ पर व्यक्तियो के बड़े समूह में अपने आपको पाना ही अन्य व्यक्ति में निरन्तर व्यग्रता उत्पन्न कर सकता है। साथ ही एक सी परिस्थिति में भी दो व्यक्तियों की समान अनुभूति हो यह भी आवश्यक नहीं। क्रौंच की पीड़ा यदि प्रत्येक व्यक्ति को समान रूप से व्यथित कर सकती होती तो न जाने कितने वाल्मीक अभी तक उत्पन्न हो गए होते। कहने का तात्पर्य यह कि समस्या की सजटिलता एकक व्यक्ति की प्रकृति के अनुरूप परिवर्तित होती रहता है। यो सामान्यत हम मोटे रूप से चाहे स्वीकार कर सकते हैं कि अमुक समस्या सरल है–अथवा अमुक कठिन। किन्तु अन्ततोगत्वा समस्या की सजटिलता तथा उसकी अनुभूति की गहनता दोनो ही एकक व्यक्ति की विशिष्ट पृष्ठभूमि उसके जीवन अनुभव तथा उसके विकसित सवेगो के अनुसार अनुबन्धित होती है।

उक्त विवेचनो के आधार पर निम्न बिन्दु स्पष्ट होते हैं —

— मानव जीवन में समस्याओं का होना एक सामान्य वास्तविकता है।

— बहुपक्षी मानव के बहुआयामी जीवन में पाई जाने वाली समस्याओं में भी अनन्त वभिन्नय हो सकता है।

— समस्या का स्वरूप तथा उसकी सवेदना की गहनता एकक व्यक्ति की प्रकृति तथा पृष्ठभूमि द्वारा अनुबन्धित होती है।

इन बिन्दुओं के सहज अनुवर्तन में प्रश्न उठता है— मानव इस प्रकार की परिस्थितियों में क्या करता है? जहाँ तक सामान्य अनुभव की बात है सर्वप्रथम तो वह स्वय ही अपने प्रश्नों का हल ढूँढने का प्रयास करता है। अपने आपमें अपर्याप्त होने पर वह वयस्कों से समाधान प्राप्त करने का प्रयत्न करता है मित्रों से विचार विमर्श करता है सम्बन्धित साहित्य में खोज करता है अथवा किसी विशेषज्ञ से सूचनाएँ प्राप्त करता है। सक्षेप में कहा जा सकता है कि औपचारिक अथवा अनौपचारिक रूप से अपनी समस्या के समाधान हेतु प्रयत्नशील रहना मानव जीवन का सहज उपक्रम है। स्वाभाविक ही है कि इस सहज उपक्रम का स्वरूप भी सस्कृति की वर्धमान सजटिलता के अनुरूप परिवर्तित होता गया। इस विकासमान सजटिलता के अनुवर्तन में ही आधुनिक निर्देशन के बीज खोजे जा सकते हैं। अत वर्तमान युग को इस

नवीन कहलाने वाली वैज्ञानिक कार्य प्रणाली का कब किस प्रकार तथा किन किन स्वरूपों में प्रस्फुटन विकसन हुआ इसका विवेचनात्मक वर्णन एक शृंखलाबद्ध रूप में निम्न अनुच्छेदों में प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे। इसी वर्धमान गाथा में ही कदाचित् यह भी देखा जा सके कि विशेषकर शिक्षा के साथ निर्देशन का सम्बन्ध कब क्यों तथा किस प्रकार स्थापित हुआ। शिक्षा-क्षेत्र के इस आधुनिक प्रपक्षिन अंग का सामान्यत मानव जीवन तथा विशेषकर शिक्षा के विकास क्रम में क्या स्थान है यह जानने हेतु शिक्षा के इतिहास में निर्देशन के जन्म तथा क्रमिक विकास की परिस्थितियों पर एक विहंगम दृष्टि डालना समीचीन होगा।

मानव-जीवन के विकास क्रम में निर्देशन का वर्धमान स्वरूप

जीवन शिक्षा तथा निर्देशन के पारस्परिक सम्बन्ध का एक प्राथमिक परिचय प्राप्त करने हेतु हम इस विकासमान गाथा को कुछ विशिष्ट भागों में विभाजित करके प्रस्तुत करेंगे।

(१) सरल समाज अनौपचारिक शिक्षा

यों तो शिक्षा के स्वरूप तथा कार्यों के सम्बन्ध में ही शिक्षा शास्त्री एकमत ही हों यह आवश्यक नहीं। अत शिक्षा की प्रकृति तथा लक्ष्यों से सम्बन्धित विभिन्न वादों के प्रपंच में इस समय न उलझकर सामान्य रूप से स्वीकृत एक निर्विवाद तथ्य से हम यह विवेचन प्रारम्भ कर सकते हैं। साधारणतया यह स्वीकार किया जाता है कि शिक्षा प्रक्रम का एक मौलिक उत्तरदायित्व है युग के संकलित ज्ञान तथा अर्जित अनुभवों का व्यवस्थित रूप से नूतन पीढ़ी तक प्रेषण करना तथा इस प्रेषण द्वारा व्यक्ति को अपने वातावरण में उपयुक्त समायोजन करने हेतु सामर्थ्य प्रदान करना। इसी प्रेषण के प्रभावस्वरूप व्यक्ति के व्यवहार प्रारूपों में वाञ्छनीय परिवर्तन फली भूत किए जा सकते हैं। इन परिवर्तनों का मूल उद्देश्य ही है व्यक्ति को अपने सन्निकट स्वयं तथा सजटिल पर्यावरण के सम्बन्ध में प्रबुद्धता प्रदान करके उसे इन पर अधिक विवेकपूर्ण नियन्त्रण कर सकने योग्य बनाना इन्हें अपने विकास के अनुकूल मोड़ते हुए इनकी तथा अपने स्वयं की शक्तियों का अधिकाधिक उपयोग कर सकना तथा इस प्रकार वैयक्तिक तुष्टि प्राप्त करते हुए सामाजिक उन्नयन को प्रेरित करना।

मानव के इतिहास का प्राथमिक काल वह था जबकि उसका पर्यावरण अत्यन्त ही सरल था उसमें कोई पेचीदगियाँ नहीं थी। आदिम मानव को अपने इस सरल पर्यावरण में सफलता पूर्वक जीवनयापन करने हेतु जिन ज्ञान सूचना कला कुशलताओं की आवश्यकता होती थी वे सब उसे अत्यन्त ही स्वाभाविक रूप से समाज के वयस्कों के साथ दैनन्दिन जीवन व्यतीत करने में ही प्राप्त हो जाया करती थी। जिस समाज में प्रकृति के मध्य उपलब्ध फलफूल अथवा निम्नकोटि के जीवों द्वारा क्षुधा का शमन हो सकता था तथा स्वाभाविक दैहिक बल के आधार पर अन्य रक्षण यौन आदि की अन्य मौलिक आवश्यकताएं पूर्ण की जा सकती थी—वहाँ पर जीवन-यापन हेतु न तो बहुत अधिक सूचना-सामग्री की आवश्यकता पड़ती थी न

नाना भांति की कला कुशलताओं की। वस्तुत उस काल म कतिपय वयस्को द्वारा उनके अपरिपक्वों को प्रेषित की जाने वाली सामग्री का ही आकार प्रकार न तो बहुत विशाल था न उसका स्वरूप ही अत्यन्त सजटिल। साथ ही उसको प्रेषित करने की प्रक्रिया भी कठिन नहीं थी। जसाकि कह चुके हैं—समाज के वयस्को के साथ अपने दनन्दिन जीवन म ही मानव शिशु ये कुशलताए प्राप्त कर लेता था। जीविकोपार्जन के व्यवसाय भी उस युग म इतने अल्प तथा सरल थे कि उनम विशिष्ट प्रशिक्षण के बिना केवल अपने वयस्को की क्रियाशीलता के अवलोकन तथा उन्हें काय मे सहायता ही व्यक्ति को उस व्यवसाय मे प्रकार्यात्मक रूप से निपुणता प्रदान कर देता था।

(२) औपचारिक शिक्षा

शन शन समय की गति और की उन्नति तथा ज्ञान की प्रगति के साथ साथ ज्ञान-सूचना समूहो म प्रचुर वृद्धि होती गई। मानव का पर्यावरण अधिक सजटिल होता गया। या यो कहा जाय कि वह विवेकपूर्ण प्राणी अपने ससार पर अधिक नियन्त्रण प्राप्त करने हेतु उसके विविध आयामो के सम्बन्ध म परिवर्धित सूचना समूहो स सम्पन्न होने लगा। अतएव अपने बहुपक्षी पर्यावरण सम्बन्धी अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त करता हुआ मानव विभिन्न प्रकार के ज्ञान-श्रेणी का सृजन करने लगा। स्वभावत इस ज्ञान राशि के ? का काय भी उत्तरोत्तर रूप से पेचीदगी होता गया। जहा पुरातन सरल समाज म बालक अपने पुरखो के साथ स्वाभाविक रूप स जीवनयापन द्वारा ही अपने पर्यावरण मे समजन हेतु वाछनीय ज्ञान तथा आवश्यक सूचनाओ म सहज ही एक अनौपचारिक ढग स दीक्षित हो जाता था वहा अब इस परिवर्तित परिस्थिति मे समाज के वयोवृद्ध इस सहज उत्तरदायित्व के लिए अपने आपको असमथ अनुभव करने लगे। नूतन पीढी के व्यक्ति भी आवश्यक ज्ञान सूचनाओ के इस प्राचीन स्रोत को अपर्याप्त समझने लगे।

मानव समाज के स्थायित्व अनुरक्षण तथा प्रतिजीविता के लिये पर्यावरणीय ज्ञान सूचना-कुशलताओ का सचरण तो अनिवाय ही था। अतएव इस समस्या को हल करने हेतु कतिपय औपचारिक सस्थाओ का प्रादुर्भाव हुआ। सवप्रथम इन सस्थाओ का यह उत्तरदायित्व हुआ कि तत्कालीन वतमान ज्ञान सामग्री का निश्चित विषय श्रेणी के रूप म वर्गीकरण किया जावे जिससे निश्चित रूपरेखा के अनुसार इनम प्रगति होती रहे। तत्पश्चात् एकक विषय क्षेत्रो की महत्ती सामग्री को भी प्रपण हेतु अधिक व्यवस्थित करने की आवश्यकता का अनुभव हुआ। परिणामस्वरूप प्रत्येक विषय क्षेत्र की वतमान सामग्री मे से विविध वय-स्तरो पर प्रपणीय नानाशो का चयन वर्गीकरण तथा व्यवस्थीकरण होने लगा। यह अपेक्षित था कि ये नूतन शिक्षा-सस्थाए सरल व्यवस्थित क्रमिक तथा सन्तुलित रूप से वाछनीय ज्ञान सामग्री को अपेक्षाकृत अपरिपक्व व्यक्तियो तक प्रेषित करके उन्हे तत्कालीन समाज म सुचारु रूप से समायोजित कर सकेंगी। यह है शिक्षण सस्थाओ के जन्म की कहानी या यो कहा जाय कि औपचारिक शिक्षा के प्रारम्भ होने की गाथा। समाज अनौप

चारिक शिक्षा से औपचारिक शिक्षण-व्यवस्था की ओर उन्मुख हुआ। मानव की शिक्षा-योजना में एक नवीन युग का सूत्रपात हुआ। निरन्तर बढ़ती हुई ज्ञान राशि में विषय-क्षेत्रों की तथा व्यवस्थित पाठ्यक्रमों की संख्या भी बढ़ती गई।

औपचारिक शिक्षण संस्थाओं में उपयुक्त उत्तरदायित्वों का उचित रूप से निर्वाह करने हेतु दक्ष व्यक्तियों की भी आवश्यकता पड़ी। अतएव व्यक्तियों को इन विशिष्ट कुशलताओं में दक्ष करने हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रमों की योजनाएं बनने लगीं।

इस युग में निर्देशन का स्वरूप आदिम युग की तुलना में कुछ अधिक विशिष्ट हुआ। व्यक्तियों को समाज के वयस्कों से जो स्वाभाविक मार्ग-दर्शन सहज रूप से दैनंदिन जीवन की नेमी क्रियाओं में ही प्राप्त हो जाया करता था उसके स्थान पर नियतकालीन पाठ्यचर्याओं के माध्यम से प्रशिक्षित व्यक्तियों द्वारा आवश्यक ज्ञान व्यवस्थित तथा क्रमिक रूप में प्रेषित होने लगा।

ज्ञान प्रेषण में प्रवृत्त करने वाले व्यक्तियों के प्रशिक्षण की बात अत्यन्त महत्व पूर्ण है। किसी भी युग में यदि मानव नवीन ज्ञान का केवल अन्वेषण करके ही अपने उत्तरदायित्व की इतिश्री समझ ले तो कदाचित मानव जाति की अतिजीविता तथा अनुरक्षण को क्षतिमय की आशंका हो सकती है। नवीन ज्ञान का नूतन पीढ़ी तक संचरित किए बिना मानव-जाति प्रगति की राह पर अग्रसर नहीं हो सकती।

(२) विषयों का विशिष्टीकरण

उन्नति की राह पर अपने अगामी चरण बढ़ाते हुए मानव को विभिन्न विषयों का भी विशिष्ट क्षेत्रों में वर्गीकरण करने की आवश्यकता पड़ी। औपचारिक शिक्षण संस्थाओं के प्रारम्भिक काल में तो केवल विषय-क्षेत्रों में बढ़ती ज्ञान राशि का चयन सवर्गीकरण तथा व्यवस्थीकरण करने की ही समस्या थी। अपेक्षित था कि नवीन युग में रहने वाला व्यक्ति इन सभी विषयों की सूचनाओं से सम्पन्न होगा। भाषा गणित तथा विज्ञान के मौलिक विषयों का ज्ञान पर्यावरणीय नियन्त्रण तथा वैयक्तिक दक्षता के लिये एक प्रकार से प्रत्येक व्यक्ति के लिये आवश्यक था। शनैः शनैः अपने वैयक्तिक ज्ञान तथा पर्यावरणीय सूचनाओं से अधिक सम्पन्न होने के प्रक्रम में मानव ने इतिहास भूगोल के विषयों का सृजन आयोजन किया। तत्पश्चात आवश्यकतानुसार सामान्य विज्ञान सामाजिक ज्ञान आदि भी अनिवार्य विषय क्षेत्रों के रूप में विकसित होते गए। अब अपने पर्यावरण में दक्षतापूर्वक सन्तोषप्रद जीवन व्यतीत करने हेतु व्यक्ति के लिये इन मौलिक विषयों का व्यवस्थित ज्ञान अनिवार्य-सा हो गया तथा यह व्यवस्थित रूप से यह ज्ञान औपचारिक शिक्षण-संस्थाओं में प्रशिक्षित व्यक्तियों द्वारा प्राप्त करने लगा।

किन्तु इसके पश्चात समाज के इतिहास में वह युग आया जिसे वैज्ञानिक तकनीकी युग का प्रारम्भ कहा जाता है। प्रौद्योगिक क्रांति हुई विज्ञान की उन्नति

हुई ज्ञान का अभूतपूर्व विस्फोटन हुआ। इस अनन्त राशि का समावेश केवल मौलिक विषयों की परिधि में ही कर सकना सम्भव नहीं था। अतएव सामान्य विषयों के साथ विभिन्न ज्ञान क्षेत्रों में कई विशिष्टीकरण होने लगे। इन विशिष्टीकरणों की पृष्ठभूमि में तत्कालीन औद्योगिक विकास भी था। औद्योगिक प्रगति के फलस्वरूप विशिष्ट व्यावसायिक क्षेत्रों का बढ़ना स्वाभाविक था और इन क्षेत्रों में काम करने हेतु विशिष्ट प्रशिक्षण भी एक महती पूर्वावश्यकता थी। अतएव विषय दोनों में ही विषय-चयन के फलस्वरूप जो विशिष्टीकरण हो रहा था उसके अतिरिक्त भी नूतन कौशल्य-क्षेत्रों का सृजन विकास होने लगा। हम कह सकते हैं कि ज्ञान का यह वर्धन एवं विशिष्टीकरण मानव की निरन्तर वर्धमान जिज्ञासा तथा उत्तरोत्तर रूप से संगठित होने हुए समाज का प्रतिबिम्ब मात्र था। विविध क्षेत्रों तथा विषयों के सम्बन्ध में वर्धमान कलाओं-कुशलताओं के लिए उतने ही प्रकार के पाठ्यक्रम शिक्षक तथा शिक्षण-संस्थाओं की आवश्यकता हुई। ज्ञान राशि के अभूतपूर्व समूहों का उचित रूप से नूतन पीढ़ी तक सञ्चरण आधुनिक काल के प्रारम्भ में शिक्षा-क्षेत्र की एक सबल चुनौती रही।

(४) विशिष्ट निर्देशन की आवश्यकता

इस वर्धमान विशिष्टीकरण से उत्पन्न चुनौतियाँ केवल नूतन पाठ्यचर्याओं के आयोजन तथा शिक्षकों के विशेष प्रशिक्षण तक ही सीमित नहीं रहीं। एक सम्बन्धित समस्या अधिकाधिक रूप से दृष्टिगोचर होने लगी शिक्षार्थियों के क्षेत्र से। सर्वप्रथम तो अत्यन्त द्रुत गति से वर्धमान विषयों विषय-क्षेत्रों विशिष्टीकरणों के सन्दर्भ में यह व्यावहारिक रूप से सम्भव न था प्रतीत हुआ कि नई पीढ़ी का प्रत्येक व्यक्ति—नवीन विषय-क्षेत्रों की हर विशेषता में दीक्षित हो सके। किन्तु इस व्यावहारिक कठिनाई के साथ-साथ इस सन्दर्भ में एक तकनीकी समस्या भी शिक्षाविदों को उत्तरोत्तर रूप से व्यग्र करने लगी। यह अधिकाधिक अनुभव में आने लगा कि प्रत्येक व्यक्ति हर एक विषय क्षेत्र में निपुणता प्राप्त नहीं कर सकता। सभी विशिष्टीकरणों में तो प्रशिक्षण की योजना ही अव्यवहारिक थी किन्तु सामान्य ज्ञान के माने जाने वाले मूल विषयों में भी देखा गया कि व्यक्तियों की उपलब्धियों में पर्याप्त अन्तर होता है।

बीसवीं शताब्दी का प्रारम्भ काल उस विज्ञान के जन्म से सम्बन्ध रखता है जब मानव-व्यवहार सम्बन्धी इस प्रकार के वैज्ञानिक प्रश्न व्यवस्थित रूप से पूछे जाने लगे थे। अपने शैशवकाल में तो मनोविज्ञान भी इन प्रश्नों का उत्तर देने हेतु अनावश्यक रूप से वंशानुक्रम पर्यावरण के विवाद में उलझा रहा। उस समय शिक्षक का कार्य था शिक्षा देना उसका उत्तरदायित्व यहीं तक सीमित था। विद्यार्थी यदि ग्रहण करने में असमर्थ है तो बात उसकी जन्मजात दुर्बलता तक सीमित रख कर समाप्त कर दी जाती थी।

बुद्धि नामक शक्ति जिसको सीखने से सीधा सम्बन्ध माना जाता था भी एक सम्पूर्णरूपेण जन्मजात वरदान के रूप में ही देखी जाती थी तथा सीखने व समायोजन के आवश्यक प्रक्रमों में बुद्धि के अतिरिक्त और अन्य विशेषकों के सम्बन्ध में मानव को बहुत अधिक सूचनाएं नहीं थी।

किन्तु शनैः शनैः ज्ञान राशि के वर्धन विषयों के विशिष्टीकरण तथा प्रत्येक व्यक्ति के हर क्षेत्र में सम्पन्न न हो सकने के फलस्वरूप जो जिज्ञासा शिक्षाविदों को उत्तरोत्तर रूप से व्यग्र करती रही वह थी— कौनसा विषय किसके लिये ? कौनसा कार्य-क्षेत्र किस व्यक्ति के लिये ?

इसी प्रकार के प्रश्नों में वैज्ञानिक निर्देशन के बीजांकुरों को खोजा जा सकता है। वैज्ञानिक निर्देशन के व्यवस्थित विकास का इतिहास तो अगले अध्याय में करेंगे। यहां पर तो केवल मानव-जीवन तथा शिक्षा के विकास क्रम में निर्देशन के स्थान पर संक्षेप में प्रकाश डाल रहे हैं। इस काल में ज्ञान के क्षेत्रों में वर्धन एवं कई विशिष्टीकरणों के सन्दर्भ में प्रत्येक व्यक्ति के लिये समुचित मार्ग-दर्शन का प्रश्न कालान्तर में शिक्षा के क्षेत्र में उभरने लगा।

(५) मानव-अध्ययन का केन्द्र

मानव के इस विकास क्रम में वर्तमान युग को मानव अध्ययन का युग ही कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। अभी तक तो प्रगतिगामी मानव अपने वातावरण पर उत्तरोत्तर विजय प्राप्त करने में ही दत्तचित्त था। विभिन्न विषय-क्षेत्रों का आविष्कार करते हुए उसने जल-थल-नभ तथा पाताल— किसी भी क्षेत्र का अन्वेषण बाकी नहीं रखा। जहां पर गगन के नक्षत्रों की गति का वह विश्वासपूर्वक वर्णन करने लगा वहां पर भूगर्भों में अवगुण्ठित खनिजों रत्नों के विषय में सफलतापूर्वक प्रागुक्ति करता गया। प्रकृति के कई विनाशकारी तत्वों को भी उसने अपनी सेवा में इस प्रकार बांधा कि विविध भांति की ऊर्जाएं उसकी अनुचरी बन उसमें नियन्त्रित होकर सुख समृद्धि का वर्धन करने लगी।

किन्तु महत्वाकांक्षी मानव को इस समय एक अभिलाषा अधिकाधिक रूप से चुनौती देने लगी और वह थी उसका स्वयं अपने सम्बन्ध में वैज्ञानिक ज्ञान। यों सामान्य रूप से तो अपने स्वयं के स्वरूप-सम्बन्धी जिज्ञासा मानव की आदिम समस्या रही है। आदि ज्ञान-क्षेत्र दर्शन के माध्यम से उसने प्रारम्भ से ही अपने स्वयं का ज्ञान करना चाहा था। किन्तु यह दर्शन सामान्यतः चिन्तन मनन की व्यक्तिनिष्ठ पद्धतियों से ही होता था। विज्ञान की वस्तुनिष्ठ पद्धतियों द्वारा विश्व के नाना रहस्यों का उद्घाटन करते हुए मानव इन पुरातन उपागमों से अधिकाधिक असन्तुष्ट होता गया। प्रारम्भ में तो ज्योतिष हस्तरेखा वाचन आदि कूट विज्ञानों द्वारा ही वह अपने आपका भाग्य वाचन करके भविष्य सम्बन्धी प्रागुक्तियां करने का प्रयत्न करता रहा। शनैः शनैः उसके स्वयं तथा उसकी जाति के विकास से सम्बन्धित

विज्ञान-यथा समाज विज्ञान मानव विज्ञान आदि माध्यम से भी मानव तथा मानव जीवन के किसी न किसी पक्ष की व्याख्या होने लगी। इधर विकासमान शरीर क्रिया विज्ञान उसके स्थूल स्वरूप को अधिकाधिक स्पष्ट करने लगा। मानव को नाना पक्षों से अध्ययन करने वाले इन विज्ञानों के विकास के साथ ही शनै शनै मनोविज्ञान भी अपने आपको अपने पैतृक विभाग दर्शन से मुक्त करके एक मानव के व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन करने के उद्देश्य से अपने को स्वतन्त्र रूप से विकसित करने लगा।

मनोविज्ञान के विकास में स्वयं इसके शरीर व मानव जीवन से सम्बन्धित कई शाखाओं उपशाखाओं का प्रस्फुटन हुआ और मानव उत्तरोत्तर रूप से अपने अध्ययन का केन्द्र बिन्दु बनने लगा। जहां विकासमान शरीर क्रिया विज्ञान तथा चिकित्सा विज्ञान द्वारा उसने अपने शारीरिक विकास वृद्धि व्याधि पर नियन्त्रण प्राप्त किया वहां मनोविकार विज्ञान द्वारा वह अपने चेतन अचेतन मन की गति विधियों के सम्बन्ध में अधिक प्रबुद्ध होने लगा। इसलिये कहा जा सकता है कि जिन विज्ञानों को उसने जन्म दिया था उन्हें भी स्व० परिस्थितिक अपने स्वयं के अध्ययन की ओर मोड़ने लगा।

मनोविज्ञान जोकि अब स्वतन्त्र रूप से मानव के व्यवहार के विज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका था उसके व्यवहार के नियन्त्रण तथा प्रागुक्तिकरण में अधिकाधिक रुचि लेने लगा।

अपने स्वयं के सम्बन्ध की इस प्रबुद्ध स्थिति ने पर्यावरणीय विशिष्टीकरणों के साथ मिल कर मानव के समन्जन का प्रक्रिया को अत्यन्त सजटिल बना दिया। कौनसा विशिष्टीकरण किसके लिये ? के जिस प्रश्न में निर्देशन का जन्म हुआ था उस प्रश्न का स्वरूप अब और भी कठिन हो गया। अब तक तो इस प्रश्न का उत्तर देने में विभिन्न विषय तथा काम क्षेत्रों का विशिष्ट ज्ञान सामान्यत पर्याप्त था। मानव पक्ष से सम्बन्धित घटकों में उसकी बुद्धि का परिचय प्राप्त करना ही आवश्यक समझा जाता था। किन्तु अब मानव पक्ष के ही कई अधिक घटक स्पष्ट होने लगे तथा उसे मार्ग-दर्शन देने में इनका ज्ञान आवश्यक होने लगा। केवल मनोविज्ञान ने ही बुद्धि के अतिरिक्त स्वयं बुद्धि को भी प्रभावित करने वाले कई कारकों के सम्बन्ध में बताया वर्धमान ज्ञान राशि के संचरण के समय व्यक्ति की रुचि अभिवृत्ति अभिक्षमता चित्तप्रकृति आदि की भूमिकाएं स्पष्ट होने लगी। मानव के पर्यावरणीय समान्जन में भी समाज विज्ञान और संस्कृति विज्ञान द्वारा कई सामाजिक सांस्कृतिक घटक स्पष्ट हुए। मानव का अपने विषय में हो ज्ञान इतना प्रचुर तथा बहुआयामी होने लगा कि व्यक्ति को ही पूर्णरूपेण समझ सकना एक चुनौती सा सिद्ध होने लगा। इस युग में उसके लिये मार्ग दर्शन के प्रत्यय को भी अधिक तकनीकी वैज्ञानिक स्वरूप धारण करना पड़ा।

(६) समाहार

मानव के विकास क्रम में निर्देशन के विवेचन का सारांश निम्न बिन्दुओं में प्रस्तुत किया जा सकता है तथा निम्न चित्र द्वारा स्पष्ट करने का प्रयत्न किया जा रहा है (देखिए चित्र १)

आदिम मानव एक सरल समाज में रहता था। उस काल से जीवनयापन तथा सुख समायोजन हेतु अत्यन्त ही अल्प ज्ञान-सामग्री की आवश्यकता होती थी जिसे वह अपने बयस्कों के मध्य दैनंदिन रहते हुए अनौपचारिक रूप से प्राप्त करता था।

—पर्यावरणीय ज्ञान के बढ़ने के साथ आवश्यक ज्ञान प्राप्ति के ये अनौपचारिक साधन अपर्याप्त सिद्ध हुए। फलस्वरूप औपचारिक शिक्षण संस्थाओं का जन्म हुआ जहाँ व्यवस्थित विषय-क्षेत्रों के माध्यम से वह आवश्यक ज्ञान कौशल प्राप्त करता रहा।

—ज्ञान की उन्नति तथा शोध की प्रगति के साथ सामान्य विषय क्षेत्रों की परिधियाँ भी अपर्याप्त सिद्ध होने लगी तथा फलस्वरूप विषय-क्षेत्रों का विशिष्टीकरण होने लगा।

—इस विशिष्टीकरण होने से जिज्ञासुओं को जो प्रश्न व्यग्र करने लगा वह था कौनसा क्षेत्र किस व्यक्ति के लिये ? प्रत्येक व्यक्ति के हर क्षेत्र में सफल न हो सकने के तथ्य ने इस प्रश्न को और भी अधिक गाम्भीर्य प्रदान किया। इसी प्रश्न के मूल में निर्देशन के बीज खोजे जा सकते हैं।

—वर्तमान युग में मानव अपने आप के सम्बन्ध में अधिक रुचि लेने लगा है। वह अधिकाधिक अपने स्वयं के अध्ययन का केन्द्र बनता जा रहा है। पर्यावरणीय सजटिलताओं के साथ-साथ उसके स्वयं से सम्बन्धित बढ़ते हुए ज्ञान ने शिक्षाविदों के सम्मुख उसके मार्ग दर्शन की नवीन चुनौतियाँ प्रस्तुत कर रहा है।

इन सामान्य विवेचनों के अनुवर्तन में अब शिक्षा तथा निर्देशन का सम्बन्ध हम अधिक विशिष्ट रूप से देख सकेंगे।

शिक्षा तथा निर्देशन

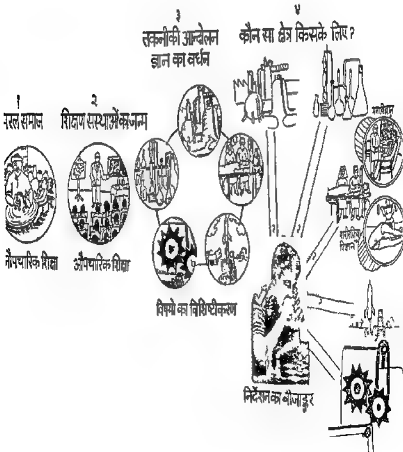
(१) परिस्थिति की संजटिलता

यों तो शिक्षा के स्वरूप तथा उद्देश्यों पर एक स्वतन्त्र ग्रन्थ ही लिखा जा सकता है। किन्तु प्रस्तुत अध्याय के प्रारम्भ में हमने शिक्षा का जो सर्वमान्य स्वरूप स्वीकार किया था उसी को इस विशिष्ट विवेचन का भी आधार बनाना समुचित रहेगा। सामान्यतः यह स्वीकृत है कि शिक्षा का प्रमुख उत्तरदायित्व है युग के संकलित ज्ञान के समुचित प्रेषण द्वारा व्यक्ति को उसके वातावरण के साथ अनुकूलतम समायोजन कर सकने हेतु योग्य बनाना। अतएव शिक्षा का प्रश्न समंजन के दो पक्ष—व्यक्ति तथा उसके पर्यावरण से सम्बन्धित होता है। इन दो पक्षों में से अभी तक शिक्षा केवल एक ही पक्ष पर्यावरण से अधिक सम्बन्धित थी। उसकी समस्या

मानचित्र संख्या १

(पुस्तक पृष्ठ संख्या १० देखें)

मानव-जीवन के विकासक्रम मे निर्देशन का व



यही थी कि पर्यावरण सम्बन्धी वर्धमान ज्ञान राशि को कितने अच्छे ढंग से सरल व्यवस्थित तथा ग्राह्य बना कर प्रेषित किया जाए। यदि हम यों कहें तो अति शयोक्ति नहीं होगी कि मानव का पर्यावरण विभिन्नताओं का एक सतत परिवर्तन शील समूह है जिसका समुचित ग्रहण करने हेतु उसका चयन संकलन व्यवस्थी करण तथा सब किरण करना औपचारिक शिक्षा का उत्तरदायित्व रहा था।

किन्तु हमने देखा कि वर्तमान युग के परिवर्धित ज्ञान क्षेत्रों में जो नवीनतम अध्याय जुड़ा वह था स्वयं मानव का अध्ययन। अब परिस्थिति यह हो गई है कि जिस व्यक्ति तक शिक्षा द्वारा ज्ञान का प्रेषण करना है उस व्यक्ति तथा उसके व्यक्तित्व का भी अध्ययन किया तथा कराया जाए। मानव के इस नूतनतम बहु आयामी अध्ययन ने मानव को बतलाया कि प्रत्येक व्यक्ति अन्तर्सम्बन्धित विभिन्न ताओं का एक अद्वितीय प्रतिरूप है। एक ओर तो मनोविज्ञान ने न केवल प्रत्येक व्यक्ति की बुद्धि रुचि कुशल एवं प्रवृत्तियों में वैभिन्य बताया अपितु इन विशे षकों में नाना प्रकार की आन्तर्वैयक्तिक विविधताओं को दर्शाया जिन्हें तृतीय अध्याय में अधिक स्पष्ट किया जाएगा। दूसरी ओर सामाजिक मनोविज्ञान ने व्यक्तियों में पारस्परिक सुखद अन्तर्सम्बन्धों की स्थापना में भी एक व्यक्ति की व्यक्तिगत विभि न्नता की भूमिका की ओर इंगित किया। इस नवीनतम परिस्थिति के सन्दर्भ में शिक्षा के अपेक्षाकृत सरल उत्तरदायित्व का स्वरूप भी आपेक्ष संश्लिष्ट हुआ। संक्षेप में इसकी व्याख्या हम—विभिन्नताओं के दो समूहों के मध्य उपयुक्त समन्वय स्थापित करना।

अपनी सामान्य परिस्थिति में औसत शिक्षण संस्थाओं ने अपने आप को इस सजटिल उत्तरदायित्व के लिये अपूर्ण-सा पाया। इसी अपूर्णता की भावना में शिक्षा के क्षेत्र में व्यावसायिक निर्देशन का प्रादुर्भाव एवं विकास हुआ।

शिक्षा के इतिहास में विषयों के विशिष्टीकरण युग के समय ही हम निर्देशन के प्रथम प्रश्न कौनसा ज्ञान या कार्य क्षेत्र किसके लिए? की ओर इंगित कर ही चुके थे। अब शैक्षिक इतिहास के नूतनतम अध्याय में पर्यावरणीय ज्ञान तथा शिक्षार्थी का व्यक्तित्व दोनों से सम्बन्धित परिवर्धित ज्ञान राशि के सन्दर्भ में शिक्षा में मार्ग दर्शन का स्वरूप और भी अधिक विशिष्ट हुआ। स्थिति यह थी कि समा योजन के दोनों पक्ष विभिन्नताओं के दो सजटिल प्रतिरूप थे। अतएव उपर्युक्त समा योजन हेतु दोनों ही पक्षों का समुचित ज्ञान शिक्षा प्रक्रम के लिए अनिवार्य हो गया। एक ओर जहां विविध पर्यावरणीय विषय-क्षेत्रों की तकनीकी विशेषताओं का ज्ञान आवश्यक था वहां अब प्रत्येक व्यक्ति की बुद्धि रुचि योग्यता प्रकृति प्रवृत्ति आदि से सम्बन्धित अवबोध भी अनिवार्य हो गया। इस नूतन अवबोध हेतु किसी व्यव स्थित विज्ञान की आवश्यकता पड़ी जो कि शिक्षा में निर्देशन के रूप में अवतरित हुआ। इस सन्दर्भ में उसके विशिष्ट ध्येय इस प्रकार रहे—

—व्यक्ति को अपने आप का सही अवबोध प्राप्त करने में सहायता देना

—अपनी क्षमताओं तथा सीमितताओं के वास्तविक स्वरूप से अवगत कराना
—अपनी क्षमताओं का इष्टतम विकास व उपयोग कर सकने में सहायता देना
—अपने सम्पूर्ण वातावरण में अनुकूलतम समायोजन स्थापित करने में सहायता देना
—अपने जीवन की विविध समस्याओं को समझने व सुलझाने में स्वतन्त्र रूप से सुयोग्य बनाना और
—अपने सर्वोत्तम योगदान समाज को देने में सफल बनाना।

उपर्युक्त ध्येयों के स्वरूप को देखकर एक सहज प्रश्न उठ सकता है कि शिक्षा व निर्देशन में अन्तर क्या हुआ ? उक्त कथित ध्येय आधुनिक शिक्षा के स्वीकृत उद्देश्यों से किस प्रकार भिन्न है ?

इस प्रस्तावना के अध्याय में हमारे प्रारम्भिक विवेचना के स्तर पर ही इन युक्तिसंगत प्रश्नों का उत्तर एक स्वर्ण सूत्र में पिरोना उपयुक्त होगा। विशेषकर शिक्षा के क्षेत्र में तो कार्यकर्ताओं को सदैव स्मरण रखना चाहिए कि निर्देशन शिक्षा से कोई भिन्न प्रक्रिया नहीं है वह शिक्षा प्रक्रम का एक अविच्छिन्न तथा महत्वपूर्ण अंग है।

इस तथ्य का स्पष्टीकरण निम्न चित्र तथा व्याख्या द्वारा किया जा सकता है (देखिए चित्र 2)

यदि शिक्षा का अंतिम लक्ष्य मानव का सर्वांगीण विकास तथा अनुकूलतम समायोजन है तो निर्देशन इन मनोनीत ध्येयों की प्राप्ति में सहायता प्रदान करता है। सर्वांगीण तथा समरस विकास शिक्षा का निर्धारित ध्येय होते हुए भी वस्तुतः एक आदर्श प्रक्रम है। वास्तविकता तो उस तथ्य में है जिसके साथ हमने यह अध्याय प्रारम्भ किया था—कि जीवन का मार्ग सीधा नहीं है। अतएव वस्तुस्थिति यह है कि मानव के समरस बनाने वाले विकास को जीवन की कई ऊंचाइयों निचाइयों के मध्य होकर गुजरना पड़ता है। कल्पना का समरस विकास वह सरल सी रेखा नहीं जो कि मानव-जीवन में अनवरोधित रूप से अग्रसर होती जाए। सर्वांगीण सतत तथा समरस विकास के ध्येय को प्राप्त करने हेतु अनिवार्य होगा कि विकास मार्ग की व्यावहारिक कठिनाइयों के स्वरूप का अवबोध प्राप्त करके उन पर यथासम्भव विजय प्राप्त की जाए। किन्तु इस विजय प्राप्ति हेतु व्यक्ति को कठिनाइयों के सन्दर्भ में ही अपने स्वयं की क्षमताओं सीमितताओं का सही ज्ञान भी अनिवार्य हो जाता है तो जीवन के मार्ग की प्रकृति का अवबोध तथा उस पर सतत अग्रगामी हो सकने हेतु अपने स्वयं की क्षमताओं का उचित अनुमान जो व्यक्ति लगाने में समर्थ हो सकता है वही शिक्षा के निर्धारित ध्येय सर्वांगीण विकास की उपलब्धि के साथ अपने

बहुपक्षी पर्यावरण में समुचित समंजन भी प्राप्त कर सकेगा।

निर्देशन की वैज्ञानिक कला द्वारा उपयुक्त दोनों प्रकार की कुशलताएं व्यक्ति को प्राप्त हो सकती हैं। और ये कुशलताएं प्राप्त होने पर ही शिक्षा के ध्येय की उपलब्धि हो सकती है।

अतएव शिक्षा और निर्देशन के सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए हम कह सकते हैं कि निर्देशन का दर्शन शिक्षा दर्शन का ही वैज्ञानिक विशिष्टीकरण है। ध्येय को आधुनिक काल की जटिलता में उपलब्धेय बनाने हेतु शिक्षा के इस प्रकार्यात्मक अंग का प्रादुर्भाव हुआ है।

(२) शिक्षा की वर्तमान विचारधाराएं

यहाँ तक तो शिक्षा के वर्धमान जटिल स्वरूप के संदर्भ में हमने निर्देशन का प्राथमिक परिचय प्राप्त किया। इसके अनुवर्तन में ही शिक्षा क्षेत्र की वर्तमान विचारधाराओं की पृष्ठभूमि में भी निर्देशन की उदीयमान महत्ता को देख लेना समीचीन होगा।

(क) सैद्धान्तिकता से प्रकार्यात्मकता की ओर—सामान्यतः मानव के इतिहास और विशेष कर शिक्षा के क्षेत्र में उन्नीसवीं शताब्दी को यदि एक सैद्धान्तिक चर्चाओं का युग कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। परिवर्धित ज्ञान राशि के साथ-साथ उस समय मानव का ज्ञान वैतण्ड्य भी अपनी चरम सीमा पर था। जीवन, संसार तथा स्वयं मानव से सम्बन्धित प्रश्नों का उत्तर केवल विदग्धतापूर्ण विचार गोष्ठियों में खोजा जाता था। बीसवीं शताब्दी के वैज्ञानिक उपागम ने इस प्रकार की सैद्धान्तिक चर्चाओं से प्राप्त परिणामों को संदिग्ध दृष्टिकोण से देखा। फलस्वरूप प्रयोग निरीक्षण द्वारा चर्चाओं के विषय तथा उनके परिणामों का व्यावहारिक परिस्थितियों में परीक्षण सत्यापन होने लगा। परिणाम यह हुआ कि शिक्षा के अस्पष्ट, अमूर्त तथा अनुपलब्धेय ध्येयों की भी क्रियापरक व्याख्याएं करने की आवश्यकता प्रतीत हुई। विकास, समंजन, समरसता, सर्वांगीण आदि शब्दों के प्रकार्यात्मक स्वरूप को स्पष्ट करने के प्रयत्न होने लगे।

उक्त उदाहरण हमने शिक्षा-दर्शन के क्षेत्र में व्यावहारिक व्याख्याओं के प्रस्तावना आन्दोलन से लिए। किन्तु वस्तुतः यह आन्दोलन वर्तमान युग के परिवर्तित उपागम का ही प्रतिबिम्ब मात्र है। बीसवीं शताब्दी का मानव मानव अध्ययन से सम्बन्धित विविध क्षेत्रों में इसी प्रकार की जिज्ञासाएं प्रदर्शित करने लगा। विभिन्न क्षेत्रों में वर्धमान ज्ञान को अपने लिए उपयोग में लाने हेतु वह उनके व्यावहारिक शब्दावलियों में व्याख्या की मांग करने लगा। एक दो उदाहरण इस बात को अधिक स्पष्ट कर देंगे। एक ओर शिक्षा-दर्शन ने प्रत्येक व्यक्ति के मूल्य के लिए आदर की घोषणा की ही थी। व्यक्ति के अध्ययन से सम्बन्धित मनोविज्ञान ने वैयक्तिक विभिन्नता की आस्था अभिव्यक्ति करके इस घोषणा को एक प्रकार से वैज्ञानिक सम्पुष्टि प्रदान की। कतिपय अन्य क्षेत्रों यथा—समाज विज्ञान, मानव विज्ञान, संस्कृति विज्ञान

आदि मे भी किसी न किसी प्रकार मानव को समष्टि की एक महत्त्वपूर्ण इकाई मान कर उसका अपने अपने ढग से अध्ययन करने की चेष्टाए प्रकट होने लगी थीं। किन्तु पूर्व युग का सैद्धान्तिक अध्ययन उपरोक्त सभी क्षेत्रो मे झलकता था। सैद्धान्तिक रूप से व्यक्ति को नाना भांति से मान्यता देते हुए भी व्यक्ति-केन्द्रित अध्ययन व्यावहारिक नहीं था। बीसवी शताब्दी की प्रयोगात्मकता ने अपने पूर्व युग की विभिन्न सैद्धान्तिक मान्यताओ को एक क्रियात्मक रूप देना चाहा। निर्देशन का नतन क्षेत्र वर्तमान युग के नाना क्षेत्रो की सैद्धान्तिक आस्थाओ का व्यावहारीकरण करने के उद्देश्य से प्रारम्भ हुआ। व्यक्ति के आत्मबोध की आवश्यकता को इसने आत्मबोध के अन्तर्गत आने वाले घटक तथा उन घटको का अध्ययन करने हेतु साधनो की व्याख्याओ द्वारा स्पष्ट किया। उसके सर्वांगीण विकास की सामान्य अस्पष्टता को मानव ने विविध अंगो तथा उसके विकास के स्वरूप का वैज्ञानिक विश्लेषण स्थूल करके उसे अधिक अवबोधगम्य बनाया। समंजन की शाब्दिक सुन्दरता को समंजन के विविध आयामो उनकी समस्या प्रक्रियाओ तथा उनके लक्षणो के रूप मे एक वैज्ञानिक वास्तविकता प्रदान की। अतएव यदि संक्षेप मे कहा जाए कि मानव केन्द्रित अध्ययन क्षेत्रो के कल्पनाओ-आभासों तक वाक्यों को एक प्रकाशात्मक प्रकाश देने के उद्देश्य से निर्देशन का नवल नक्षत्र मानव जीवन के गगनांगण मे उदीयमान हुआ तो अतिशयोक्ति नही होगी।

(ख) ज्ञान का मानवीकरण—आधुनिक युग की द्वितीय महत्त्वपूर्ण विचार धारा है ज्ञान का मानवीकरण। प्रगतिगामी मानव अपने तथा अपने पर्यावरण के सम्बन्ध मे नाना भाँति के विषय क्षेत्रो से ज्ञान सूचनाए प्राप्त करता जा रहा था। किन्तु कई बार यह ज्ञान केवल ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से ही होता था। वर्तमान युग मे केवल ज्ञान के लिए ज्ञान कथन के स्थान पर जीवन मे अनुप्रयोग के लिए ज्ञान के विकास को अधिक मान्यता मिलने लगी। फलस्वरूप विभिन्न विकासमान ज्ञान-क्षेत्रो की परिवर्धित उपलब्धियो का मानवीकरण होने लगा। शुद्ध शोध द्वारा विषय सिद्धान्तो को स्पष्टता तो प्राप्त हुई ही साथ ही इन सिद्धान्तो द्वारा मानव का दैनन्दिन जीवन किस प्रकार अधिक सुखी बनाया जा सकता है इस ओर शास्त्रवेत्ताओ का ध्यान आकर्षित होने लगा।

यह वह युग था जबकि पशुओं की प्रयोगशालाओ से उद्भूत जीवन-व्यवहारों की व्याख्याओ तक ही सीमित न रहकर मनोवैज्ञानिक स्वतन्त्र रूप से मानवीय भाव संवेग प्रेरण अधिगम आदि मे रुचि लेने लगे थे। शुद्ध विज्ञानो यथा भौतिकशास्त्र रसायन शास्त्र गणित समाज शास्त्र आदि के सिद्धान्तो का मानवीय उन्नयन हेतु अनुप्रयोग तो परिवर्धित हो ही रहा था। किन्तु इसके साथ ही व्यवहार विज्ञानो का एक स्वतन्त्र क्षेत्र हो मानव के अध्ययन मे विशिष्ट रूप से रुचि लेने लगा।

वैज्ञानिक-तकनीकी युग की कई मूल्यवान देनो की स्वीकृति के मध्य भी एक आशंका आभासित हो रही थी कि कहीं जीवन के अति-यान्त्रीकरण से मानवीय

मूल्यों का अत्यधिक ह्रास न होने पाए। औद्योगीकरण की द्रुत जीवन-गति व्यावसायिक प्रगति से उद्भूत सामाजिक गतिशीलता तथा तकनीकी विकास की देन यान्त्रिकता तीनों ही मानो मानव को मानव से दूर खींचती प्रतीत हो रही थी। जहाँ उक्त विकासों के फलस्वरूप मानव जीवन में सजटिलता आती जा रही थी वहाँ इन्हीं के परिणाम स्वरूप मनुष्य को अपने साथी के लिए समय की कमी का भी अनुभव होने लगा था। प्राचीन युग के सरल समाज में मानव मानव के अधिक निकट था अब वह यन्त्रों के अधिक समीप होता जा रहा था। पहले वह अपने सरल प्रश्नों के सम्बन्ध में भी एक दूसरे से बातें कर लेता था मन का बोझा हलका कर सकता था। अब अपने स्नेही का कुशल समाचार प्राप्त करने हेतु उसे दूरभाष पर केवल उसका यान्त्रिक कण्ठस्वर श्रवण करना पड़ता है। आज मानव की योग निष्ठा तथा मान महत्वाकांक्षा इतनी अधिक प्रबल हो गई है कि वह चन्द्रमा के प्राणियों से मिलन हेतु अपने प्राणों की बाजी लगाने को तत्पर है किन्तु वह अपने पड़ोसी से बात करने में असमर्थ होता जा रहा है। ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो समय की कमी के साथ यन्त्रों के आधिक्य के कारण उसकी सम्भाषण योग्यता में उत्तरोत्तर रूप से कमी आती जा रही है तथा मानवीय सम्बन्धों में दुर्बलता प्रविष्ट हो रही है।

ऐसे समय मानवीय विधाओं की सबसे बड़ी चुनौती है मानव का उद्धार। अत्यन्त द्रुत गति से परिवर्तित वर्तमान युग में कदाचित पच्चीस वर्ष पूर्व का व्यक्ति आज का संसार पहिचानने में असमर्थ हो। उसे अपने आप को तथा अपने साथियों को पहिचानने हेतु भी आज विशिष्ट सहायता की आवश्यकता आ पड़ी है। युग की इस वास्तविक माँग में ही निर्देशन के नूतन क्षेत्र का आविर्भाव हुआ तथा वैज्ञानिक युग की वैज्ञानिक विधाओं द्वारा ही उसने इस आवश्यकता की पूर्ति की। इसके लिए इसका आज के युग में विशेष महत्व है।

उपसंहारात्मक कथन

प्रस्तुत अध्याय में हमने समस्त मानव जीवन में निर्देशन के सार्वभौमिक महत्त्व का विभिन्न दृष्टिकोणों से परीक्षण किया। मानव विकास क्रम के विविध स्थलों पर इसके विभिन्न स्वरूपों का विहंगावलोकन करते हुए हमने आज के युग में इसके वैज्ञानिक स्वरूप की महत्ता देखी। तत्पश्चात् वर्तमान युग की कतिपय महत्त्वपूर्ण आस्थाओं सिद्धान्तों का व्यावहारीकरण तथा ज्ञान का मानवीकरण के एक महत्त्वपूर्ण प्रभावात्मक प्रतिबिम्ब के रूप में इसके उद्भव का निरीक्षण किया।

इस विस्तृत परिचयात्मक पृष्ठभूमि के सन्दर्भ में अब निर्देशन के विकासात्मक स्वरूप का अधिक विशिष्ट विवेचन अगले अध्याय में प्रस्तुत किया जाएगा।

२

पृष्ठ भूमि

गत अध्याय के सामान्य विवेचनों के आधार पर कहा जा सकता है कि मानव के इतिहास के साथ ही जीव संसार की आदिम प्रक्रिया मार्गदर्शन का दैनंदिन जीवन की एक स्वाभाविक प्रक्रिया से व्यवस्थित निर्देशन के रूप में विकास हुआ। मानव व्यवहार को वांछनीय दिशाओं में परिवर्तन हेतु निर्देशन करने वाले शिक्षा क्रम में व्यवस्थित निर्देशन की आज एक महत्वपूर्ण भूमिका है। यों तो समस्त संसार में निर्देशन वर्तमान शिक्षा क्षेत्र के एक नवीनतम अंग के रूप में देखा जाता है किन्तु हमारे देश में तो इसके सम्बन्ध में ध्यान ही लगभग दो दशक पूर्व जाग्रत हुआ है।

यों किसी भी क्षेत्र के युक्तियुक्त विकास एवं संस्थापन हेतु दो दशक भी कोई बहुत ही अल्पकाल नहीं है। किन्तु भारत में दो दशकों की अवधि में भी मानो यह क्षेत्र अभी जड़ नहीं पकड़ पाया है। कतिपय अन्य प्रगतिगामी देशों में तो निर्देशन न केवल शिक्षा के एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्यात्मक अंग के रूप में संस्थापित होकर अपनी विभिन्न विशिष्टीकरण शाखाओं उपशाखाओं में विकसित हो रहा है अपितु सामान्य जन जीवन के नाना पक्षों में भी अपने महत्वपूर्ण योगदान देकर उसे अधिक सुखी तथा सम्पन्न बना रहा है। किंतु भारतवर्ष में सामान्य जनता को तो निर्देशन से कोई विशेष परिचय ही नहीं प्रतीत होता। बच्चों को नौकरी वगैरा के बारे में कुछ बताने की धारणा के साथ ही सामान्यतः अभिभावकगण तथा समाज के सदस्य निर्देशन का समीकरण करते हैं। शिक्षा जगत में भी इसका सम्प्रत्यय बहुत स्पष्ट नहीं है। क्या कारण है इस परिस्थिति का? सम्प्रत्यय की अस्पष्टता में तो निर्देशन का इतिहास भारतवर्ष तथा पश्चिम दोनों में ही एक समानान्तर स्थिति प्रस्तुत करता है। अपने प्रारम्भिक काल में पश्चिम में निर्देशन का सम्प्रत्यय स्पष्ट नहीं था। शनैः शनैः उसके विकास के साथ सम्प्रत्यय में स्पष्टता तथा कार्य क्षेत्र में वैज्ञानिकता आती गई। किन्तु भारत में जो अस्पष्टता प्रारम्भ में थी वही बीस वर्षों के पश्चात भी चली आ रही है। चूंकि इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य कार्यकर्ताओं को निर्देशन के मूल तत्वों से परिचय कराना है इसलिये गत अध्याय के परिचयात्मक विवेचन के पश्चात हम निर्देशन के वैज्ञानिक स्वरूप के सम्बन्ध में स्पष्टता प्राप्त करने का प्रयत्न करेंगे। इसके सम्बन्ध में अस्पष्टता अथवा भ्रान्ति

न कारणों को इसके इतिहास में खोजते हुए हम यह देखेंगे कि जिस देश में इसका व्यवस्थित उद्‌भव हुआ वहां पर किन किन स्थितियों में से गुजर कर इसने अपना आधुनिक स्वरूप प्राप्त किया। इसका आधुनिक वैज्ञानिक स्वरूप की रूपरेखा क्या है? तथा इस विकास की अवधि में इसके स्वरूप तथा कार्यों के सम्बन्ध में क्या क्या भ्रान्तियां किन कारणों से रही थीं? तथा वे किस प्रकार दूर हुईं? संक्षेप में इसके परिवर्तित सम्प्रत्यय की पृष्ठभूमि में हम इसके आधुनिक वैज्ञानिक स्वरूप का अधिक सम्पूर्ण एवं युक्तिसंगत अवबोध प्राप्त करेंगे। पश्चिम में इसकी विकास कथा के समानान्तर ही भारत वर्ष में भी इसके उद्‌भव विकास तथा वर्तमान स्थिति पर अधिक युक्तियुक्त अवबोध प्राप्त हो सकता है।

परिवर्तित सम्प्रत्यय पर्यवस्थित

निर्देशन के उद्‌भव तथा विकास का विहंगावलोकन

(१) प्राथमिक श्रौद्योगिक व्यावसायिक निर्देशन

या तो मानव जीवन के सहज अंग के रूप में निर्देशन अपने जन्मस्थल पश्चिम में भी वहां के कुटुम्बों में ही स्वाभाविक रूप में अवस्थित था। लगभग उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक इस सम्बन्ध में वहां की स्थिति अन्य देशों से बहुत भिन्न नहीं थी अर्थात शिक्षा सम्बन्धी नाना प्रकार के प्रश्नों का उत्तर तथा व्यवसाय सम्बन्धी विविध भांति का मार्ग-दर्शन कुटुम्ब के व्यस्क द्वारा ही व्यक्ति प्राप्त करता था।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ की औद्योगिक क्रान्ति ने सम्पूर्ण विश्व में एक वैज्ञानिक हलचल मचा दी थी। पश्चिमीय जीवन में इसका प्रभाव अधिक स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हुआ। इस आन्दोलन का प्रथम प्रत्यक्ष प्रभाव मानव जीवन के मर्मीय स्थल के उपायों- उपागमों पर पड़ा। विशाल नगरों में व्यवसायों के औद्योगीकरण से न केवल कई घरेलू व्यवसायों तथा कुटीर-उद्योगों को क्षतिमय हुआ अपितु औद्योगीकरण के सहज परिणाम व्यवसाय विभिन्नीकरण तथा विशिष्टीकरण ने कई नवीन प्रकार की समस्याएं प्रस्तुत कीं। सर्वप्रथम तो विभिन्न प्रकार के विशेष उद्योगों में कार्य कर सकने हेतु विशिष्ट प्रशिक्षणों की आवश्यकता हुई। इसके साथ ही पैतृक व्यवसाय का स्वाभाविक रूप से अनुसरण करने की सरल स्थिति के स्थान पर नाना प्रकार के व्यवसायों में से उपयुक्त चयन का प्रश्न भी उपस्थित हुआ। जैसाकि हम गत अध्याय में पढ़ चुके हैं- किस व्यक्ति के लिए कौन सा प्रशिक्षण? अथवा किसके लिए कौनसा व्यवसाय? इस प्रकार के निर्णायक प्रश्न समाज में व्यग्रता उत्पन्न करने लगे। स्पष्ट था कि कौटुम्बिक सदस्य कई नवीन व्यवसायों तथा सम्बन्धित शिक्षण व्यवस्था से प्रायः अनभिज्ञ से थे अतः उनके लिए उक्त प्रश्नों के सम्बन्ध में विश्वासपूर्वक सम्मति देना सम्भव नहीं था। उनकी यह अपर्याप्तता जीवन में प्रवेश करने वाले नव किशोरों में एक प्रकार की कुण्ठा उत्पन्न करने लगी। इस कुण्ठा का वर्धन हुआ सामाजिक गतिशीलता से उत्पन्न समस्याओं से। इस प्रकार

एवं घरेलू समस्या अधिकाधिक रूप में सामाजिक उत्तरदायित्व बनती गई। पश्चिम के विभिन्न देशों में स्थानीय स्वायत्त शिक्षा क्षेत्र तथा औद्योगिक कम्पनी ने इस उत्तरदायित्व को सम्भाला। उन्होंने किसी न किसी रूप में व्यवस्थित रूप से नव किशोरों को सम्बन्धित सहायता देने के कार्यक्रम आयोजित किए। इंग्लैण्ड में यह कार्य अधिकांश में स्थानीय स्वायत्त तथा औद्योगिक कम्पनी का रहा। किन्तु अमरीका में यह आन्दोलन सामान्य जनता में प्रारम्भ होकर भी उत्तरोत्तर रूप से शिक्षा के क्षेत्र का अन्तरंग भाग बनता गया। अतएव व्यवस्थित निर्देशन का पश्चिम में सामान्य उद्भव दर्शन के पश्चात् विशेषकर अमरीकन-समाज में इसके बीजांकुरों को खोजना अधिक उपादेय रहेगा। इसका एक कारण तो यह है कि अमरीका में ही इस आन्दोलन की स्पष्टतम प्रगति हुई है तथा इसके अधिकतम योगदान रहे हैं। दूसरे अमरीका में इसके विकास की कहानी का भारत में इसके उद्भव से एक सबल साम्य है।

(क) साहित्यिक स्फूर्ति

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों से ही कतिपय अमरीकन नवयुवक जीवन तथा व्यवसाय में सफलता प्राप्त करने के प्रश्न के सम्बन्ध में रुचि लेने लगे थे तथा उन्होंने लोकप्रिय समाचार-पत्रों और छोटी-छोटी पुस्तिकाओं के माध्यम से इस महत्त्वपूर्ण विषय पर अपने विचार व्यक्त करना प्रारम्भ कर दिया था। जीवन किस प्रकार प्रारम्भ किया जाय? एक नौजवान क्या कर सकता है? जीविकोपार्जन की चुनौती — आदि सामयिक विषयों पर इनके लिखित उद्गार तत्कालीन समाज की अनुभूत आवश्यकताओं के प्रतिक्रिया स्वरूप होने के कारण पर्याप्त स्वीकृति प्राप्त कर रहे थे। समाज के कुछ लोक हितैषी नागरिक तो इस प्रकार दिए जाने वाले निर्देशन के स्वरूप को और भी अधिक विस्तृत करके उसमें युवकों का सामाजिक नैतिक वैयक्तिक मार्ग दर्शन भी सम्मिलित करने के पक्ष में थे। किन्तु अधिकांश में उस समय सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दोनों ही दृष्टिकोणों से व्यवसाय सम्बन्धी निर्देशन को ही सर्वाधिक मान्यता प्राप्त हुई।

(ख) लोक कल्याणी अभिक्रम

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में उक्त कथित साहित्यिक स्फूर्ति को निश्चित परिपुष्टि प्राप्त हुई कतिपय लोक कल्याणी अभिक्रमों के व्यावहारिक कार्य से। था। इस समय अमरीका के कई विशाल नगरों में लोक हितैषी नागरिक (वैयक्तिक अथवा सामूहिक रूप से) युवकों को निर्देशन देने में नेतृत्व ले रहे थे। किन्तु इस सन्दर्भ में सबसे अधिक उल्लेखनीय कार्य रहा 'युवार्क स्टेट' के बास्टन नगर में। फ्रैंक पार्सन्स Frank Parsons नामक एक नागरिक ने बास्टन के नागरिक सेवागृह में एक स्वयंसेवक के रूप में अपना कार्य प्रारम्भ किया था। वहाँ शिक्षा तथा व्यवसाय में असमंजित कई नवयुवकों के सम्पर्क में आकर इनकी सहायतार्थ कुछ अधिक विशिष्ट कार्य करने की उनकी इच्छा सबलतर होती गई। अतएव १९०५ के लगभग उन्होंने

ब्रेड विनर्स इन्स्टीट्यूट (जीविकोपार्जन संस्था) स्थापित की तथा इसके माध्यम से वह नवयुवकों को व्यावसायिक निर्देशन देने का कार्य संगठित करता रहा। मानवीय इतिहास में सर्वप्रथम व्यावसायिक निर्देशन, व्यावसायिक ब्यूरो तथा व्यावसायिक परामर्श दाता पदावलियों का प्रयोग हुआ। निर्देशन सेवाओं के इतिहास में फ्रैंक पार्सन्स 'व्यावसायिक निर्देशन का पिता' तथा बोस्टन का शहर 'व्यावसायिक निर्देशन का पालना' के नाम से विख्यात हुए।

१९०८ में पार्सन्स के असामयिक निधन के उपरान्त भी ब्यूरो का कार्य उसके उत्साही अनुयायियों द्वारा चालू रहा। एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कदम इस ओर शिक्षकों के प्रशिक्षण कार्य द्वारा उठाया गया—और अन्ततोगत्वा यह ब्यूरो विश्वविख्यात हारवर्ड विश्वविद्यालय का व्यावसायिक निर्देशन ब्यूरो बना। इसी समय बोस्टन के विद्यालयी संसार ने भी विद्यार्थियों को व्यावसायिक सहायता देने के कार्य में हाथ बटाना प्रारम्भ किया तथा शालीय अधिकारियों ने इस क्षेत्र में सक्रिय उत्तरदायित्व सम्भाला। व्यावसायिक निर्देशन का झोंका बोस्टन से अन्य स्थानों पर इतनी द्रुत गति से पहुँचा कि १९१० में व्यावसायिक निर्देशन की एक राष्ट्रीय सभा का बोस्टन में आयोजन हुआ। इस सभा में अमरीका के भिन्न भिन्न नगरों का प्रतिनिधित्व रहा।

इस प्रकार स्थानीय अभिकरण तथा शैक्षिक संस्थाओं के सम्मिलित प्रभाव से व्यावसायिक निर्देशन का कार्य अपने शैशवकाल में भी अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से अपने निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति करता रहा। अमरीका के विभिन्न क्षेत्रों में इस आन्दोलन को पर्याप्त लोकप्रियता तथा स्वीकृति प्राप्त हुई।

(ग) भारत में व्यवस्थित निर्देशन का प्रारम्भ

जैसाकि हम पहले ही कह चुके हैं निर्देशन का इतिहास भारतवर्ष तथा अमरीका में एक प्रबल साम्य दर्शाता है। यो समय के दृष्टिकोण से यह पश्चिम से लगभग आधी शताब्दी पिछड़ा हुआ है किन्तु निर्देशन सम्बन्धी सम्प्रत्ययों के जन्म तथा विकास दोनों देशों में लगभग समान परिस्थितियों में से होते हुए एक समान्तर रूप में प्रतीत होते हैं।

भारतवर्ष में निर्देशन का इतिहास लगभग दो दशक प्राचीन ही है। तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात इसके सम्बन्ध में यह है कि भारत में भी व्यवस्थित निर्देशन का जन्म मानव की व्यावसायिक आवश्यकताओं में ही हुआ। नवयुवकों को व्यवसाय सम्बन्धी सूचनाएं देने हेतु किए गए लोकहितैषी नागरिकों के उदार प्रयासों में ही इसका प्राथमिक प्रादुर्भाव हमारे देश में भी दृष्टिगोचर होता है।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में विश्व की उद्योग क्रान्ति की लहर के झोंके से प्राचीन भारत भी बिल्कुल अछूता नहीं रहा था। फिर इस देश में भी विशाल औद्योगिक नगरों की समस्याएं किसी भी अन्य देश के औद्योगिक केन्द्रों से बहुत भिन्न

नही हो सकती थीं। औद्योगिक भारत में बम्बई के पारव रवा म द ही एक ऐतिहासिक महत्व रहा है। बीसवी शताब्दी के लगभग मध्यकाल में औद्योगिक हलचल की सवेदना इस नगरी म प्रकट हुई। यहाँ के व्यापार मस्तिष्की नागरिको ने नवयुवको को व्यापार उद्योग की नई दिशाओं के लिए तयार करने के लिए उन्हें व्यावसायिक जीवन के प्रारम्भिक तथ्यो से परिचित प्रबुद्ध करना चाहा।

तदनुसार बम्बई म इस समय पारसी पचायत ब्यूरो नामक एक लोकहितैषी मनोवाचारिक संस्था की स्थापना हुई। पश्चिम म उद्भूत निर्देशन की प्रारम्भिक व्यवस्थित संस्थाओं के सन्दर्भ हो इसका नामकरण भी पारसी पचायत वोकेशनल गाइडेन्स ब्यूरो हुआ।

इस सन्दर्भ म दूसरा अत्यन्त ही रुचिकर साम्य यह है कि पश्चिम के समान ही इस ब्यूरो ने भी अपनी प्रारम्भिक निर्देशन क्रियाए साहित्यिक प्रकाशनो के माध्यम से की। छोटी-छोटी पुस्तिकाओ के द्वारा यह ब्यूरो अत्यन्त ही सरल तथा व्यावहारिक रूप से नवयुवको को नवीन व्यवसायो सम्बन्धी सूचनाए प्रसारित करने लगा। इसके साथ ही इस ब्यूरो का सबसे महत्वपूर्ण काय रहा एक चिरस्मरणीय पत्रिका का प्रकाशन जिसे उन्होने एम्प्लायमेन्ट ब्राफ वोकेशनल गाइडेन्स कहा। इस पत्रिका म उत्तरोत्तर उन्नति होती गई तथा यह भारत म निर्देशन आन्दोलन और गतिविधियों के सम्बन्ध म सूचना प्रसारण का एक मुख्य माध्यम रही। यह पत्रिका आज भी आल इण्डिया एजुकेशनल एण्ड वोकेशनल गाइडेन्स असोसियेशन की मुख पत्रिका है। अत यह निस्सकोच कहा जा सकता है कि भारतवष म निर्देशन सेवाओ के क्षेत्र म इस ब्यूरो का काय अत्यन्त ही महत्वपूर्ण रहा।

इस ब्यूरो के सचालक डा होशाग मेहता थे जिनका नाम आज भी व्यावसायिक निर्देशन के क्षेत्र म अत्यन्त आदर पूवक लिया जाता है तथा जो अभी भी केन्द्रीय मन्त्रालय के वोकेशनल गाइडेन्स यूनिट म सम्माननीय पद पर स्थित हैं। इनकी विदुषी पत्नी डा श्रीमती परिन मेहता ने भी प्रारम्भ से ही इस काय म रुचि ली तथा कोलम्बिया विश्वविद्यालय से निर्देशन म अग्रिम योग्यता प्राप्त की। व्यावसायिक निर्देशन के केन्द्रीय ब्यूरो की भी वे सचालिका रही। मिनिस्ट्री आफ लेबर मे डा होशाग मेहता द्वारा व्यावसायिक निर्देशन के क्षेत्र म राष्ट्रीय महत्व का काम किया गया। अमरीका म राष्ट्रीय स्तर पर विकसित डिक्शनरी आफ आक्यूपेशन्स की ही दिशा मे केन्द्रीय वोकेशनल गाइडेन्स यूनिट म डा मेहता ने भारतवष म भी व्यवस्थित ढग से व्यवसायो का राष्ट्रीय सवर्गीकरण (नेशनल क्लासिफिकेशन आफ आक्यूपेशन्स) करवाया तथा राष्ट्रीय और प्रान्तीय दोनो ही स्तरो पर विविध व्यवसायो म प्रशिक्षण अवसरों पर अत्यन्त मूल्यवान साहित्य का प्रकाशन किया। निर्देशन आन्दोलन के प्रारम्भिक काल म अमरीका मे प्रकाशित व्यवसाय सूचना सम्बन्धी सरल साहित्य की ही भाँति डा मेहता के डी जी आर एण्ड ई (डाइरेक्टरेट जनरल आफ रिहैबिलिटेशन एण्ड एम्प्लायमेन्ट) ने भारत म प्रचलित विविध व्यवसायो से सम्बन्धित छोटे छोटे

वेरियर पेम्फलेटस प्रकाशित किए जिनमें व्यवसाय सम्बन्धी सक्षम सूचना के साथ साथ उसमें आवश्यक प्रशिक्षण सम्बन्धित सूचनाएं भी सुस्पष्ट रूप से समाहित की जाती रही। ये पत्रिकाएं विद्यार्थियों तथा उनके अभिभावकों के लिए भी अत्यन्त ही लाभप्रद सिद्ध हुई।

अमरीका के समान ही व्यावसायिक निर्देशन आन्दोलन भारत के अन्य प्रान्तों में भी प्रसारित हुआ। कुछ प्रान्तों में स्वतन्त्र रूप से व्यावसायिक निर्देशन ब्यूरोज स्थापित करने के अतिरिक्त कतिपय मनोवैज्ञानिक ब्यूरोज ने भी निर्देशन के काम में वैज्ञानिक रुचि लेना प्रारम्भ किया। इनमें इलाहाबाद ब्यूरो आफ साइकोलाजी का नाम उल्लेखनीय है।

किन्तु भारतवर्ष के सम्बन्ध में स्मरणीय तथ्य यह है कि यहां निर्देशन का बीजांकुर तो व्यावसायिक क्षेत्र में हुआ ही किन्तु इसके विकास तथा वर्तमान स्थिति में 'व्यावसायिक' सप्रत्यय की पुट अत्यन्त प्रबल रही।

(घ) 'व्यावसायिक' उपसर्ग का महत्त्व एवं अभिप्रेत अर्थ

पूर्वीय तथा पाश्चिमीय दोनों ही देशों में निर्देशन के प्रारम्भिक बीजांकुरों की उपयुक्त गाथा एक तथ्य की ओर संकेत करती है। स्पष्ट है कि व्यवस्थित निर्देशन के सप्रत्यय का ही जन्म व्यक्तियों की व्यावसायिक आवश्यकताओं तथा व्यावसायिक समायोजन के प्राथमिक प्रयत्नों में हुआ। जो भी यह सत्य है कि कालान्तर में इसका कार्य शिक्षण तथा मनोवैज्ञानिक क्षेत्रों में विविधतः विकसित हुआ यद्यपि जैसा कि हमने देखा इसके प्रारम्भिक काल में तो शिक्षाविदों अथवा मनोवैज्ञानिकों को इससे कोई सम्बन्ध नहीं रहा। इसके मौलिक उद्भव की गाथा तो व्यक्ति के व्यावसायिक जीवन के साथ ही सबल रूप से सगठित है। कदाचित यही कारण रहा होगा जिसने 'निर्देशन' शब्द के पूर्व प्रयुक्त उपसर्गों में से 'व्यावसायिक' विशेषण को सर्वाधिक लोकप्रिय बनाया। जबसे 'निर्देशन' शब्द का प्राविधिक प्रयोग जीवन में औपचारिक मार्गदर्शन जैसे साधारण अर्थ से अधिक विशिष्ट अर्थ में होने लगा तभी से 'व्यावसायिक' विशेषण 'निर्देशन' के साथ जुड़ा और आज भी सर्वसाधारण लोकधारणा के अनुसार 'निर्देशन' का पर्याय ही है 'व्यावसायिक निर्देशन'। अपने आधुनिक वैज्ञानिक स्वरूप को प्राप्त कर चुकने पर भी यह विशेषण निर्देशन शब्द के साथ इतना अधिक सम्बन्धित हो चुका है कि पश्चिम तथा भारत जैसे स्थानों पर यह उपसर्ग एक लम्बी अवधि तक 'निर्देशन' के साथ प्रयुक्त होता रहा। भारतवर्ष में तो अभी भी न केवल सामान्य जनता के मानस में अपितु शिक्षा जगत में भी निर्देशन का सप्रत्यय 'व्यावसायिक निर्देशन' के रूप में ही प्रवस्थित है शब्दावलियों के प्रयोग में भी इसी पदावली का प्रचलन लोकप्रिय है। इसके इस लम्बे प्रयोग के विषय में एक और तथ्य की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं।

यह एक सामान्य अनुभव तथा साधारण ज्ञान की बात है कि व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन समन्जन में उसका व्यावसायिक समन्जन एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण भूमिका रखता है। वस्तुतः उसके जीविकोपार्जन से सम्बन्धित क्रियाओं का उसके समस्त जीवन में केन्द्रीय महत्त्व होता एवं अविवाद्य वास्तविकता है। जीवन की मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने का मुख्य साधन होने के कारण व्यक्ति अपने व्यवसाय को सर्वाधिक मान्यता दे लेता है। किन्तु इसके साथ ही उसके सामाजिक व्यक्तिगत जीवन का सन्तोष असन्तोष भी एक बहुत बड़ी सीमा तक उसके व्यावसायिक समन्जन से अनुवर्धित रहता है। अपने जागृत जीवन का लगभग दो तिहाई भाग व्यक्ति अपने व्यावसायिक उत्तरदायित्व पूर्ण करने में व्यतीत करता है। अतएव स्वाभाविक है कि उसके जीवन का सामाजिक पक्ष भी उसके व्यावसायिक सहकर्मियों के साथ अन्तरंग रूप से घुला मिला रहता है। उनके साथ समान रुचि सूचना ज्ञान प्राप्ति की सम्भागिता होने के कारण व्यवसाय की औपचारिक संगति के अतिरिक्त अपने अनौपचारिक सामाजिक सम्बन्धों में भी सामान्यतः एक ही व्यवसाय के व्यक्ति एक-दूसरे के निकट आ पाते हैं। वे एक ही भाषा बोलते हैं इसलिये एक दूसरे को बोली समझते हैं। निरन्तर किए जाने वाले कार्य में रुचि विरुद्धता अवधान अनास्था कौशल्य अनभिज्ञता व्यक्ति के उस व्यवसाय की क्रियाओं से प्राप्त व्यक्तिगत सन्तोष को भी प्रभावित करती है। यही सन्तोष असन्तोष अपने मन में समेटे प्रायः व्यक्ति काम करके घर लौटता है। स्वाभाविक है कि व्यवसाय की खुशियाँ उसके घर में भी बिखरें और वहाँ पर प्राप्त मान्यताओं व सन्तुष्टियों का प्रकाश उसके गृह जीवन को भी आलोकित कर दे। किन्तु यह भी आशंका हो सकती है कि वहाँ के तनावपूर्ण वातावरण की दमित कुण्ठाएँ विरक्तियाँ उसके सहज सुख से परिपूर्ण घरेलू जीवन में एक ऐसा विष घोल दें जिसकी कटुता की वह तथा उसके कुटुम्ब के सदस्य दोनों ही न समझ पावें। कार्यालय में अपने स्वामी के हाथ अनावश्यक रूप से अपने सम्मान पर ठेस पाते हुए विवशता पूर्वक मौन साधने वाला व्यक्ति जब गृह व्यथा समय घर आते ही अपने भोले बालक की स्वाभाविक जिज्ञासा पर झुंझला उठता है अथवा निर्दोष पत्नी के मुख से घर की नेमी आवश्यकताओं का विवरण सुनकर सन्तुलन खो बैठता है तब उसकी इस अपसामान्य मनोस्थिति पर उसके घर के व्यक्ति किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं। कई बार वे स्वयं अपनी व्यस्तता दुराग्रह दुर्बलता के कारण नहीं समझ पाते उस यह सज्ञान हो सकना कठिन है कि घर की ये समायामासित घटनाएं तो केवल वे प्रत्यक्ष कारण हैं जो कि कई संचित पुर प्रवर्तक तथा शाश्वतक कारणों के ज्वाला के लिये केवल एक नन्ही सी अग्नि कणिका का कार्य कर रहे हैं। कहने का तात्पर्य यह कि व्यक्ति के व्यावसायिक जीवन का सन्तोष असन्तोष केवल उसकी व्यावसायिक तृप्ति अतृप्ति तक ही सीमित नहीं रहता। वह उसके सम्पूर्ण सामाजिक वैयक्तिक तथा घरेलू जीवन को भी सघन रूप से अनुवर्धित करता है।

एसी परिस्थिति म यह मानना है यदि व्यक्ति अपने समूचे जीवन म अपने व्यवसाय को प्राथमिकता दे ? संक्षेप में हम कह सकते हैं कि व्यक्ति का समस्त जीवन समजन एक अन्त तक की सीमा तक उसके व्यावसायिक समजन पर निर्भर करता है। व्यवस्थित निर्देशन के बीजांकुरों की गाथा से यह भी स्पष्ट हुआ कि मानव की व्यावसायिक समस्याओं में ही उस विभिन्न मार्ग दर्शन देने की प्राथमिक योजनाएं भी बनी था। इसलिए जीवन-समायोजन के मुख्य आधार व्यावसायिक समायोजन के हो इर्द गिर्द यदि इस क्षेत्र के कार्यकर्ताओं का चिन्तन भटका रहा तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। फलस्वरूप निर्देशन शब्द के साथ नाना उपसर्गों में से व्यावसायिक सबसे अधिक समय तक उसके साथ संयुक्त रहा। जीवन की सजीव आवश्यकताओं में जो प्रथम विशेषण निर्देशन के नाम के साथ जुड़ा वह आज निर्देशन के विकसित तथा व्यापक युग में भी जनमन में गहराई के साथ अंकित है। हमारे देश में तो अभी भी निर्देशन प्रक्रियाओं का नामकरण अधिकांश में व्यावसायिक निर्देशन पूरा ही होता है।

निर्देशन शब्द के साथ इस प्रकार के उपसर्ग प्रयुक्त करने से इसके सैद्धान्तिक सम्प्रत्यय तथा व्यावहारिक कार्य क्षेत्र में जो अवांछनीय सीमितताएं उत्पन्न होती हैं उनका विवेचन आगे करेंगे। अभी तो इसके परिवर्तित तथा विकासमान सम्प्रत्यय में व्यावसायिक निर्देशन की धारणा का महत्व निर्देशन आन्दोलन के प्राथमिक बीजांकुर के रूप में प्रस्तुत मात्र किया जा रहा है।

(२) निर्देशन के सम्प्रत्यय का विकास पश्चिम निर्देशन

(क) पश्चिम में

पश्चिम में व्यावसायिक जीवन में निर्देशन के बीजांकुरों के सम्बन्धित प्रस्तुत विवरण में इंगित कर दिया था कि स्थानीय सामाजिक अभिकरणों के जन हितार्थ काम की परिपुष्टि में कुछ शिक्षण संस्थाओं ने भी विद्यार्थियों को इस दिशा में व्यवस्थित सम्पन्नता देने हेतु सक्रिय चरण उठाए थे। व्यावसायिक निर्देशन पूरी तथा व्यावसायिक निर्देशक प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना कतिपय विख्यात विश्व विद्यालयों ने अन्तरंग विभागों के रूप में की थी तथा माध्यमिक स्तर पर शिक्षा विद् और शिक्षा संस्थाएं भी इस दिशा में सक्रिय रुचि लेने लगे थे। फिर भी सामान्यतः निर्देशन कार्यकर्ताओं का ध्यान इसके व्यावसायिक पक्ष पर ही केन्द्रित था। अमरीका में इस समय व्यावसायिक निर्देशन आन्दोलन को प्रभावित करने वाली दो राष्ट्रीय विचारधाराएं, वैज्ञानिक प्रबन्ध व्यवस्था तथा सन्तुलित शिक्षा के नाम से प्रचलित थी।

औद्योगीकरण के इस तकनीकी युग में व्यवसाय संचालन हेतु प्रबन्ध-व्यवस्था को अनिवार्य रूप से वैज्ञानिक बनाना आवश्यक था। लागत के न्यूनतम उपयोग से अधिकतम उत्पादन हो सके यह सामान्यतः उद्योग की मूल समस्या रहती है।

इन हल के समाधान में अन्तर्गत कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण चयन नियुक्ति तथा पदोन्नति के प्रश्न निहित रहते हैं। स्वाभाविक है कि औद्योगीकरण की प्रगति के साथ व्यवसाय व्यवस्थापक इस प्रकार के प्रश्नों से चिंतित रहते थे। व्यावसायिक निर्देशन को भी इन प्रक्रियाओं से सम्बन्ध या वैज्ञानिक व्यवसाय व्यवस्था आन्दोलन से उसे और भी अधिक स्फूर्ति प्राप्त हुई। औद्योगिक उन्नति हेतु वैज्ञानिक ढंग से कार्य सचालन के फलस्वरूप व्यवसायगत उद्योगपतियों ने यह भी अधिकाधिक अनुभव किया कि किसी भी व्यवसाय में सफलता प्राप्त करने हेतु कार्यकर्ताओं में एक विशिष्ट शक्ति पृष्ठभूमि की आवश्यकता है। पृष्ठभूमि में प्रत्येक व्यवसाय की आवश्यकताओं के अनुरूप भिन्न हो सकती है। विविध अवसरों के अन्तर्गत किए गए व्यवसाय विश्लेषणों तथा समय व गति शोधों के माध्यम से वैज्ञानिक औद्योगिक व्यवस्थापक इस प्रकार की विशिष्ट कुशलताओं का निर्धारण विभिन्न व्यवसायों हेतु कर रहे थे। इनके परिणामों के आधार पर ही विविध व्यवसायों में प्रवेश तथा सफलता प्राप्त करने हेतु समपूर्ण प्रारम्भिक प्रशिक्षण की योजना बनाई जा सकती थी। साथ ही चयन तथा पदोन्नति के समय भी कार्यकर्ता में इन कुशलताओं का अस्तित्व एक बना नया मापदण्ड हो सकता था।

इस प्रकार के प्रशिक्षण कार्यक्रमों की योजना तथा धारणा में प्रवेश पूर्व प्रशिक्षण कार्यक्रमों के स्वरूप के सम्बन्ध में एक तथ्य अधिकाधिक स्पष्ट होता गया। उत्तरोत्तर रूप से यह आस्था प्रबल होने लगी कि इन कार्यक्रमों में एक व्यावहारिक वास्तविकता का पुट होना आवश्यक है। प्रशिक्षण कार्यक्रमों की कक्षाओं में दिये जाने वाले सद्धान्तिक ज्ञान की सम्पूर्ति व्यवसाय स्थल पर दिये गये वास्तविक प्रशिक्षण द्वारा की जानी चाहिए। इस प्रकार की सम्पूर्ति को प्रतिपादित करने वाली विचारधारा सहकारी शिक्षा के नाम से विख्यात हुई। हर्मन श्नाइडर के समसाम-यिक डा श्नाइडर का नाम इस आन्दोलन में उल्लेखनीय है। डा श्नाइडर इस समय सिनसिनेटी विश्वविद्यालय में इन्जीनियरिंग महाविद्यालय के प्रमुख थे। व्यावसायिक निर्देशन आन्दोलन से निकट रूपेण सम्बन्धित होने पर भी सहकारी शिक्षा पद्धति में व्यावसायिक निर्देशकों की इतनी आवश्यकता न थी जितनी कि कार्यक्रम-संयोजकों की। जैसाकि इस नामकरण से ही स्पष्ट है कार्यक्रम संयोजकों से यह अपेक्षित था कि उनको—व्यवसाय की आवश्यकताओं, नाना के प्रवेश पूर्व प्रशिक्षण कार्यक्रमों तथा व्यावसायिक प्रशिक्षण के उद्योग क्षेत्र की परिस्थितियों—तीनों के सम्बन्ध में पर्याप्त ज्ञान व अवबोध हो। इस अवबोध के आधार पर वे प्रशिक्षण के दोनों पक्षों—छात्रों का सद्धान्तिक ज्ञान तथा व्यवसाय क्षेत्र का व्यावहारिक अनुभव—में समुचित सम्बन्ध स्थापन कर सकते थे। साथ ही शैक्षणिक प्रशिक्षण क्षेत्रीय अनुभव तथा व्यावसायिक कार्य में एक सुन्दर समायोजन उत्पन्न कर सकते थे। इस प्रकार के प्रवेश पूर्व संयोजित प्रशिक्षण से प्रशिक्षार्थी कार्यकर्ता में व्यवसाय में सफलता हेतु पर्याप्त ज्ञान सूचना तथा व्यावहारिक क्षमता

दोनों के ही विकसित होने की अन्त अधिक सम्भावनाएं थीं। पहले ही कहा जा चुका है कि व्यवसाय में अपेक्षित कुशलताओं का निदान व्यवसाय विश्लेषण तथा अन्य शोध प्रविधियों द्वारा कर लिया जाता था तथा इनके परिणामों के आधार पर प्रशिक्षण कार्यक्रमों की अधिक वास्तविक योजनाएं बनाई जाती थीं। इस प्रयोग द्वारा उत्पादन की परिमाणात्मक तथा गुणात्मक—दोनों प्रकार से वृद्धि हुई तथा व्यावसायिक क्षेत्र में अधिक सफलता प्राप्त हुई।

व्यावसायिक निर्देशन के उद्देश्यों से निकट सामान्य रखने के कारण इस प्रयोग का भी निर्देशन आन्दोलन पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। सबसे अधिक स्पष्ट तो यह प्रभाव निर्देशन के परिवर्तित होते हुए सम्प्रत्यय में प्रतिबिम्बित हुआ। उद्योग में वैज्ञानिक प्रबन्ध व्यवस्था तथा सहकारी शिक्षा जैसे ही आन्दोलनों ने व्यावसायिक तथा शैक्षणिक निर्देशन के निकट अन्तसम्बन्धों की ओर कार्यकर्ताओं का ध्यान आकर्षित किया था। इस क्षेत्र में यह उत्तरोत्तर रूप से स्पष्ट होता गया कि शैक्षणिक निर्देशन की शून्यता में व्यावसायिक निर्देशन नहीं दिया जा सकता। किसी भी व्यवसाय का चयन करने हेतु तथा उसमें प्रवेश प्राप्त करने हेतु निर्देशन देने के पूर्व व्यक्ति को सम्बन्धित शैक्षिक कार्यक्रमों के चयन तथा समुचित प्रशिक्षण के माध्यम से अपेक्षित व्यावसायिक दक्षताएं प्राप्त करने के उद्देश्य से निर्देशन देना भी एक महत्त्वपूर्ण पूर्वावश्यकता है। इस प्रकार की मान्यताओं के फलस्वरूप अभी तक के व्यावसायिक निर्देशन के आकार प्रकार में एक अन्तरङ्गी आयाम शैक्षणिक निर्देशन के नाम से जुड़ा। निर्देशन के स्वरूप की व्यावसायिक सम्प्रत्यय की संकुचित सीमाओं से मुक्ति हुई तथा उसका अभिक-व्यावसायिक निर्देशन के अपेक्षाकृत विस्तृत क्षेत्र में विकास हुआ। जब अर्थपूर्ण व्यावसायिक निर्देशन देने हेतु सम्बन्धित पूर्व प्रशिक्षण की महत्ता अधिकाधिक स्पष्ट होने लगी वहां सप्रयोजन शैक्षिक निर्देशन देने के लिये भी व्यक्ति की व्यावसायिक अपेक्षाओं आशाओं अभिरुचियों तथा क्षमताओं को ध्यान में रखना आवश्यक समझा जाने लगा।

इस प्रकार बीसवीं शताब्दी के द्वितीय दशक में व्यावसायिक तथा शैक्षणिक निर्देशन के निकट अन्तसम्बन्ध एवं उनकी अनिवार्य अन्योन्याश्रितता अधिकाधिक स्पष्ट हो चली। इस अन्तसम्बन्ध के वैज्ञानिक स्थापन में ट्रूमन केली का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने कोलम्बिया विश्वविद्यालय से सन १९१४ में अपनी डाक्टरल थीसिस "शैक्षणिक निर्देशन" में व्यावसायिक तथा शैक्षणिक निर्देशन का सम्बन्ध शोध के आधार पर प्रदर्शित किया।

हम देख चुके हैं कि इंगलैण्ड में भी निर्देशन का प्रारम्भ मानव की व्यावसायिक आवश्यकताओं में ही हुआ था तथा वहां पर भी राष्ट्रीय औद्योगिक केन्द्रों ने इस विषय में विशेष रुचि ली थी। किन्तु समय की गति के साथ ग्रेट ब्रिटेन में व्यावसायिक निर्देशन को व्यवसाय-सम्बन्धी सलाह प्रशिक्षण तथा नियोजन के रूप में देखने की अपेक्षा उसे मोटे रूप से शैक्षिक कार्यक्रम का ही एक अंग मानने की

प्रवृत्ति रही। इसके पश्चात् सन् १९४४ के उपरान्त एवं के प्रभावस्वरूप जब अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का कार्यस्तर बढ़ा दिया तब माध्यमिक विद्यालयों में व्यावसायिक निर्देशन की योजना को अधिक समय बनाने की आवश्यकता की ओर राष्ट्र का ध्यान आकर्षित हुआ। शालाओं में व्यवसाय चालू रखने वालों के अतिरिक्त शाला-शिक्षा सम्पूर्ण करके उस क्षेत्र वाले विद्यार्थियों को भी एक ये व्यावसायिक निर्देशन की महत्त्व स्वीकार होने लगा।

माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों की व्यावसायिक आवश्यकता के प्रति इस मान्यता के फलस्वरूप शालाओं में 'करियर मास्टर' के पद का आरम्भ हुआ। यह एक रुचिकर तथ्य है कि भारतवर्ष में माध्यमिक शालाओं में प्रारम्भ व्यावसायिक सूचनाएं प्रसारित करने वाले निर्देशन कार्यकर्ताओं के लिए 'करियर मास्टर' पद स्वीकार किया। यो इसके अतिरिक्त भवन तथा गुणात्मक दोनों के। सन्दर्भ में इस शब्द के प्रयोग से भारतवर्ष में निर्देशन के सम्बन्ध में सम्बन्धी सम्भ्रान्तियों में वृद्धि ही हुआ।

(ख) भारतवर्ष में

भारतवर्ष में कहा जा सकता है कि भारतवर्ष में भी निर्देशन के इसके सङ्कुचित 'व्यावसायिक' अर्थ तथा विस्तृत 'शैक्षिक' अधिक भाव में ज्यों ज्यों ज्ञान के प्रसार में लगभग इसी प्रकार की विचारधारा एवं गतिविधियाँ रहीं जिस प्रकार की हमने पश्चिम में देखा। यों तो निर्देशन — प्राथमिक कक्षा में भी निर्देशन के अतिरिक्त तथा व्यावसायिक पक्षों के अन्तसम्बन्धों को समान तो पाया जाता था। किन्तु माध्यमिक शाला के विद्यार्थियों के लिए व्यावसायिक निर्देशन की महत्त्वपूर्ण आवश्यकता के प्रति वास्तविक सचेतना सन् १९५२ के माध्यमिक शिक्षा सर्वेक्षण के पश्चात् तत्पश्चात् हुई। माध्यमिक शिक्षा आयोग ने शालाओं में विद्यार्थियों की परिवर्धित संख्या की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए उनकी वैयक्तिक विभिन्नताओं की समस्या प्रदर्शित की। उसने स्पष्ट किया कि शिक्षा जगत की इस सतत विकासमान जनता की बुद्धि, रुचि, क्षमता आदि में विभिन्न होने के कारण सभी के लिए एक ही प्रकार का कार्यक्रम वस्तुतः उपयोगी नहीं सिद्ध हो सकता। इसके साथ ही देश की औद्योगिक उन्नति के परिप्रेक्ष्य में भारत में भी विभिन्न प्रकार के तकनीकी व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करने पर बल आरम्भ किया। इन दोनों आवश्यकताओं के सन्दर्भ में आयोग ने इनके साथ उत्तर माध्यमिक शिक्षा की योजनाएं प्रस्तावित कीं।

किन्तु इस प्रस्तावना के साथ ही उन्होंने एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथ्य की ओर शिक्षाविदों का ध्यान आकर्षित किया। उन्होंने स्पष्ट कहा कि केवल ऐसे पाठ्यक्रमों की योजना बनाने मात्र से ही उनके निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति नहीं कर सकता। यदि व्यक्ति की क्षमताओं के उच्चतम सदुपयोग के साथ राष्ट्रीय उत्पादन में भी अनुरूपतम उत्पादन करना है तो व्यक्ति की उनकी क्षमताओं तथा भविष्य की व्यावसायिक योजनाओं के अनुसार ही विशिष्ट माध्यमिक पाठ्यक्रमों में निर्देशित करना अनिवार्य होगा।

अतः जिन उद्देश्यों को लेकर बहुउद्देशीय शैक्षिक संस्थाओं का जन्म हुआ था उनकी वास्तविक उपलब्धि हेतु शैक्षणिक तथा व्यावसायिक निर्देशन के निकट अन्तसम्बन्ध तथा अन्योन्याश्रितता की अनुभूति शिक्षा जगत के लिए आवश्यक समझी गई। अतः हम कह सकते हैं कि भारतीय समाज में विकासमान शैक्षिक कार्यक्रमों औद्योगीकरण की परिवर्धित योजनाओं तथा इन योजनाओं के अन्तर्गत आयोजित विभिन्न व्यवसायों के विशिष्टीकरण ने शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन के पारस्परिक सम्बन्धों को स्पष्ट किया।

यह आस्था देश में शनैः शनैः बल पकड़ने लगी। निर्देशन ब्यूरो के नामकरण में निर्देशन शब्द के पूर्व शैक्षिक – व्यावसायिक दोनों ही उपसर्ग सम्मिलित रूप से प्रयुक्त होने लगे। राष्ट्रीय स्तर पर निर्देशन संघ का नामकरण भी आल इण्डिया एजुकेशनल एण्ड वोकेशनल गाइडेंस एसोसियेशन हुआ तथा वार्षिक पंचायत ब्यूरो की जो प्रारम्भिक मुख पत्रिका इस एसोसिएशन द्वारा चल रही थी उसका नाम भी जनरल आफ एजुकेशनल एण्ड वोकेशनल गाइडेंस हुआ।

(३) निर्देशन के सम्प्रत्यय में अग्रिम विस्तार व्यक्तिगत-सामाजिक निर्देशन

(क) पश्चिम में

अपने प्रारम्भिक विकासमान वर्षों में निर्देशन का कार्य शैक्षिक-व्यावसायिक निर्देशन के नाम से सामान्यतः माध्यमिक शाला के विद्यार्थियों एवं उनके समवयी नवकिशोरों तक ही सीमित रहा। ऐसा अनुमान था कि महाविद्यालय में पढ़ने वाले नवयुवकों को इस प्रकार के निर्देशन की बहुत आवश्यकता नहीं थी।

अमरीका के महाविद्यालयों में निर्देशन का कार्य इस स्तर पर अध्ययन करने वाली नवयुवतियों की सामाजिक व्यक्तिगत आवश्यकताओं से प्रारम्भ हुआ। जब प्रथम बार देश के महाविद्यालयी जीवन में युवतियाँ उच्च अध्ययन हेतु प्रवेश लेने लगीं तो सह शिक्षा से उद्भूत सामाजिक व्यक्तिगत समस्याओं की आशंका शैक्षिक अधिकारियों को चिन्तित करने लगी। अतएव उन्हें इन पक्षों में निर्देशन देने हेतु एक महिला पदाधिकारी डीन पद की स्थापना की गई। तत्पश्चात् इस पद का विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों के डीन के रूप में विकास हुआ। तदनन्तर महाविद्यालय में भी विद्यार्थियों की संख्या बढ़ती होने के कारण नवयुवकों के लिए भी डीन की व्यवस्था की जाने लगी। शनैः शनैः अमरीका के सभी महाविद्यालयों में युवक युवतियों के व्यक्तिगत सामाजिक समायोजन में विविध भांति का निर्देशन देने हेतु कार्यक्रम आयोजित किए जाने लगे। महाविद्यालयों में छात्रों की संख्या में वृद्धि विश्वविद्यालयों के आकार प्रकार में अभूतपूर्व वर्धन तथा इनमें दिए जाने वाले शैक्षणिक कार्यक्रमों की भी असीम विविधता के कारण पाया जाने लगा कि प्रायः शाला के अपेक्षाकृत सुरक्षित पर्यावरण से आने वाले छात्र सहसा इतने विशाल शैक्षिक क्षेत्र के बहुआयामी वैविध्य में सम्भ्रान्त हो जाते थे अपने आपको खोया हुआ

सा पाते थे । इनके बाद वह विश्वविद्यालयों में जो कि अपने आप में छोटी मोटी नगरियों के सदृश ही थे शैक्षिक चयन तथा समायोजन के अतिरिक्त भी कई अन्य समस्याओं का सामना प्रवेशार्थियों को करना पड़ता था । वहाँ के छात्रावास अथवा उससे बाहर आवास-स्थान प्राप्त करना, भोजन, विश्राम, मनोरंजन की सुविधाओं के विषय में अवगत होना, आंशिक समय व्यवसाय के अवसरों के विषय में सूचनाएं प्राप्त करना अथवा विविध भांति के कोषों से पुस्तकों आदि सम्बन्धी सहायता प्राप्त करना ये और इस प्रकार की अन्य कई समस्याएं थीं जिनमें महाविद्यालयी छात्र को सहायता की आवश्यकता होती थी । इस प्रकार की सहायताएं देने हेतु विश्वविद्यालयों में भांति भांति के व्यवस्थित अभिस्थापन कार्यक्रमों की भी आयोजना होने लगी । निर्देशन के सम्प्रत्यय के इस विस्तृत विकास में हम दो प्रकार का परिवर्तन स्पष्ट देखते हैं, प्रथम तो वयस्तर सम्बन्धी तथा द्वितीय जीवन के आयाम सम्बन्धी । वयस्तर में निर्देशन के कार्य क्षेत्र का विस्तार माध्यमिक कक्षा के नवकिशोरों से महाविद्यालय की उच्च कक्षाओं में अध्ययन करने वाले व्यक्तियों तक हुआ । जीवन आयामों के दृष्टिकोण से निर्देशन कार्य केवल व्यवसाय चुनाव में सहायता देने से विस्तृत होकर अब शैक्षिक, व्यावसायिक, व्यक्तिगत तथा सामाजिक सभी प्रकार के क्षेत्रों में व्यक्ति का मार्गदर्शन करने में विस्तृत होने लगा ।

(ख) भारत में

इस प्रकार के विस्तार का भारत में परीक्षण करने पर पुनः वही ऐतिहासिक समानान्तरता पाई जाती है जो कि इस बिन्दु के पूर्व की विवेचना में हमें दृष्टिगोचर हुई थी । भारतवर्ष में भी निर्देशन का मानव के व्यक्तिगत सामाजिक पक्ष तक विस्तार महाविद्यालय में प्रवेश पाने वाले नवयुवक-युवतियों अथवा उच्चतर माध्यमिक शालाओं की अंतिम कक्षाओं में शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्र छात्राओं की समंजन-समस्याओं में हुआ । हमारे यहाँ भी सहशिक्षा और संक्रामक वय दोनों ने मिलकर निर्देशन कार्यकर्ताओं का ध्यान इस वय की विशेष कठिनाइयों के प्रति आकर्षित किया । मनोविज्ञान तथा शिक्षा के क्षेत्र में प्रगतिगामी बड़ौदा विश्वविद्यालय में प्रथम बार विद्यार्थी निदेशन की व्यवस्थित रूप से स्थापना हुई । यों इस वयस्तर पर तथा महाविद्यालयों में छात्रों के व्यक्तिगत सामाजिक समंजन में निर्देशन की आवश्यकता की संवेदना तो भारत में कई स्थानों पर हुई किन्तु इस सम्बन्ध में व्यावहारिक कार्य बहुत अधिक नहीं हो पाया । बम्बई तथा दिल्ली के महाविद्यालयों से सम्बन्धित कतिपय व्यक्तियों ने इस विषय पर साहित्य-सृजन अवश्य किया किन्तु इसका कोई प्रकार्यात्मक स्वरूप हमारे यहाँ स्पष्ट रूप से विकसित नहीं हो पाया । सुरक्षित शालीय जीवन से महाविद्यालयों के अपेक्षाकृत अधिक स्वतन्त्र तथा स्व उत्तरदायित्वपूर्ण वातावरण में प्रविष्ट होते समय तथा उस शिक्षा स्तर पर अध्ययन अध्यापन की परिवर्तित परिस्थितियों के सन्दर्भ में भी महाविद्यालय में प्रवेश पाने वाले छात्रों को कई बार विविध समंजन समस्याओं का सामना करना पड़ता है । इस

प्रकार की कठिनाइयों में निर्देशन देने की ओर भारतीय कार्यकर्ताओं ने कोई सक्रिय कदम नहीं उठाए। इसके अतिरिक्त हम देख चुके हैं कि वर्धमान विद्यार्थी संख्या वाले विशाल विश्वविद्यालयों की अपनी कतिपय विशिष्ट समस्याएं होती हैं। अतएव ऐसे स्थानों पर पश्चिम में नवीन प्रवेशार्थियों के लिये व्यवस्थित रूप से अभिस्थापन कार्यक्रमों का आयोजन करना निर्देशन का एक विशिष्ट उत्तरदायित्व समझा जाता है। भारत में इस प्रकार की भी चेतना विशिष्ट रूप से परिलक्षित नहीं हुई। वस्तुतः भारतवर्ष में व्यक्तिगत निर्देशन का सम्प्रत्यय सैद्धान्तिक स्तर पर ही थोड़ा बहुत विकसित हो पाया। अधिकांश में यह शैक्षिक व्यावसायिक निर्देशन तक ही सीमित रहा।

(४) इस सम्प्रत्यीय विस्तार के अभिप्रेत अर्थ

गत पृष्ठों में निर्देशन शब्द के साथ प्रयुक्त विविध उपसर्गों के संयुक्त होने की जिस विकासात्मक गाथा का हमने पश्चिम तथा भारत दोनों स्थानों पर विहंगावलोकन किया उसमें निर्देशन के सम्प्रत्यय सम्बन्धी एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तथ्य उभरता सा दृष्टिगोचर होता है। निर्देशन शब्द के साथ मानव जीवन के अधिकाधिक क्षेत्रों से सम्प्रत्यय उत्तरोत्तर रूप से संयुक्त होकर इन विविध क्षेत्रों के अन्तःसम्बन्ध की ओर स्पष्टरूपेण इंगित करते से प्रतीत होने हैं। हमने देखा कि शैक्षणिक अथवा व्यावसायिक निर्देशन में कोई विभाजन नहीं था। वरन् वे कालान्तर में एक दूसरे के पूरक के रूप में ही विकसित हुए। तत्पश्चात् पाया गया कि मानव की शैक्षिक-व्यावसायिक समस्याओं को भी उसके व्यक्तिगत सामाजिक प्रश्नों की शून्यता में देखना सम्भव नहीं था। अतएव निर्देशन के कार्यों में व्यक्ति के इन पक्षों का समस्याओं को भी समाहित किया गया। किन्तु ध्यान देने का तथ्य यह रहा कि किसी भी क्षेत्र में निर्देशन का कार्य एक दूसरे पक्ष की शून्यता में न हो सका।

यह वास्तविकता मानव व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों की अन्तःसम्बन्धित सुसंगठितता को सुस्पष्ट करती है। व्यक्ति न केवल शैक्षिक पक्ष होता है न केवल व्यावसायिक अथवा केवल सामाजिक। मानव व्यक्तित्व एक ऐसी सम्बद्ध इकाई है जहां एक पक्ष की स्थिति अन्य पक्षों की गतिविधियों पर प्रभाव डालती है। इस तथ्य का विशिष्ट विवेचन तो आगत अध्यायों में प्रस्तुत किया जावेगा। यहां तो निर्देशन के सम्प्रत्ययीय विकास से सम्बन्धित तथ्य के रूप में ही इस पर कुछ प्रकाश डालना चाहेंगे।

तो सम्प्रत्ययीय दृष्टिकोण से पूर्व विवेचनों के आधार पर अब हम यह कह सकते हैं कि निर्देशन शब्द के पूर्व किसी भी क्षेत्रवाचक (कार्यवाचक) विशेषण का प्रयोग करना मानो निर्देशन के विस्तृत कार्य को उस विशिष्ट क्षेत्र तक ही सीमित कर देना होगा। इस प्रकार की सीमाएं बहुपक्षी मानव व्यक्तित्व की प्रकृति के ही विपरीत हैं। निर्देशन कार्यकर्ताओं ने अपने कार्य अनुभव से इस तथ्य का वास्तवीकरण किया। जीवन के व्यावसायिक क्षेत्र की समस्याओं में कार्य प्रारम्भ करने के कारण व्यावसायिक उपसर्ग द्वारा ही इस कार्य की परिधि की व्याख्या हो सकती थी शैक्षिक क्षेत्र तक कार्य विस्तार हो जाने पर शैक्षिक व्यावसायिक दोनों विशेषणों का

प्रयोग होने लगा। तत्पश्चात् छात्रों की सामाजिक व्यक्तिगत समस्याओं की सचेतनता ने इस पक्ष में भी निर्देशन की आवश्यकताओं को स्पष्ट किया।

यद्यपि व्यक्तित्व के उक्त सभी पक्षों की अन्तर्सम्बद्धिता के विषय में निर्देशन कार्यकर्त्ता स्पष्ट हो चले थे फिर भी इस अन्तर्सम्बन्ध को व्यक्त करने हेतु निर्देशन शब्द के पूर्व चार विशेषण शैक्षिक व्यावसायिक सामाजिक व्यक्तिगत प्रयुक्त करना अटपटा सा लगता था। अतः यह सरल तथा स्वाभाविक मार्ग था सभी पूर्व उपसर्गों को हटा देना तथा केवल 'निर्देशन' शब्द का प्रयोग करते हुए इसके सम्प्रत्यय में उन सभी पक्षों में कार्य करने की आवश्यकता को निहित मानना।

शैक्षिक प्रयोग तथा व्यावसायिक कार्यक्षेत्र दोनों ही दृष्टिकोणों से कालान्तर में निर्देशन के सम्प्रत्यय में इसी प्रकार का विकास हुआ। किन्तु इस विकसित वर्तमान स्वरूप की व्याख्या करने के पूर्व एक और महत्त्वपूर्ण प्रभाव निर्देशन के क्षेत्र पर पड़ा। चूँकि इस प्रभाव ने न केवल निर्देशन के सम्प्रत्यय अपितु उसकी कार्य विधाओं को भी काफी मात्रा में प्रभावित किया इसलिए निर्देशन के आधुनिक स्वरूप तथा कार्य उपागम के विवेचन के पूर्व उसे भी इसके सम्प्रत्यय की विकासमान गाथा में समाहित करना समीचीन होगा।

(४) प्रथम महायुद्ध : निर्देशन पर मनोविज्ञान का प्रभाव

(क) मनोवैज्ञानिक उपकरणों का उद्भव—निर्देशन के प्रारम्भिक बीजांकुरों के अध्ययन में हम देख चुके हैं कि व्यवस्थित निर्देशन का जन्म औद्योगिक क्रान्ति के बदलते युग में नवकिशोरों को जीवन समायोजन हेतु सहायता देने के उदार प्रयत्नों में हुआ था। यहाँ स्वयं सेवा करने वाले व्यक्ति न तो शिक्षाविद् थे न मनोविज्ञानवेत्ता। वे तो उदार धार्मिक वृत्ति वाले परोपकारी नागरिक थे जो कि अपने साधारण ज्ञान तथा जीवन के अनुभवों के आधार पर ही इस सहायता का व्यवस्थित रूप में आयोजन करते थे। फलस्वरूप इनके द्वारा आयोजित निर्देशन को प्रेरित करने वाली सद्भावना अत्यन्त ही प्रशंसनीय थी। किन्तु इस सद्भावना, उदार उपागम तथा परोपकार वृत्ति को आदर पूर्वक स्वीकार करते हुए भी यह तथ्य स्पष्ट था कि न तो इन प्रारम्भिक कार्यकर्त्ताओं की निजी पृष्ठभूमि वैज्ञानिक थी न इनके कार्य उपागमों अथवा विधाओं में कोई प्रचुर वस्तुनिष्ठता। निजी अनुभव तथा ज्ञान के आधार पर ही वे व्यक्तिनिष्ठ उपागम लिए हुए जो कुछ भी कर सकते थे उतना सद्भावनापूर्वक अवश्य करते थे।

प्रथम महायुद्ध ने निर्देशन के नवजात कार्य को एक महत्त्वपूर्ण मोड़ दिया। इस महायुद्ध की अवधि में सैनिक कार्यकर्त्ताओं के चयन, नियुक्ति, पदोन्नति, प्रतिस्थापन आदि को विधिवत् सम्पन्न करने हेतु वैज्ञानिक उपकरणों का जन्म हुआ। ये उपकरण सेना के कार्य हेतु प्रशिक्षित मनोवैज्ञानिकों द्वारा व्यवस्थित रूप से निर्मित किए जाते थे। अल्प समय में जितनी भी शोध अथवा पूर्व परीक्षण सम्भव हो सकता था उसे इन उपकरणों के निर्माण में विधिवत् अपनाया जाता था। आशा की जाती

था कि निरे अनुभव की अपेक्षा वैज्ञानिक उपकरणों द्वारा किए परीक्षणों पर आधारित प्राग्युक्तियाँ अधिक सही हो सकेंगी।

व्यक्तियों के सेना व्यवसायों में चयन नियुक्ति हेतु किए गए बहुमूल्य शोध तथा वैज्ञानिक उपकरणों की ओर निर्देशन कार्य में रत तत्कालीन औद्योगिकों तथा शिक्षाविदों का भी ध्यान आकर्षित हुआ। उन्होंने अत्यन्त उत्साहपूर्वक इन उपकरणों का प्रयोग उद्योग तथा शिक्षा दोनों में ही करना प्रारम्भ कर दिया। इस घटना को हम शिक्षा में मनोविज्ञान के सूत्रपात के रूप में देख सकते हैं।

(ख) निर्देशन को मनोविज्ञान की देन—इस युग की नवीनतम विचारधारा तथा कार्यगत निर्देशन के व्यावहारिक कार्य के लिए सेना हेतु बनाए हुए उपकरण अत्यन्त सहायक सिद्ध हुए। निर्देशन कार्यकर्त्ता अधिकाधिक यह अनुभव करते जा रहे थे कि व्यक्तियों को अर्थपूर्ण निर्देशन देने हेतु वैयक्तिक विभिन्नताओं का वैज्ञानिक ज्ञान एक अनिवार्य पूर्वावश्यकता है। उदीयमान नवीन व्यवसायों तथा उनमें भी प्रस्फुटित विविध विशिष्टीकरण शाखा उपशाखाओं का ज्ञान तो फिर भी लिखित साहित्य, अनौपचारिक विचार विमर्श, प्रत्यक्ष अनुभव अथवा सामान्य ज्ञान के आधार पर अधिकांश में प्राप्त किया जा सकता है। किन्तु सजटिल व्यक्तित्व के नाना प्रसूत लक्षणों का केवल अनुभव अनुमान के आधार पर निश्चय करना बहुत अधिक वैध एवं विश्वसनीय नहीं प्रतीत होता था। अतः अधिक वैज्ञानिक आधार पर व्यक्तियों के सम्बन्ध में प्राग्युक्तिकरण करने वाले नवीन मनोवैज्ञानिक उपकरणों का निर्देशन कार्यकर्ताओं ने अत्यन्त ही उत्साहपूर्वक स्वागत किया। अब तक व्यक्तियों को जो सहायता केवल निजी अनुभव तथा सामान्य ज्ञान के आधार पर दी जाती थी उसके स्थान पर अब निर्देशन कार्यकर्ताओं को वैज्ञानिक साधनों का अधिक विश्वासपूर्ण आधार प्राप्त हुआ। इस प्रकार कहा जा सकता है कि निर्देशन आन्दोलन को मनोविज्ञान की सबसे बड़ी देन यह रही कि उसने निर्देशन को एक वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया। निजी अनुभव तथा सामान्य ज्ञान द्वारा दी गई व्यक्तिनिष्ठ सलाह का प्रतिस्थापन वस्तुनिष्ठ एवं वैज्ञानिक उपकरणों के आधार पर व्यवस्थित रूप से आयोजित 'निर्देशन' से हुआ।

(ग) इस देन का दूसरा पक्ष—मनोविज्ञान की निर्देशन को उक्त देन एक अमिश्रित वरदान के रूप में नहीं आई। वस्तुतः निर्देशन को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करने के साथ साथ उसने निर्देशन के सम्प्रत्यय में एक अवांछनीय सीमितता को प्रविष्ट किया। वह सीमितता थी—निर्देशन कार्यक्रमों को मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के पर्याय रूप में देखना।

मनोवैज्ञानिक उपकरणों के दर्शनीय स्वरूप तथा वैज्ञानिक उपायमों के आकर्षण से मनोविज्ञान में अप्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित व्यक्ति भी इनका अनाधिकार प्रयोग करने हेतु अग्रसर होने लगे। या महायुद्ध के काल में भी कभी कभी समय की कमी से कई नवीन मनोवैज्ञानिक उपकरणों का उपयोग उनकी वैधता विश्वसनीयता

के पर्याप्त पूर्व-परीक्षण के बिना ही प्रारम्भ हो जाया करता था। ये उपकरण इनके प्राथमिक स्वरूपों में ही शिक्षा तथा निर्देशन के क्षेत्र में भी अपना लिये जाते थे। पश्चिम में तो उक्त दोनों प्रवृत्तियां तुरन्त ही राष्ट्रीय स्तर पर परीक्षण संस्थाओं की स्थापना करके नियन्त्रित की गईं। ये संस्थाएं मनोवैज्ञानिक उपकरणों का विधिवत् निर्माण करती थीं, निर्मित उपकरणों के राष्ट्रीय मानक विकसित करती थीं तथा प्रयुक्त मनोवैज्ञानिक उपकरणों द्वारा प्राप्त दत्त सामग्री का विधिवत् विवेचन करने की सेवाएं प्रदान करती थीं।

किन्तु इन संस्थाओं के इस योगदान के बावजूद भी मनोविज्ञान के निर्देशन कार्य पर पड़ रहे अवांछित सम्बन्धी प्रभाव का समुचित नियन्त्रण नहीं हो सका। चूंकि मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का एक चकाचौंधमय आयोजन शालाओं के सामान्य से प्रवीण होने वाले तमाम कार्यक्रमों को एक वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करता दृष्टिगोचर होता है इसलिए इसकी दर्शनीयता से प्रभावित होकर शालीय कार्यकर्त्ताओं ने केवल परीक्षण के लिये ही परीक्षणों का उपयोग करना चाहा। स्पष्ट है कि इस परिस्थिति का दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम हुआ—साधन साध्य में सम्भ्रान्ति। हम देख चुके हैं कि निर्देशन का सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य था वैयक्तिक विभिन्नताओं एवं वातावरण विशिष्टताओं के व्यापक अध्ययन तथा समुचित मान के आधार पर प्रत्येक व्यक्ति को उसके अनुकूलतम समायोजन एवं विकास हेतु यथा तथा विश्वसनीय सहायता प्रदान करना। इस दृष्टिकोण के अनुसार तो इन विभिन्नताओं के अवबोध अथवा विशिष्टताओं के अध्ययन हेतु प्रयुक्त किए जाने वाले सभी उपकरण साधन मात्र हैं। अन्ततोगत्वा व्यक्ति का सुखी समायोजन ही एक अन्तिम साध्य के रूप में देखा जाना चाहिये। नवीन साधनों के वैज्ञानिक स्वरूप से असन्तुलित रूप से प्रभावित होकर कार्यकर्त्ताओं ने इन्हें ही अन्तिम साध्य मान लिया। एक साधन मात्र को ही साध्य मान बैठने से साध्य की प्राप्ति में जो अवरोधन हो सकता है उसके प्रति पश्चिम में निर्देशन कार्यकर्त्ताओं की संवेदना कुछ काल पश्चात् जागृत हो गई तथा वे इस दिशा में त्रुटि करने से सम्हल गए।

भारतवर्ष का शिक्षा क्षेत्र तथा उदीयमान निर्देशन कार्य भी एक सीमा तक सुरक्षा सेवाओं के उच्चस्तरीय मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के उच्च स्तरीय मनोवैज्ञानिक परीक्षणों से प्रभावित हुआ था। किन्तु सेना के कार्य के लिए परीक्षण प्रायः गोपनीय हुआ करते थे। अतः सामान्य जनता उनका प्रयोग नहीं कर सकती थी। भारत में मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के प्राथमिक प्रयोगों के सम्बन्ध में एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति यह रही कि इन उपकरणों का इसी देश की जनता पर निर्माण करने के बजाय कार्यकर्त्ताओं ने पश्चिमीय पृष्ठभूमि में विकसित तथा वहां की जनसंख्या पर मानकीकृत साधनों को यथावत् अंगीकार करके उनका भारतीय जनता पर अन्धाधुन्ध उपयोग किया। अनुपयुक्त साधनों द्वारा मापे जाने वाले अमूर्त वैयक्तिक लक्षणों का अनुमान विश्वसनीय नहीं हो सकता तथा इन मापों के आधार पर की गई प्रार्थक्ति में भी वैधता का अभाव हो सकता है। इस ओर हमारे कार्यकर्त्ताओं का ध्यान नहीं गया।

शनै शनै इस तथ्य की ओर संवेदनाएं जाग्रत हुई तथा पश्चिमीय उपकरणों को यथातथ्य अंगीकार करने के स्थान पर उनके अनुकूलन के प्रयत्न होने लगे। समय की गति के साथ भारतीय जनता को आधार मान कर स्वतन्त्र रूप से इसी जन संख्या हेतु परीक्षण निर्माण करने का कार्य भी प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार के निर्माण कार्य तथा अनुकूलन प्रयत्नों के विषय में उपयुक्त स्थल पर विशद चर्चा की जावेगी। यहां तो काल की विविध गतिविधियों का निर्देशन के परिवर्तित सम्प्रत्यय पर जो प्रभाव पड़ा उसी से हमारा प्रत्यक्ष वास्ता है।

भारतवर्ष में इन परीक्षणों के उपयोग का सबसे अधिक अवांछनीय प्रभाव पड़ा निर्देशन के सम्प्रत्यय पर। विशेष कर—मनोविज्ञान तथा मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के क्षेत्र में पश्चिम से अपेक्षाकृत पिछड़े हुए होने के कारण भारतीय कार्यकर्ताओं ने कदाचित प्रतिक्रिया स्वरूप इस वैज्ञानिक भासित होने वाले—कार्यक्रम को एक असन्तुलित प्राधान्य दिया। सर्वप्रथम तो निर्देशन के क्षेत्र में वे लोग कार्य कर रहे थे जिन्हें निर्देशन के दर्शन में दीक्षा के स्थान पर पश्चिमी देशों में मनोविज्ञान में प्रशिक्षण प्राप्त हुआ था। इनके साथ भारत में मनोविज्ञान में प्रशिक्षित अथवा अर्धप्रशिक्षित कार्यकर्ता भी निर्देशन कार्य की ओर उन्मुख थे। इनके सम्मिलित प्रारम्भिक उत्साह में कभी-कभी यह मूल मनोवैज्ञानिक तथ्य दृष्टि से परे हो जाता था कि अवैध उपकरण के प्रयोग पर आधारित प्राक्कथित करने की अपेक्षा अनुभव के आधार पर दी गई राय कम हानिकारक होती है।

निर्देशन कार्य को वैज्ञानिक बनाने हेतु कई बार मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का प्रशासन तथा गणन ही पर्याप्त समझा जाता था तथा अधिक महत्वपूर्ण कार्य विवेचन को उतना अधिक महत्व नहीं मिल पाता था। स्पष्ट है कि परिणामस्वरूप निर्देशन क्षेत्र में साधन साध्य की सम्भ्रान्ति हमारे देश में व्यापक रही। दुर्भाग्यवश अभी भी यह सम्भ्रान्ति निर्देशन तथा मनोविज्ञान दोनों के ही क्षेत्र में से तिरोहित नहीं हो पाई है। अभी भी कई उत्तरदायी पदों पर शिक्षित व्यक्ति केवल निष्पादन परीक्षणों की समानता ही मनोवैज्ञानिक परीक्षणों से करने को सहमत होते हैं। उनके विचार में जब तक वैज्ञानिकी-तकनीकी यन्त्रों के सदृश प्रायोगिक तड़क भड़क उत्पन्न नहीं होती तब तक किसी उपकरण को मनोवैज्ञानिक परीक्षण मानना उचित नहीं। आश्चर्य की बात है कि कई महत्वपूर्ण अनुदान संस्थाओं से मनोवैज्ञानिक परीक्षणों हेतु धनराशि केवल निष्पादन परीक्षणों—जिन्हें उपकरण कहा जाता है—प्राप्त होती है। इस उपागम के अनुसार रोरशा तथा थीमेटिक अपरसेप्शन टेस्ट के सदृश उच्चस्तरीय सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक परीक्षण भी मनोवैज्ञानिक परीक्षण के संवर्ग में नहीं आते। उनके क्रय हेतु पुस्तकालय शीर्षक से अनुदान प्राप्त होता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि भारत में मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का समीकरण अभी भी अधिकांश में वैज्ञानिकी आभासित होने वाली तड़क भड़क से है तथा निर्देशन

कार्य का समीकरण मनोवैज्ञानिक परीक्षणों से।

निर्देशन में विशेष रूप से दीक्षित व्यक्ति इस स्थिति को सुधारने का प्रयत्न अवश्य कर रहे हैं। किन्तु सामान्य जनता के मानस में—तथा कई अंशों में शिक्षा जगत में भी निर्देशन का सम्प्रत्यय इस सीमितता में आबद्ध है। कई बार शाला अधिकारी अपने विद्यालयों में निर्देशन कार्यक्रम की स्थापना एक प्रभावपूर्ण मनोवैज्ञानिक परीक्षण आयोजन के रूप में ही करते पाए जाते हैं। उन्हें अभी इस बात का सवन्न तथा मनान न ो है कि निर्देशन के लिए उपयुक्त कई साधनों में से मनोवैज्ञानिक परीक्षण—व्यक्ति सम्बन्धी सूचनाएं एकत्रित करने का केवल एक उपकरण है। निर्देशन में इस साधन की सही भूमिका के विषय में तो यथा स्थान विवेचन करेंगे। यहां पर तो निर्देशन के परिवर्तित सम्प्रत्यय में मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के प्रभाव का विवेचन मात्र प्रस्तुत किया जा रहा है।

(५) निर्देशन के सम्प्रत्यय पर नवीनतम प्रभाव

निर्देशन के परिवर्तित सम्प्रत्यय पर जो सबसे अर्थपूर्ण आधुनिक प्रभाव पड़ा है वह है व्यक्ति के अध्ययन सम्बन्धी वर्तमान विचारधारा का। इस अग्रगामी चिन्तन के अनुसार व्यक्ति के अवबोध हेतु एक अत्यन्त विस्तृत उपागम अपनाना वांछनीय समझा जाता है। उसके सर्वांगीण बहुपक्षी व्यक्तित्व के सम्पूर्ण ज्ञान हेतु न तो केवल एक शास्त्र पर्याप्त है न किसी भी शास्त्र द्वारा प्रयुक्त कोई संकीर्ण उपागम। फलस्वरूप जहां मानव के बहुआयामी व्यक्तित्व के अध्ययन हेतु इस युग में नाना विज्ञानों का अन्तःशास्त्रीय उपागम अधिकाधिक रूप से स्वीकृत होता जा रहा है वहां मानव-व्यवहार का विशेष रूप से अध्ययन करने वाले मनोविज्ञान में भी सर्वांगीण उपागम को उत्तरोत्तर मान्यता प्राप्त होती जा रही है।

चूंकि इस युग में निर्देशन को शिक्षा-क्षेत्र का एक अंतरंग भाग स्वीकार किया जा रहा है इसलिए यह भी स्वाभाविक ही था कि उस पर आधुनिक शिक्षा दर्शन का प्रभाव पड़े। केवल जीविकोपार्जन के लिए शिक्षा के संकुचित ध्येय से विस्तृत होकर आज के जनतान्त्रिक शिक्षा-दान के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का सतत सर्वांगीण विकास है। तदनुसार शिक्षा के अंग निर्देशन का उद्देश्य भी व्यवसाय प्राप्ति में सलाह की सीमित परिधि से बहुरूपी व्यक्ति को बहुआयामी सहायता के रूप में विस्तृत हुआ।

इस स्थल पर अब निर्देशन के कार्यक्षेत्र में प्रयुक्त कतिपय शब्दावलियों का विवेचन निर्देशन के सम्प्रत्यय विकास के अनुक्रम में करने के पश्चात् हम आधुनिक युग में निर्देशन के स्वीकृत स्वरूप की विशद व्याख्या प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे।

निर्देशन शब्दावलियों का स्पष्टीकरण

किसी भी नवीन कार्यक्षेत्र का प्रारम्भ करने की प्राथमिक कठिनाइयां होती हैं सम्बन्धित शब्दावलियों का निर्धारण। यह निर्धारण दो प्रकार से हो सकता है। या तो नूतन शब्दावली का नए सिरे से निर्माण हो सकता है अथवा सामान्यतः प्रचलित शब्

म स ही प्राय समानार्थी शब्दों का चयन करके इन शब्दों को क्षत्रीय आवश्यकताओं के अनुरूप तकनीकी अर्थ दे दिया जाता है। मानव व्यवहार के विज्ञान ने सामान्यत द्वितीय उपागम को ही अपनाया जिसके स्वभावत अधिक लोकप्रिय होने की सम्भावना है। विकासमान मनोविज्ञान का एक विशिष्ट अनुप्रयुक्त स्वरूप होने के कारण निर्देशन के क्षेत्र ने भी इस सम्बन्ध में मनोविज्ञान के उपागम को ही अपनाया।

किन्तु इस उपागम को अपनाने में इस क्षेत्र में एक कठिनाई रही। निर्देशन के ऐतिहासिक विकास की जो गाथा हमने पूर्वांश में पढ़ी उसमें निर्देशन के स्वरूप सम्बन्धी कई सम्भ्रान्तियों की कहानी भी छनी मिली है। निर्देशन सम्बन्धी विकासमान शब्दावलियों पदावलियों का अध्ययन भी ऐसी ही कतिपय अप्रत्यक्षीय सम्भ्रान्तियों की ओर संकेत करता है। इसीलिए निर्देशन के विकासात्मक स्वरूप का विवेचन इन शब्दावलियों के स्पष्टीकरण के बिना अधूरा ही रह जायगा। अतएव कतिपय सम्बन्धित शब्दावलियों के उद्भव विकास एवं गुणार्थ का संक्षिप्त विवरण निम्न अनुच्छेदों में प्रस्तुत किया जा रहा है।

(१) मार्ग दर्शन एवं निर्देशन

हम देख चुके हैं कि भारतवर्ष में व्यवस्थित निर्देशन का सम्प्रत्यय विकसित होने में पश्चिम की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। निर्देशन के लिए अंग्रेजी शब्द है गाइडेंस जिसकी मार्गदर्शन से समानता है। प्राय नवीन स्थान पर राह दिखाने वाले को गाइड कहा जाता है तत्पश्चात् गाइड का गुणार्थ नवीन स्थान पर राह दिखाने वाले उस स्थान सम्बन्धी ज्ञान सूचना भी प्रदान करने वाले तक विस्तृत हुआ। फलस्वरूप गाइडेंस का अर्थ हुआ किसी विषय वस्तु स्थान या व्यक्ति सम्बन्धी ज्ञान-सूचना प्रदान करना। शिक्षा व्यवसाय अथवा जीवन के सम्बन्ध में गाइडेंस के समानार्थी मार्गदर्शन का प्राथमिक प्रयोग उसके शब्दार्थ के अनुसार ही हुआ। जिस प्रकार एक गाइड स्थल स्थान में अनजान लोगों को मार्ग दिखाता है उस स्थल सम्बन्धी सही सूचनाएं उपलब्ध करता है उसी प्रकार मानव जीवन के कई अपरिचित क्षेत्रों में प्रविष्ट होने समय जो विशेषज्ञ सम्बन्धित ज्ञान सूचनाएं प्रदान कर सके वह गाइड कहला सकता था तथा उसके द्वारा दी गई विशिष्ट सहायता मार्ग दर्शन कहलाती थी। निर्देशन के लिए प्रयुक्त इस आदर्श पदावली की एक विशेषता की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहेंगे। दर्शन का शब्दार्थ दिखाने से अधिक स्वयं देख सकना के अधिक निकट है। मैं समझती हूं स्वयं देख सकना का गुणार्थ निर्देशन के विशिष्ट ज्ञान से अधिक सम्बन्धित है जहां व्यक्ति को प्रत्यक्ष रूप से निश्चित राह दिखा देने के बजाय सम्बन्धित सूचनाओं के आधार पर उसे स्वयं अपनी राह का दर्शन कर सकने हेतु समर्थ बनाया जाता है। वस्तुतः निर्देशन द्वारा दिया गया दर्शन केवल मार्ग का ही दर्शन नहीं–अपितु व्यक्ति द्वारा अपने स्वयं का भी सही मार्ग में दर्शन होता है। हिन्दी भाषा में कई व्यक्तियों द्वारा गाइडेंस के लिए मार्ग-दर्शन शब्द का प्रयोग इसके प्रारम्भिक काल में देखने में आता है। किन्तु

चूँकि मार्ग-दर्शन में मार्ग पर ही अधिक बल दिया सा प्रतीत होता है इसलिए इस शब्द का निर्देशन के क्षेत्र से स्वाभाविक विनाश एवं दृष्टि से तो ठीक ही हुआ। अभी भी अनौपचारिक क्षेत्रों में इच्छित सहायता के लिए मार्ग-दर्शन शब्द का प्रयोग सामान्यतः प्रचलित है। किन्तु वैज्ञानिक निर्देशन के क्षेत्र में अब इसका विशेष प्रयोग नहीं पाया जाता।

(२) निदेशन एवं निर्देशन

उक्त दोनों शब्दों में एक निकट शाब्दिक साम्य होने पर भी दोनों के दार्शनिक निहितार्थों में अन्तर है। अन्त में शिक्षा मन्त्रालय द्वारा तकनीकी शब्दावली का निर्माण होने के पूर्व निदेशन शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के Direction शब्द के समानार्थ में होता था। तदनुसार डाइरेक्टर को निदेशक तथा डाइरेक्टरेट को निर्देशालय कहा जाता था।

शाब्दिक गुणार्थ के अनुसार डाइरेक्शन शब्द में एक आदेश एवं अधिकार की भावना निहित रहती है जिसको कि गाइडेंस शब्द के विकासमान दर्शन से न केवल प्रत्यक्ष असम्मति अपितु प्रत्यक्ष विरोधिता है। इधर सामान्य बोलचाल में गाइडेंस के लिए मार्ग-दर्शन, निर्देशन, परामर्श आदि कई शब्द चल पड़े थे। अतएव तकनीकी शब्दावली आयोग ने डाइरेक्शन के लिए निदेशन तथा गाइडेंस के लिए निर्देशन शब्द निश्चित करके इन दोनों सम्बन्धी शब्दों के गुणार्थों में स्पष्ट विभेद कर दिया। डाइरेक्शन तथा गाइडेंस इन दोनों ही अंग्रेजी के शब्दों में निहित विभिन्न दर्शन के अनुसार यह विभेदीकरण उपादेय ही रहा। निदेशन के समान निर्देशन के प्रक्रम में कभी आज्ञा या आदेश नहीं दिया जाता वहाँ अनुमति सम्मति देने का भी प्रश्न उपस्थित नहीं होता। निदेशन द्वारा कार्य करवाया जाता है निर्देशन द्वारा व्यक्ति स्वयं करता है। निदेशन द्वारा करवाए हुए कार्य का उत्तरदायित्व सामान्यतः निदेशक पर होता है निर्देशन द्वारा किए गए कार्य में व्यक्ति का अपना स्वतन्त्र उत्तरदायित्व निहित रहता है। निदेशन द्वारा करवाए हुए कार्य के परिणामों के लिए भी जहाँ निदेशक उत्तरदायी होता है वहाँ निर्देशन के फलस्वरूप किए गए कार्य के परिणामों को व्यक्ति ही स्वयं स्वीकार करता है।

(३) निर्देशन-परामर्श

जैसा कि कह चुके हैं निर्देशन कार्य के लिए प्रयुक्त प्रारम्भिक शब्दावलियों में परामर्श का प्रयोग भी पाया जाता है। परामर्श का शाब्दिक अर्थ है राय देना। निर्देशन के प्रक्रम में प्रत्यक्ष रूप से कोई निश्चय लेने हेतु व्यक्ति को राय नहीं दी जाती। उसे केवल परिस्थिति विशेष की विश्वसनीय सूचनाएँ तथा उसके स्वयं के विषय का वैज्ञानिक ज्ञान एक दूसरे से सम्बन्धित करके इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है कि इस चित्र के आधार पर व्यक्ति स्वयं अपने को राय दे सके अर्थात् उक्त सामग्री के दर्शन द्वारा स्वयं अपना उत्तरदायित्वपूर्ण निश्चय ले सके। हम देख चुके हैं कि व्यवस्थित निर्देशन के प्रारम्भिक काल में तो परिपक्व व्यक्ति द्वारा नवयुवकों

को व्यवसाय चयन सम्बन्धी परामर्श ही दी जाती थी यह परामर्श उनके जीवन अनुभव पर ही आधारित रहती थी तथा स्वभावतः एक व्यक्तिनिष्ठ रूप लिए रहती थी। निर्देशन पर मनोविज्ञान के प्रभाव के पश्चात इस परामर्श में न केवल एक वांछनीय वस्तुनिष्ठता प्रविष्ट होती गई अपितु यह प्रक्रम वैज्ञानिक आधार पर स्वयं व्यक्ति द्वारा लिए गए उत्तरदायित्वपूर्ण निश्चय में परिवर्तित होती गई।

(४) निर्देशन एवं अनुदेश

निर्देशन के सम्प्रत्यय का व्यावसायिक सहायता की परिधि से जब शिक्षा के क्षेत्र तक विस्तार हुआ तब 'व्यावसायिक शैक्षिक' निर्देशन की अन्तर्सम्बद्धता अधिकाधिक रूप से स्वीकृत होने लगी तब एक सम्भावित सम्भ्रान्ति कतिपय कार्यकर्ताओं के विचारों में दृष्टिगोचर होने लगी। शिक्षा का उद्देश्य उत्तरोत्तर रूप से व्यक्ति के सर्वांगीण विकास तथा समुचित समायोजना के रूप में स्वीकारा जा रहा था। शिक्षा के क्षेत्र से अधिकाधिक सम्बन्धित होता हुआ निर्देशन का विकासमान स्वरूप भी इसी अन्तिम लक्ष्य की ओर अग्रसर होता जा रहा था। अतएव एक स्वाभाविक शंका निर्देशन की आवश्यकता के ही सम्बन्ध में कतिपय विचारकों के मन में उत्पन्न होने लगी। प्रश्न उठा कि दोनों के ध्येयों में क्या अन्तर है? यदि दोनों के अन्तिम ध्येय एक ही हैं— तो निर्देशन का कार्यक्रम क्या एक अतिरिक्त योजना नहीं है?

मोटे रूप से उक्त सन्दर्भ में शिक्षा एवं निर्देशन का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध तो पूर्व अध्याय के अन्तिम अंश में स्पष्ट किया जा चुका है। यहाँ पर विशिष्ट रूप से शास्त्रीय अनुदेश के सन्दर्भ में निर्देशन का अर्थ तथा उद्देश्य स्पष्ट करने का प्रयत्न किया जायगा।

यह सत्य है कि शास्त्रीय अनुदेशन सेवाओं द्वारा भी व्यक्ति का निर्देशन ही किया जाता है। किन्तु अनुदेश का निर्देशन सर्वप्रथम तो समूह केन्द्रित होता है दूसरे व्यक्ति विकास का स्पष्ट आदर्श स्वीकार करते हुए भी व्यावहारिक रूप में तो वह विषय-केन्द्रित ही होता है। अनुदेश द्वारा दिए गए निर्देशों का एक निर्धारित समय सीमा में पूर्ण हो जाना अपेक्षित है जब कि निर्देशन को समय के बन्धन में नहीं बाँधा जा सकता। एकक व्यक्ति की विशिष्ट आवश्यकताओं के सन्दर्भ में व्यक्ति-केन्द्रित निर्देशन का कार्य अपनी गति से चलता है। यों सामान्य शैक्षिक व्यावसायिक सूचनाएं प्रसारित करने हेतु निर्देशन सेवाओं की योजना भी समूह परिस्थिति में होती है किन्तु अन्ततोगत्वा निर्देशन का कार्य व्यक्ति को ही लेकर अग्रसर हो सकता है। अनुदेश-पश्चात परीक्षा के स्थान पर निर्देशन कार्य का मूल्यांकन सतत अनुवर्तन द्वारा किया जाता है।

इस सन्दर्भ में एक बात ध्यान देने योग्य है। निर्देशन कार्य के भी विभिन्न कार्य स्तर होते हैं। अत्यन्त विस्तृत दृष्टिकोण से तो प्रत्येक अनुदेशक एक सीमा तक निर्देशन कार्यकर्ता कहा जा सकता है क्योंकि व्यक्ति के विकास के साथ वह उसे जीवन-समायोजन के लिए तैयार करता है। किन्तु कक्षा के सभी विद्यार्थियों को इस साधारण उद्देश्य से दिए गए अनुदेश के पश्चात जब विशिष्ट विद्यार्थियों की व्यक्ति

गत कठिनाइयों का वास्ता आता है तो अनुदेशक केवल विषय-स्तर तक ही सामान्यत इन कठिनाइयों में सहायता प्रदान कर सकता है। कई बार विषय वस्तु सम्बन्धी कठिनाइयों का सम्बन्ध भी कक्षा से बाहर की परिस्थितियों तथा विद्यार्थी के कतिपय मनोवैज्ञानिक घटकों में निहित हो सकता है। इस प्रकार की कठिनाइयों का निदान निवारण तथा उपचार एक सामान्य अनुदेशक के द्वारा सम्भव नहीं। अपने प्रशिक्षण कार्य भार तथा समय सीमा—सभी के दृष्टिकोण से इस प्रकार का विशेषज्ञ कार्य उसकी सामर्थ्य सीमा से परे है। वस्तुत शिक्षक की विभिन्न कार्य भूमिकाओं में उसकी अनुदेशक की ही भूमिका इतनी अधिक महत्वपूर्ण है कि इसके परे उसके लिए बहुत अधिक कार्य करना सम्भव नहीं।

हाँ यह ध्यान रहे कि निर्देशन तथा अनुदेशन न केवल अन्तरंग रूप से परस्पर सम्बन्धित हैं अपितु इन दोनों के माध्यम से की गई विद्यार्थी की सेवाएं एक दूसरे की पूरक होती हैं। विद्यार्थी को निर्देशन देने हेतु कुछ वांछित सूचना सामग्री शिक्षक द्वारा ही उपलब्ध हो सकती है। और विद्यार्थियों को व्यावसायिक सूचनाएं प्रसारित करने में भी उपबोधक को अनुदेशक की ही सहायता लेनी पड़ती है।

अतएव संक्षेप में कहा जा सकता है कि अनुदेशन तथा निर्देशन एक दूसरे के पूरक हैं किन्तु पर्याय नहीं।

(४) निर्देशन तथा उपबोधन

निर्देशन और उपबोधन दोनों ही इस नवीन क्षेत्र की स्वीकृत तकनीकी शब्दावलियाँ हैं। ये दोनों ही पद एक दूसरे से परस्पर सम्बद्ध प्रक्रमों के द्योतक हैं किन्तु समानार्थी नहीं हैं। फिर भी शिक्षा-क्षेत्र में कई बार इन पदों का अन्तर्विनिमित उपयोग पाया जाता है। अतः क्षेत्रीय शब्दावलियों के स्पष्टीकरण में हमने इन दोनों पदों को भी सम्मिलित करना समीचीन समझा।

वस्तुत निर्देशन एक विस्तृत कार्यक्रम है जिसका एक अत्यन्त ही विशिष्ट अंग उपबोधन कहलाता है। सम्पूर्ण निर्देशन कार्यक्रम की विविध व्यावहारिक सेवाओं में (जिनका वर्णन चतुर्थ अध्याय में किया जायगा) उपबोधन एक केन्द्रीय सेवा है। व्यक्ति तथा उसके पर्यावरण से सम्बन्धित विविध भाँति की सूचनाओं का जब संग्रह कर लिया जाता है तब उनके आधार पर व्यक्ति को उत्तरदायित्वपूर्ण निर्णय लेने में सहायता देने की कला को उपबोधन कहा जाता है। वास्तव में इस कला की प्रकृति अत्यन्त ही तकनीकी है। केवल बातों के अद्भुत उपकरण से एक व्यक्ति को अपनी जीवन समस्याओं के विभिन्न पक्षों में प्रवृत्त होने का बोध कराते हुए उस परिपक्वता की राह ले जाना उपबोधन की कलात्मक कला द्वारा ही सम्भव है। उपबोधन का शाब्दिक अर्थ ही है विशेष प्रकार का ज्ञान देना। यह बोध व्यक्ति को उसके पर्यावरण की पृष्ठभूमि में अपना वास्तविक चित्र देख सकने की क्षमता प्रदान करता है। अतएव हम कह सकते हैं कि जहाँ निर्देशन में व्यापक विस्तार है वहाँ उपबोधन में सूक्ष्म गहनता है। जहाँ निर्देशन में उपबोधन पूर्व-सेवाएं व्यक्ति तथा उसके पर्या

वरण सम्बन्धी नाना प्रकार की सूचनाओं के एकत्रित करने से सम्बन्धित है वहां उपबोधन में एकत्रित सामग्री के निर्वचन का तकनीकी कार्य सम्पन्न होता है। कार्य कर्ताओं की दृष्टि से वहां निर्देशन के सामान्य कार्य में अन्य शालीय सामाजिक तथा घरेलू अभिकरणों का सक्रिय सहयोग अपेक्षित है वहां उपबोधन का सूक्ष्म वैज्ञानिक कार्य एवं विशेष रूप से प्रशिक्षित व्यक्ति ही कर सकता है। समूचे निर्देशन कार्य का केन्द्र उपबोधन है किन्तु पुनः उपबोधन का प्रबुद्ध प्रकाश समूचे निर्देशन कार्यक्रम को भी प्रकाशित करता रहता है। प्रशिक्षित उपबोधक नाना स्तरों पर निर्देशन कार्य करने वाले अभिकरणों को एक प्रबुद्ध नेतृत्व प्रदान करता है।

निर्देशन का वैज्ञानिक स्वरूप

निर्देशन के परिवर्तित सम्प्रत्यय की विकासमान गाथा तथा इस क्षेत्र से सम्बन्धित शब्दावलियों के स्पष्टीकरण में निर्देशन के वैज्ञानिक स्वरूप का विवेचन स्थान स्थान पर कई बार आ चुका है। किन्तु कहीं कहीं पर पुनरावृत्ति की आशंका होने पर भी अध्याय के इस अन्तिम अंश में निर्देशन के आधुनिक वैज्ञानिक स्वरूप का एक समाहारी चित्र कई मानों में उपयोगी रहेगा। परिवर्तित सम्प्रत्यय के साथ हमने इस क्षेत्र के स्वरूप सम्बन्धित सम्भ्रान्तियों एवं सीमिताओं का सकारण विश्लेषण किया। शब्दावलियों के विवेचन में भी किसी भी वैज्ञानिक क्षेत्र में अवाञ्छनीय अन्तर्विनिमित शब्दावली प्रयोग का स्पष्टीकरण किया। अतः यदि यह कहा जाय कि अभी तक के विवेचनों में सामान्यतः निर्देशन क्या नहीं है की ही धारणाएं अधिक स्पष्ट हुई हैं तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। अब निर्देशन के वैज्ञानिक स्वरूप सम्बन्धी इन कारणों की निदाघ हो जाने के पश्चात् ही इस नूतन पुष्प का आधुनिक स्वरूप अधिक स्पष्ट रूप से हमारे मानस में प्रफुल्लित हो सकता है। इस चित्र की रेखाओं को अधिक स्पष्ट करने के उद्देश्य से हम कतिपय महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं की पृष्ठभूमि में सकी व्याख्या करने का प्रयत्न करेंगे।

(१) प्रक्रम का विस्तार

अपने आधुनिक स्वरूप के अनुसार निर्देशन एक अत्यन्त ही विस्तृत प्रक्रम है जिसका कार्य व्यक्तिजीवन के किसी एक या दो पक्षों तक ही या उसकी आयु के किन्हीं विशिष्ट स्तरों तक ही सीमित नहीं है। हमने अपने पूर्व अध्यायों के विवेचन में ही देख लिया था कि प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में समस्याएं हो सकती हैं और ये समस्याएं होना मानव जीवन का एक सहज वास्तविकता है। अतएव प्रत्येक व्यक्ति को अपने विकास के विविध स्तरों पर उस वय विशेष की परिस्थितियों के अनुसार निर्देशन की आवश्यकता होती है। साथ ही उसके अन्तःसम्बन्धी बहुआयामी व्यक्तित्व में ये समस्याएं उसके जीवन के विविध पक्षों को अन्योन्याश्रित रूप से स्पर्श करता है। निर्देशन के विस्तृत प्रक्रम द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को दी गई वैज्ञानिक सहायता उसे इन समस्याओं का सामना करने में अधिक समर्थ बनाती है। संक्षेप में कह सकते हैं कि

निर्देशन एक व्यक्ति को उसके सभी व्यवस्तरों पर दी जाने वाली वह बहुआयामी सहायता है जिससे वह अपने वास्तविक स्वरूप तथा अपने पर्यावरण का सही अवबोध प्राप्त कर सके तथा इस अवबोध के आधार पर अनुकूलतम समायोजना को प्राप्त हो सके।

प्रत्येक व्यक्ति को दी जाने वाली यह सहायता वैयक्तिक दृष्टि के साथ साथ व्यक्तियों के सभी सम्बन्धों की भी द्योतक होती है।

(१) मानव का सन्तुलित विकास

स्वभाव से ही मानव सदैव अपनी शक्तियों का अनुकूलतम उपयोग नहीं करता कई बार तो वह अपनी क्षमताओं से पूर्णरूपेण अभिज्ञ भी नहीं रहता। हम समझते हैं कि व्यक्तियों के सम्बन्ध में यहां हमें कविवर ग्रे (Gray) की निम्न पंक्तियाँ मानवीय क्षमताओं पर भी कई अर्थों में लागू हो सकती हैं —

Full rnany a gem
of purest rav serene
The dark unfathomed
cuves of ocean bear
Full mony a flower
is born to blush unseen
And waste [illegible] sweetness
to the desert air

वैयक्तिक निर्देशन अपने वैयक्तिक साधनों द्वारा यह प्रयत्न करता है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी क्षमताओं का सही अवबोध हो सके जिससे वह अपनी शक्तियों तथा क्षमताओं का अधिकाधिक उपयोग कर सके।

व्यक्ति के सन्तुलित विकास हेतु उसके लिए अपनी शक्तियों तथा क्षमताओं के साथ-साथ अपनी दुर्बलताओं तथा सीमितताओं का भी सही अवबोध आवश्यक है। अपनी सीमितताओं के अज्ञान में कई बार व्यक्ति कतिपय अनुपलब्ध उद्देश्यों पर दृष्टि गड़ा कर अपनी क्षमताओं की परिधि में आने वाले लक्ष्यों को भी भुला बैठता है। ऐसी परिस्थिति में दोनों ओर से केवल निराशा ही होगी। वह मनोवैज्ञानिक कुण्ठा व भग्नाशा का शिकार बन जाता है जो कर सकता है वह भी नहीं कर पाता तथा जो नहीं कर सकता उसकी निराशा में दुखी होता है तथा दूसरों तक भी अपना दुःख ही प्रसारित करता है। व्यक्ति को अपनी क्षमताओं तथा सीमितताओं दोनों के सन्दर्भ में अपनी वास्तविक तस्वीर दिखा कर ही निर्देशन के उत्तरदायित्व की इतिश्री नहीं हो जाती। एक पद आगे बढ़ कर यह व्यक्ति को उसकी क्षमताओं के अनुकूल अवसरों की सूचना भी प्रदान करता है। तथा उन अवसरों में उसके नियोजन में भी सहायता प्रदान करता है। स्पष्ट है कि इस प्रकार एक व्यक्ति को उसकी क्षमताओं के अनुकूलतम उपयोग हेतु दी गई इस सहायता द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से सम्पूर्ण

समाज का उन्नयन होगा। प्रत्येक व्यक्ति वैयक्तिक रूप म तुष्ट होकर समाज को अपना श्रेष्ठतम योगदान दे सकेगा।

(३) सहायता —न कि सलाह

निर्देशन के वर्तमानिक स्वरूप के समस्त विवेचना म पाठकों ने हमारे सहायता शब्द के निरन्तर प्रयोग पर ध्यान दिया ही होगा। यदि यह कहा जाए कि सहायता सम्पूर्ण निर्देशन प्रक्रिया की मौलिक कुंजी शब्द है तो अतिशयोक्ति नहीं होगा। निर्देशन से सम्बन्धित शब्दावलियों के स्पष्टीकरण म ही हमने सलाह न देने के बिन्दु पर पर्याप्त बल दिया था। यह स्पष्ट है कि सलाह देने की प्रक्रिया अपेक्षाकृत सरल तथा लघु है। किसी समस्या म डूबे व्यक्ति के सम्मुख समस्त सम्बन्धित सूचना सामग्री प्रस्तुत करना तथा उसे उस सामग्री के अवबोध के आधार पर निर्णयन की ओर अग्रसर करना न केवल उपबोध्य के लिए एक समय लेने वाला प्रक्रम है अपितु उपबोध्य भी इसकी सच्चा नहीं रखता है। अधिकतर व्यक्ति स्वयं चाहता है कि कोई मुझे बता दे क्या करना है। इस प्रकार के बता देने से वह न केवल अपनी समस्या से त्वरित मुक्ति चाहता है अपितु अचेतन रूप से निर्णयन के उत्तरदायित्व से भी मुक्त होना चाहता है। किन्तु प्रवीण सहायता प्राप्त करके जब व्यक्ति अपनी समस्या स्वयं सुलझाता है तो न केवल उसे आत्मपूर्ति का सन्तोषप्रद अनुभव होता है अपितु अन्य समस्यात्मक परिस्थितियों म उसे पुनः उपबोधक के पास नहीं दौड़ना पड़ता। मनोवैज्ञानिक शब्दावली म हम कह सकते हैं कि वह परिपक्वता की ओर अग्रसर होता है क्योंकि निर्देशन की सहायता द्वारा अपनी समस्याओं का स्वतन्त्रतापूर्वक सामना करने म अधिक सक्षम होता है।

उपसंहारात्मक कथन

प्रस्तुत अध्याय म हमने निर्देशन के विकासात्मक स्वरूप का विहगावलोकन किया। उसके विकासात्मक स्वरूप की गाथा म व्यापक परिवर्तित सम्प्रत्ययों का सकारण विश्लेषण किया तथा निर्देशन के क्षेत्र म प्रचलित शब्दावलियों का भी विधिवत् विवेचन किया।

इस पृष्ठभूमि म निर्देशन के आधुनिक वर्तमानिक स्वरूप का एक सुस्पष्ट चित्र हम पा सके।

इस चित्र के अनुवर्तन म अगले अध्याय म निर्देशन के मूल आधारों का विवेचन प्रस्तुत किया जाएगा।

निर्देशन के मूल आधार

(विषय प्रवेश — दार्शनिक आधार — जीवन मूल्य तथा सुख की धारणा — स्वयं का दमन — शक्ति व का प्रयोग — सामाजिक सांस्कृतिक आधार — व्यक्ति समाज का संतुलन — मानवीय ऊर्जा का संरक्षण — भारतीय परिस्थितियों में सामाजिक परिवर्तनशीलता — औद्योगिक शक्ति व नारियों की बदलती भूमिकाएं — संस्कृति व मूल्य — ... आधार — ज्ञान का विस्तार एवं विशिष्टीकरण — शिक्षा की ... — ... का सृजन एवं स्थानीकरण — मनोवैज्ञानिक आधार — व्यक्ति का समायोजन एवं विकास — ... — वैयक्तिक विभिन्नताएं — ... की प्रकृति — उपसंहारात्मक कथन)

सम्पूर्ण व्यक्ति के लिए अपने समूचे पर्यावरण में बहुआयामी समायोजन पर समाहारी ध्यान देकर निर्देशन का नूतन क्षेत्र मानव जगत् में अवतरित हुआ है, इसे हम इस अध्याय में विस्तारपूर्वक देखेंगे। अतएव यदि यह कहा जाय कि निर्देशन का मूल कार्यक्षेत्र मानव जीवन है तो अतिशयोक्ति न होगी। मानव जीवन के परिधि के विस्तार की कोई सीमा नहीं। विशेषकर आधुनिक युग में तो मानव जीवन के विविध पक्षों पर प्रकाश डालते हुए ज्ञान-विज्ञान में नित नूतन विषय नक्षत्र परिलक्षित होते जा रहे हैं। स्वाभाविक है कि निर्देशन का इन सभी से किसी न किसी रूप में सम्बन्ध हो। व्यक्ति की समझ व उसका वास्तवीकरण तथा अनुकूलतम समायोजन हेतु समुचित सहायता दे सकने हेतु निर्देशन कार्यकर्ताओं को विविध विषय क्षेत्रों से प्राप्त सूत्रों द्वारा अपने कार्य व्यापारों का ताना-बाना बुनना पड़ता है। हम अपने पूर्व विवेचनों में यह भी देख चुके हैं कि कई शास्त्रों के बहुआयामी सिद्धान्तों का प्रत्यक्षीकरण करते हुए ही मानो निर्देशन का क्षेत्र अपने नवीन स्वरूप में मानव जगत् में विस्तृत हुआ। वस्तुतः निर्देशन के वैज्ञानिक विकास से सम्बन्धित कई प्रत्यक्ष सिद्धान्तों का मूल विभिन्न मानवीय शास्त्रों में रहा है। इस अध्याय में हम उन्हीं के अनिवार्य प्रमुख मूल आधारों पर चिंतन करने का प्रयास करेंगे।

दार्शनिक आधार

(१) जीवन मूल्य तथा सुख की धारणा

दार्शनिक सन्दर्भ में मानव सुख की खोज में भटकता रहा है। इस खोज में

मानव ने अपने स्वयं तथा अपने चतुर्दिक् जीवन के सम्बन्ध में विविध प्रश्न उपस्थित किए और इन प्रश्नों का समाधान करने हेतु विभिन्न ज्ञान क्षेत्रों का निर्माण किया। इस शाश्वत शोध में आयोजित ज्ञान क्षेत्रों में उद्भव क्रम में दर्शन का स्थान पुरातनतम रहा है। वस्तुतः मानव के स्वयं तथा उसके जीवन सम्बन्धी विविध जिज्ञासाओं की उत्पत्ति तथा पूर्ति में ही दर्शन के स्वरूप का उद्गम तथा विकास हुआ है। स्पष्ट है कि दर्शन के माध्यम से प्रश्न उत्तरों के आधार पर ही व्यक्ति की जीवन आस्थाओं का निर्माण होता है, उसकी मूल्य भावनों का विकास होता है, उसकी आशाओं और अपेक्षाओं का विकास होता है। यह स्पष्ट हो जाता है। यह एक सर्वमान्य अनुभव की बात है कि मानव के सुख के मूल में उसकी सभी आशाएं अभिलाषाएं रहती हैं और उसकी अपेक्षाओं आकांक्षाओं का निर्माण करने में उसके जीवन मूल्यों की निर्णायक भूमिका होती है। यदि यह कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगा कि मानवीय सुख की कल्पना के मूल में ही उसके जीवन मूल्य निहित रहते हैं।

सुख की कल्पना सुख की अनुभूति का भी अनुगमन करती है और मनोवैज्ञानिक शब्दावली में सुख की अनुभूति को समायोजन के नाम से पुकारा जा सकता है। अतएव पुनः कहा जा सकता है कि व्यक्ति के समायोजन के मूल में भी उसके जीवन मूल्य निहित रहते हैं। वस्तुतः समायोजन की स्थिति का मानसिक स्वरूप ही व्यक्ति अपनी आशाओं आस्थाओं के अनुरूप निर्धारित करता है तथा इन आशाओं आस्थाओं का निर्माण भी उसके मूल्यों द्वारा ही होता है।

उक्त संक्षिप्त विवेचन का सार यही प्रतीत होता है कि व्यक्ति के सुख तथा समायोजन के मूल में उसके जीवन मूल्य निहित होते हैं। अतः इन मूल्यों के निर्माण तथा विकास से अधिक महत्त्वपूर्ण उसके जीवन में और कोई तथ्य नहीं।

प्रश्न उठता है कि निर्देशन के क्षेत्र का इन मूल्यों से क्या सम्बन्ध हो सकता है? प्रथम तथा द्वितीय अध्याय में प्रस्तुत निर्देशन के प्रारम्भिक परिचय में इस प्रश्न के कुछ प्रारम्भिक इङ्गित मिल सकते हैं। किन्तु निर्देशन के प्रथम मूलाधार के विशिष्ट विवेचन में इस प्रश्न का उत्तर दर्शन के सन्दर्भ में निम्न प्रकार से सोचा जा सकता है। व्यक्तिक समायोजन का लक्ष्य लिए हुए निर्देशन के क्षेत्र का एक मूल उपागम होता है—व्यक्ति की विशिष्ट मूल्य-भावना का निर्धारण करना और इस निर्धारण में उसे दर्शन के आदिम शास्त्र में ही अपने मूलाधार खोजने पड़ते हैं। दर्शन के मूल प्रश्न ही 'क्या होना चाहिए?' से सम्बन्धित होते हैं, और मानव की आशाएं-अपेक्षाएं भी 'क्या होना चाहिए' के उत्तर में ही सन्निहित होती हैं। मनुष्य अपने जीवन के ध्येय अपनी आस्थाओं के परिप्रेक्ष्य में निर्धारित करता है, ध्येय प्राप्ति की योजना का निर्देशन तन्त्र भी इन्हीं आस्थाओं की पृष्ठभूमि में नियोजित करता है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि व्यक्ति अपनी आस्थाओं के अनुसार अपना जीवनयापन करता है। चूंकि उसकी सुख की कल्पना इहलौकिक तथा पारलौकिक दोनों में ही अपनी आस्थाओं के अनुसार होती है, अतएव जिन सुख देने वाली वस्तुओं की

व्यक्ति कामना करता है व जो उसकी आस्थाओं के अनुरूप निश्चित होती है तथा उन्हीं प्राप्त करने हेतु वह अपनी जीवन ऊर्जा लगा देता है। इस बिन्दु का अधिक विस्तृत विवेचन अध्याय के अगले अंश में किया जायगा। यहाँ तो व्यक्ति के जीवन मूल्यों के रूप में निर्देशन के मूल दार्शनिक आधारों का प्रतिपादन मात्र किया जा रहा है।

(२) स्वयं का दर्शन

पिछले अध्याय में हम देख चुके हैं कि निर्देशन का एक मुख्य उद्देश्य है व्यक्ति को उसकी वास्तविक तस्वीर से परिचित कराना। अपने स्वयं के स्वरूप का वस्तुनिष्ठ दर्शन कर सकना तथा इस दर्शन के संदर्भ में अपनी जीवन योजनाएं बना सकने की क्षमता प्राप्त कर लेना ही कदाचित् वनानिक दर्शन का सर्वोपरि लक्ष्य होता है। अपने निज के इस सही रूप में केवल व्यक्ति की क्षमताएं ही नहीं उभरती रहती हैं। इस वास्तववादी चित्र में तो उसकी क्षमताओं का आलोक उसकी सीमितताओं की रेखाओं में घुला मिला रहता है या यों कहें कि उसके व्यक्तित्व का सम्पूर्ण रूप ही उसकी शक्तियों—स्वतंत्रताओं की पृष्ठभूमि को अभिव्यक्त करता है। अपने पर्यावरण से उत्तम अनुकूलन प्राप्त करने हेतु तथा अपनी शक्तियों—क्षमताओं का अधिकाधिक लाभ उठा सकने हेतु व्यक्ति के लिए अपने वास्तविक स्वरूप से परिचय प्राप्त करना आवश्यक है। तभी वह व्यक्तिगत तृप्ति के आनन्द के साथ समाज को भी अपना उत्तम योगदान दे आभावित कर सकता है। प्रत्येक व्यक्ति को इस सन्तुष्टि की ओर ले जाते हुए व तदोपरान्त अपूर्व समाज का उन्नयन करना निर्देशन के मूल उत्तरदायित्वों में भी एक केन्द्रीय महत्त्व रखता है।

स्पष्ट है कि मानव जीवन के प्राचीन शास्त्र दर्शन में निर्देशन का मूलाधार निहित है। Know thy self अपने आपको जानो यह इस आदि शास्त्र की चिरंतन पुकार रही है। हिन्दी में तो इस विषय क्षेत्र का नामकरण ही इसके स्वरूप को स्पष्ट करता है। दर्शन का अंतिम ध्येय है स्व अपने तथा सत्य का दर्शन। यह सत्य है कि यह दर्शन तात्त्विक स्तर का होता है। किन्तु इसके साथ ही यह भी सत्य है कि तात्त्विक स्तर तक पहुँच सकने हेतु व्यक्ति को क्रमिक रूप से भौतिक स्तर की सीढ़ियों को पार करना अनिवार्य होता है। आत्मसिद्धि के दार्शनिक ध्येय की उपलब्धि में निर्देशन स्व वास्तवीकरण की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया में सहायक का काम करता है। और निर्देशन का यह स्व वास्तवीकरण से साधा सम्बन्ध है।

फिर जैसाकि पहले भी कहा जा चुका है दर्शन का सैद्धांतिक सूत्रियों को एक प्रयोगात्मक रूप देने में निर्देशन के शास्त्र क्षेत्र की एक प्रमुख भूमिका रहती है। इस कथन को निम्न बिन्दु के विवेचन में पाकर और भी अधिक स्पष्टता से आत्मसात् कर सकेंगे।

(३) व्यक्तित्व का आदर

प्रजातान्त्रिक शिक्षा का तो सम्पूर्ण भवन ही व्यक्तित्व के आदर की मूल नींव

पर निर्मित हुआ है। प्रत्येक व्यक्ति के अनन्य व्यक्तित्व के प्रति समुचित सम्मान, उसके गौरव तथा मूल्य का उचित आश्वासन, उसके विशिष्ट बुद्धि-वैभव के अनुकूल अवसरों का आयोजन ये सब प्रगतिशील शिक्षा-दर्शन की सामान्यतः स्वीकृत सूक्तियाँ हैं। इन सूक्तियों को यदि वास्तविकता का आलोक देखना है तो इनकी व्याख्या व्यावहारिक शब्दावलियों में करनी होगी। इनकी उपलब्धि हेतु प्रकार्यात्मक योजनाएं बनानी होंगी।

वास्तविकता तो यह है कि यदि व्यक्तित्व के स्वरूप का अवबोध ही नहीं तो उसका आदर किस प्रकार किया जा सकता है? उसके मूल्यों के सम्बन्ध में अभिज्ञता ही नहीं तो उसका आश्वासन किन आधारों पर दिया जा सकता है? और यदि उसके बुद्धि वैभव की विशिष्टता ज्ञात ही न हो तो उसके अनुकूल अवसरों का आयोजन किस भाँति हो सकता है? इन वास्तविक प्रश्नों का एकात्मक उत्तर देने हेतु निर्देशन दर्शन के मौलिक क्षेत्र में अपने मूलाधार खोजता है। प्रत्येक व्यक्ति के अनन्य व्यक्तित्व के सही स्वरूप का दर्शन उसे कराते हुए तथा उसके गौरव में विश्वास कर उचित आश्वासन करते हुए ही निर्देशन उसके विशिष्ट बुद्धि वैभव के अनुरूप अवसरों से उसे परिचित कराता है तथा उसे उन अवसरों का श्रेष्ठतम उपयोग कर सकने की राह भी दर्शाता है।

प्रत्येक व्यक्ति के मूल्य के आदर की दार्शनिक पुकार का यदि निर्देशन की शब्दावली में भाषान्तर न हो सका तो वह थोथे चने की भाँति केवल घनी बाजती ही रह जायगी। वस्तुतः निर्देशन के नूतन क्षेत्र के समूचे कार्य का केन्द्र बिन्दु ही व्यक्ति है और यह केन्द्र बिन्दु निर्धारित करने में उसका दार्शनिक आधार स्पष्टरूपेण दिखाई पड़ता है।

विशेषकर अध्यात्मवादी भारतीय दर्शन में तो प्रत्येक व्यक्ति को आत्मन् के रूप में उस चरम परमात्मन् का एक ज्वलन्त अंश माना गया है। इस मान्यता में यह आस्था निहित है कि चरम ज्योति के प्रति अणुकण में भी उस दिव्य ज्योति के समस्त लक्षण अवस्थित रहते हैं। भारतीय दर्शन के अनुसार विकास का अर्थ ही विलयन है, यह विलयन जल-बिन्दु का असीम सागर में होना है, लघु प्रकाश कणिका का अमर ज्योति में होना है। अतएव यह विलयन एक प्रकार से आत्मन् का विस्तार ही है। किन्तु इस विलयन विस्तार का प्राथमिक अनुबन्ध है व्यक्ति की मौलिक शक्तियों में आस्था तथा प्रारम्भिक अनिवार्यतः व्यक्ति द्वारा अपनी असीम क्षमता की पहिचान। सभी भारतीय दर्शनों में आत्म-चिन्तन, आत्मदर्शन, आत्म सिद्धि आदि शब्दावलियों द्वारा इस आत्मा के स्वरूप पर मौलिक बल दिया जाता है। हमारे विचार में निर्देशन के दार्शनिक आधार भारतीय दर्शन में तो और भी गहराई से अवस्थित हैं। इस दर्शन में व्यक्तित्व के गौरव तथा मूल्य का आदर केवल सामाजिक, आर्थिक अथवा मनोवैज्ञानिक स्तर तक ही सीमित नहीं है। इन सोपानों को पार कर के वह मानव जीवन की उच्चतर सीमाओं को स्पर्श करता है। प्रत्येक व्यक्ति के उन्नयन में

उसकी भौतिक शक्तियों का समावेश करते हुए भी उसकी दृष्टि को सदैव उसकी आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक सिद्धियों की ओर निर्दिष्ट करता रहता है।

अतएव अपने सही रूप में तो निर्देशन के दार्शनिक आधार भारतीय दर्शन तथा संस्कृति में मौलिक रूप में समाहित रहते हैं।

सामाजिक सांस्कृतिक आधार

(१) व्यक्ति समाज की लघुतम इकाई

निर्देशन के दार्शनिक आधार के अन्तर्गत विवेचित व्यक्तित्व के महत्त्व एवं गौरव को जब सामाजिक दृष्टिकोण से देखा जाता है तो प्रत्येक व्यक्ति का मूल्य किसी भी समाज की लघुतम इकाई के रूप में स्पष्ट हो उठता है। व्यक्तियों के समूह विशेष को ही समाज की संज्ञा दी जा सकती है। और चूंकि समाज के संगठन के मूल में प्रत्येक व्यक्ति ही विद्यमान रहता है, इसलिए किसी भी समाज का गुणात्मक स्तर उसके निर्मित करने वाले व्यक्तियों के विशिष्ट गुणों के द्वारा ही निर्धारित हो सकता है। सामाजिक इतिहासकारों तथा समाजशास्त्रियों में सामान्य मत प्रचलित है कि किसी समाज या संस्कृति के विकास का उच्च स्तर उस समाज के व्यक्तियों द्वारा प्राप्त गुणों में आँका जा सकता है। स्वाभाविक ही है कि प्रत्येक व्यक्ति की क्षमताओं का विकास व उन्नति प्राप्त करने से सम्पूर्ण समाज की उन्नति होगी या यों कहें कि समाज की उन्नति हो सकेगी।

यह देखा चुके हैं कि समूचा निर्देशन कार्य ही प्रत्येक व्यक्ति के महत्त्व व व्यक्तित्व पर केन्द्रित रहता है। प्रत्येक व्यक्ति को उसकी विशिष्ट क्षमताओं के अनुकूल कार्यों के अवसर प्रदान करके ही हम किसी भी समाज को सामूहिक रूप से उन्नति कर सकते हैं। अपनी विशिष्ट शक्तियों की सही पहचान तथा समुचित उपयोग द्वारा ही प्रत्येक व्यक्ति समाज को अपने अनुकूल योगदान प्रदान कर सकता है—और यह योगदान ही सम्मिलित रूप से किसी भी समाज का गुणात्मक उन्नयन करने में सहायक होते हैं। इसलिए यदि यह कहा जाय कि प्रत्येक व्यक्ति के मौलिक महत्त्व पर ही निर्देशन का प्राथमिक सामाजिक आधार निर्मित रहता है तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

(२) मानवीय ऊर्जा का संरक्षण

(क) सामान्य रूप से

निर्देशन कार्य का एक अन्य महत्त्वपूर्ण सामाजिक आधार पाया जाता है मानवीय ऊर्जा संरक्षण सिद्धान्त में। मानवीय शक्तियों के उचित नियोजन, समुचित संरक्षण, सर्वांगीण विकास तथा श्रेष्ठतम उपयोग को हम निर्देशन के स्वरूप की व्याख्या के रूप में देख चुके हैं। निर्देशन के उक्त मौलिक तत्त्व किसी भी प्रगतिशील कहलाने वाली सामाजिक व्यवस्था के भी मूलाधार माने हैं। किसी भी समाज के उत्थान में उसकी अपार मानव-शक्तियों का अनुकूलतम उपयोग अन्ततः रूप से निहित रहता

है। उचित संरक्षण तथा उच्चतम उपयोग में अनावश्यक अपव्यय का अवरोधन भी गौण रूप से निहित रहता है।

पुनः प्रश्न उठता है इस ध्येय की उपलब्धि किस प्रकार हो? इस भौतिक सामाजिक आवश्यकता की पूर्ति कैसे हो? निर्देशन तथा समाज की आवश्यकताओं उद्देश्यों का विश्लेषण परीक्षण करने पर उक्त प्रश्नों के उत्तर निर्देशन कार्यक्रम तथा समाज व्यवस्था की कतिपय मूलभूत समानताओं में दृष्टिगोचर होते हैं। दोनों का ही ध्येय है शक्तियों साधनों का समादर संरक्षण समुन्नयन तथा उपयोग।

मानवीय शक्तियों—क्षमताओं का समुचित उपयोग हो सकने हेतु एक ओर सर्वाधिक आवश्यकता है पर्यावरणीय साधन सुविधाओं का निदान परीक्षण तथा मानवीय क्षमताओं के साथ उनका सम्बन्ध संस्थापन। सामाजिक सुदृढ़ता सुरक्षा तथा समुन्नति की यह एक महत्वपूर्ण पूर्व आवश्यकता है कि किसी भी समाज के भौतिक प्राकृतिक साधनों का समुचित संरक्षण तथा अनुकूलतम उपयोग हो। व्यक्तिगत मानवीय शक्तियों का उच्चतम विकास तथा अनुकूलतम उपयोग भी पर्यावरणीय साधन सुविधाओं के परिप्रेक्ष्य में सम्भव हो सकता है। अतएव किसी भी उन्नति अभिलाषी समाज के लिए इस प्रकार की सामाजिक व्यवस्था की आवश्यकता है जिसके द्वारा उसकी शक्तियों तथा उसके पर्यावरण की समस्त शक्तियों सुविधाओं का उचित निदान होकर उनका सुसम्बन्धित उपयोग हो सके। निर्देशन की नूतन सामाजिक व्यवस्था द्वारा ही इस उन्नति उन्मुखी आवश्यकता की पूर्ति हो सकती है। चूंकि निर्देशन का ध्यान प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास पर केन्द्रित रहता है अतएव वह न केवल उसकी इस अनूठी इकाई की उच्चतम उन्नति पर बल देता है अपितु उसकी विशिष्टता के अनुरूप अवसरों की व्यवस्थित आयोजना तथा उपलब्धि को भी वांछनीय महत्ता प्रदान करता है। इस प्रकार आदर्श सामाजिक व्यवस्था तथा उन्नयन के सैद्धान्तिक ध्येय का यथार्थात्मक निर्देशन व्यवस्था की व्यावहारिक योजनाओं के माध्यम से वास्तवीकरण हो सकता है। अतएव कहा जा सकता है कि मानवीय एवं पर्यावरणीय शक्तियों के संरक्षण उपयोग में निर्देशन का सबसे प्रमुख महत्वपूर्ण सामाजिक आधार निहित रहता है।

(ख) भारतीय परिस्थितियों में

इस महत्वपूर्ण तथ्य का यदि भारतीय परिस्थितियों की विशिष्ट पृष्ठभूमि में परीक्षण करें तो इसकी महत्ता कई गुनी हो उठती है। किसी भी देश की सम्पन्नतम सम्पत्ति उसके उच्चस्तरीय मानवीय साधनों में निहित होती है। किंतु यह एक कटु सत्य है कि उच्चस्तरीय साधन जनशक्ति में अत्यन्त ही सम्पन्न होने पर भी भारत की गणना आज संसार के निर्धन तथा अर्धविकसित देशों में की जा रही है। कारण स्पष्ट है। परिमाणात्मक दृष्टि से जनसंख्या में संसार का एक अग्रगामी देश होने पर भी भारत में न तो इस बहुमूल्य सम्पत्ति का आवश्यक संरक्षण है न समुचित सदुपयोग। इससे भी बड़ी बात तो यह है कि इस ओर हमारी कोई तीव्र सतर्कता भी

नहीं है ।

जनसम्पत्ति की इस सहज व्यवस्था के साथ साथ सम्पन्न पर्यावरणीय साधनों के प्रति भी हमारे देश में न तो बहुत यथोचित सजान रहा है न उनके अनुकूलतम उपयोग के व्यवस्थित आयोजन । यह सत्य है कि आधुनिक काल में उक्त कमियों की ओर राष्ट्र का ध्यान आकर्षित होता जा रहा है तथा इनकी पूर्ति की ओर सक्रिय कदम भी उठाये जा रहे हैं । किन्तु साधन सम्पत्ति के विस्तार के परिप्रेक्ष्य में ये प्रयास अपर्याप्त से हैं । साथ ही आधुनिक समाज की तुलना में हममें वैज्ञानिकता की भी कमी है जो कि राष्ट्रीय स्तर पर पर्याप्त नियोजन योजनाओं द्वारा पूरी हो सकती है ।

सत्य यह है कि इन दो दशकों में भारतवर्ष में कई क्षेत्रों में प्रगति हुई है । विविध स्तरों पर विद्यालयों विद्यार्थियों तथा प्रशिक्षित अध्यापकों की संख्या में वृद्धि हुई है उद्योग के क्षेत्र में नाना भाँति के नवीन उद्योगों का विकास तथा विशिष्टीकरण हुआ है । कृषि में जहाँ प्रति एकड़ उत्पादन में वृद्धि हुई है वहाँ पर प्रति व्यक्ति आय भी वर्द्धमान हुई है । किन्तु इन परिमाणात्मक प्रगतियों के साथ साथ जहाँ पर कति य सर्वाधिक राष्ट्रीय आयामों में और भी उन्नति चाहिए थे वहाँ पर भी उनमें एक अवांछनीय उन्नति ही दिखाई देती है । उदाहरणस्वरूप शिक्षित व्यक्तियों की संख्या वृद्धि के साथ साथ उनमें बेरोजगारी या अपूर्ण रोजगारों के आँकड़े परिवर्धित होते जा रहे हैं । यह एक विचित्र अवस्था है कि जहाँ तकनीकी या इन्जीनियरिंग में प्रशिक्षित व्यक्तियों की संख्या बढ़ रही है वहाँ पर इन क्षेत्रों के कई नवीन विशिष्ट उद्योगों में उपयुक्त कार्यकर्ताओं की कमी भी अधिकाधिक अनुभव होती जा रही है । मानवीय ऊर्जा के संरक्षण तथा सदुपयोग की दृष्टि से यह स्थिति अत्यन्त ही शोचनीय है । इसका निवारण व्यवस्थित निर्देशन का कार्यक्रम ही हो सकता है । अतः इन कार्यक्रमों का आयोजन भी राष्ट्रीय स्तरों पर होना चाहिए जिससे देश के शैक्षिक तथा औद्योगिक विकास की योजनायें एक दूसरे की शृंखला में न बन पावें । मानवीय ऊर्जा के संरक्षण हेतु निर्देशन के ऐसे कार्यक्रमों की अत्यन्त आवश्यकता है । आधुनिक भारत के शैक्षिक व्यावसायिक क्षेत्र में शक्ति के उक्त असंगत वितरण का अपवाद और भी गहन हो उठता है जब हम इस क्षेत्र में प्रचलित एक और अवांछनीय स्थिति को घनी मिली हुई पाते हैं । सामान्यतः ऊपरी स्तर पर तो बेरोजगारी तथा निरक्षरता का प्रत्यक्ष व्यवधान ही हमारे देश की वांछनीय प्रगति को अवरुद्ध करता सा प्रतीत होता है । किन्तु हमारे विचार में इस स्पष्ट कमी से अधिक गम्भीर तथा हानिकारक स्थिति होती है अपनियोजन की । कई मानों में कहा जा सकता है कि अपनियोजन से बेरोजगारी अधिमान्य है तथा अपशिक्षा प्राप्त करने से अशिक्षित रहना बेहतर है । इस कथन का मनोवैज्ञानिक महत्त्व तो उपयुक्त स्थल पर स्पष्ट किया जायगा किन्तु यहाँ पर निर्देशन के सामाजिक आधारों के परिप्रेक्ष्य में तो यही कहा जा सकता है कि असंगत मार्गों में प्रवाहित वैयक्तिक ऊर्जा समाज की विनाशकारिणी

शक्ति का ही काय कर सकती है। ऊर्जा का सही मान में इष्टतम उपयोग कर सकने के लिए उपयुक्त स्वरों की ओर ही निर्देशित करने की आवश्यकता है।

( ) सामाजिक परिवतनशीलता

अभी तक तो हमने समाज की लघुतम इकाई के रूप में व्यक्ति को समाज की अंतिम उन्नति के आधारभूत अङ्ग के रूप में देखा। इसी चित्र का दूसरा पक्ष है व्यक्ति की अंतिम उन्नति के निधारक प्रेरक के रूप में सामाजिक स्थिति की निर्णायक भूमिका।

यह एक स्वीकृत सत्य है कि सतत सामाजिक गतिशीलता के परिप्रेक्ष्य में ही व्यक्ति के चरम विकास तथा सम उत्थान के प्रकम सम्पन्न होते हैं। स्पष्ट है कि इस सहज गतिशीलता का प्रत्यक्ष प्रभाव मानव जीवन के कई पक्षों पर पड़े। साथ ही यह भी प्रत्यक्ष है कि इस सतत गतिशीलता के मध्य में भी सतुलित समंजित बने रहने के लिए व्यक्ति को समाज की सहज स्थानान्तरता तथा सतत परिवतनशीलता से अनुकूलतम परिचय बनाये रखने की निरन्तर आवश्यकता रहती है। इस आवश्यकता की पूर्ति निर्देशन के प्रबुद्ध कार्यक्रमों द्वारा ही हो सकती है।

वतमान स्थिति यह है कि यहां स्वाभिमान जीवनयापन के सामान्य उपकरणों तथा विधियों में एक स्पष्ट परिवतन दृष्टिगोचर होता है वहीं पर मस्तिष्कीय चिंतन की प्रत्येक मानवीय प्रक्रियाओं पर भी कई अन्य दृश्य-सामग्रियों का अनिवाय प्रभाव पनपता जा रहा है तथा उन्हें नवीन दिशाओं की ओर उन्मुख कर रहा है। सूचना प्रसारण के विविध माध्यमों में अभूतपूर्व वृद्धि होने के कारण आज का औसत नवयुवक अपने पूर्वज नवयुवक की अपेक्षा बहुत अधिक प्रबुद्ध है। किन्तु सूचना सामग्री के इस उमड़ते प्रवाह में बिना उचित सहारे के उसके बह जाने की आशंका है। यह सहारा उसे निर्देशन द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। हम प्रथम अध्याय में इस तथ्य से प्रारम्भिक परिचय प्राप्त कर चुके हैं। यह एक सामान्य ज्ञान की बात है कि पर्यावरण में जानने के तथ्य ही बहुत कम हों तो व्यक्ति को उन पर अधिकार प्राप्त करने में कठिनाई नहीं होगी। किन्तु यदि पर्यावरणीय सूचना सामग्री बहुत अधिक हो तो केवल आकार प्रकार की समस्या से कुछ आगे बढ़कर उसमें वैविध्य का लक्षण भी सहज रूप से समाहित हो जाता है। विविधता के अनुवतन में विरोधिता का होना भी कतई अस्वाभाविक नहीं। और ऐसी स्थिति में चयन का प्रश्न उपस्थित हो जाता है जोकि प्रबुद्धरूपेण निर्देशन का उत्तर दायित्व है।

(४) औद्योगिक क्रांति

गत दशकों के सामाजिक परिवतनों में जिस घटना ने मानव जीवन को सबसे अधिक प्रभावित किया वह है बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ की वैज्ञानिक औद्योगिक क्रांति। निर्देशन के विकासात्मक स्वरूप के अध्ययन में हम इसके विषय में

कुछ पढ़ चुके हैं। यहाँ पर इस निर्देशन के एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक आर्थिक आधार के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। यदि यह कहा जाय कि एक प्रकार से सामाजिक परिवर्तनशीलता भी कई अर्थों में औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप हुई तो अनुचित नहीं होगा।

इस क्रान्ति ने सबसे पहले व्यावसायिक क्षेत्र में एक नवीन हलचल प्रविष्ट कर दी। नवीन उद्योगों तथा उन्हें सम्पन्न करने के नूतन वैज्ञानिक तरीकों ने चार पुरुष वयस्क सभी के लिए कई व्यावसायिक उलझनें प्रस्तुत कर दीं। नित्यदिनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अब आजीविका का प्रश्न जटिलतर बनता गया। न केवल उद्योगों को सम्पन्न करने के तरीकों में वैज्ञानिक उन्नति ने एक प्रगतिगामी परिवर्तन प्रविष्ट किया अपितु मशीन युग ने कई नवीन व्यवसायों को जन्म देकर औद्योगिक संसार का स्वरूप ही बदल डाला। ऐसी स्थिति में किसी परिचित उद्योग को सम्पन्न मात्र करने का प्रश्न इन उद्योगों में से चयन तथा चयन के पश्चात् उनका प्रशिक्षण प्राप्त करने की समस्याओं से जटिलतर बनता गया। जैसा कि हम पूर्व अध्यायों में देख चुके हैं यह परिस्थिति पश्चिमीय देशों में पहले आई और इसीलिए वहाँ पर व्यावसायिक निर्देशन सेवाओं का जन्म भी हमारे देश से पूर्व हुआ। किन्तु समय की गति के साथ आज औद्योगिक रूप से जागृत-तथा क्रियाशील भारत में भी यह परिवर्तित स्थिति निर्देशन का एक महत्त्वपूर्ण आधार बनती जा रही है। वस्तुतः यदि यह कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि वर्तमान औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप जटिलता की तुलना में आवश्यक निर्देशन कार्यक्रमों की ओर न तो हमारी राष्ट्रीय स्तर पर पर्याप्त संवेदना जागृत हुई है न कोई व्यवस्थित कार्य ही हो पाया है। हमारे विचार में कई प्रगतिशील योजनाओं के बावजूद भी हमारे अपेक्षाकृत पिछड़ेपन का यह एक प्रमुख कारण है। मानवीय ऊर्जा के संरक्षण तथा उपयोग के अन्तर्गत हम इस तथ्य के प्रत्यक्ष उदाहरण दे चुके हैं।

(४) नारियों की परिवर्तित भूमिकाएं

आधुनिक संसार के जीवन प्रतिरूप का एक सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष है नारियों की क्रियाशीलता का स्वरूप। पूर्व युग के समाज इस धारणा पर संस्थापित हुए थे कि स्त्री का सुरक्षित स्थान उसके घर की चहारदीवारियों के मध्य ही रहता है। यह विश्वास पाश्चात्य समाजों में भी उतनी ही प्रमुखता से प्रचलित था जितना कि वह पूर्वीय चिन्तन में आरम्भ से प्रविष्ट रहा है।

आज जब इन दिशाओं में परिवर्तन आने लगा तथा स्त्री का कार्यक्षेत्र घर के उत्तरदायित्वों से विस्तृत होकर जीवन साधन जुटाने के सृजन की ओर भी उन्मुख होने लगा। इस परिवर्तन का एक सामान्य कारण था औद्योगिक संसार में मानव जीवन की सतत बढ़ती आवश्यकताएं थीं जिनकी पूर्ति परिवार के एक ही व्यक्ति द्वारा हो सकना कठिन था। इस कार्य में और भी तीव्रता आई जब जीवनयापन के स्तर। इस उन्नति के साथ समस्याओं की उत्पत्ति भी होने लगी। यहाँ कहना है

आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अधिक धन की आकांक्षा थी, वहां आवश्यकता पूर्ति के साधनों की बढ़ती हुई कीमत ने समस्या को और भी जटिल बना दिया। ऐसी परिस्थिति में स्त्रों की समुचित स्थान-सीमाएं सहज रूप से विस्तृत होने लगी। इधर राजनैतिक क्षेत्र में प्रजातिशाली भावनाओं ने जाति धर्म तथा लिंग की निरपेक्षता में प्रत्येक व्यक्ति की गरिमा को प्रतिष्ठित किया। इस सद्‌भावना और गौरव ने उपरोक्त आर्थिक कारणों से उद्‌भूत नारी की नवीन भूमिका को और भी संपुष्टि प्रदान की। अत्यन्त आत्मविश्वास पूर्वक वह सही मान में जीवन के वर्तमान क्षेत्रों में पुरुष की सहचारिणी बन कर अग्रसर होने लगी।

विशेष कर भारतवर्ष में नारी को पुरुष की इस समकक्षता की पर्याप्त प्रेरणा मिली हमारे स्वतन्त्रता संग्राम के आन्दोलन से। उस समय उसने पुरुष के कन्धे से कन्धा मिला कर देश के लिये की गई कुर्बानियों में न केवल हिस्सा बंटाया अपितु पुरुष को इन बलिदानों के लिए साहस तथा प्रेरणा प्रदान की। उस समय से भारत वर्ष की नारी भी पुरुष की अनुगामिनी मात्र न रह कर उसकी सहगामिनी बनी तथा जीवन के विविध क्षेत्रों में उसका कार्यभार हल्का करने लगी।

किन्तु इस परिवर्तित परिस्थिति का एक अनिवार्य परिणाम व्यावसायिक औद्योगिक क्षेत्रों में स्पष्टरूपेण दृष्टिगोचर होने लगा। हम देख चुके हैं कि कई कारणों के फलस्वरूप बेरोजगारी, अनुपयुक्त रोजगार तथा समायोजन की समस्याएं आधुनिक आर्थिक सामाजिक व्यवस्था में समस्या स्वरूप बनती जा रही थीं। अभी तक इस वर्धमान समस्या से पुरुष वर्ग ही सम्बन्धित था। किन्तु अब महिलाओं ने भी व्यवसाय के क्षेत्र में उतर कर परिस्थिति को और भी जटिल बना दिया। उनके शैक्षिक व्यावसायिक प्रशिक्षण के प्रश्न ने निर्देशन कार्यक्रमों की आवश्यकता को और भी प्रबल करने लगा।

किन्तु महिलाओं के व्यवसाय प्रवेश से उद्योग जगत में एक मौलिक तथ्य का उद्‌घाटन भी हुआ। उनकी अभिरुचि तथा अभिक्षमताओं के सम्बन्ध में कतिपय व्यवसायों के विश्लेषण ने यह इंगित किया कि कुछ विशिष्ट व्यवसाय स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक कुशलता पूर्वक सम्पन्न कर सकती हैं। दूसरी ओर विकासमान मनोविज्ञान ने पुरुष-श्रेष्ठता के सिद्धान्त को चुनौती देकर दोनों लिंगों में इन सम्पदाओं को केवल सापेक्षिक अभिक्षमताओं पर ही आधारित किया। तात्पर्य यह कि शैक्षिक-व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता केवल पुरुष वर्ग के ही लिए न समझी जाकर दोनों ही वर्गों के लिये समान रूप से स्वीकृत होने लगी। इस परिवर्तित परिस्थिति ने स्वभावतः निर्देशन के सामाजिक आधारों को प्रतिष्ठित बना प्रदान किया।

(६) संस्कृति के मूल्य

हम अध्याय के प्रारम्भ में ही कह चुके हैं कि मानव की मूल्य मापनी का निर्माण तथा उसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन निर्देशन का एक मुख्य उत्तरदायित्व रहता है। और चूंकि किसी भी समाज की मूल्य मापनी उस समाज की संस्कृति में

से विकसित होती हैं। इसलिये कह सकते हैं कि निर्देशन कार्य के विविध आयामों में से उसके सांस्कृतिक आधार एक अद्वितीय महत्त्व रखते हैं। वस्तुतः निर्देशन के अन्तिम ध्येय सुख, समायोजन आदि के स्वरूप की ही कल्पना संस्कृति विशेष के मानकों के अनुसार निर्मित होती है। इसलिये किसी भी निर्देशन कार्यक्रम की योजना को संस्कृति के मूल्यों पर आधारित करना पड़ता है।

यहाँ पर संस्कृति के मूल्य कहने के तात्पर्य का कुछ अधिक स्पष्टीकरण पाठकों के लिये वांछनीय होगा। संस्कृति के मूल्य कह कर हम इन शब्दों को जीवन के मूल्यों से कुछ अधिक विशिष्ट रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं। एक दृष्टि से समस्त मानव जाति के कुछ सामान्य जीवन मूल्य हो सकते हैं। मनोवैज्ञानिकों ने इन मूल्यों का भी एक सोपानिक संरचना के रूप में विवेचन किया है। सामान्य मनुष्यों की आवश्यकताओं सम्बन्धी मूल्यों के प्राथमिक स्तरों से प्रारम्भ करके उन्होंने स्व-वास्तवीकरण की आवश्यकताओं से सम्बन्धित मूल्यों को इस सोपान के उच्चतम बिन्दु पर रखा है। इन बिन्दुओं के विषय में निर्देशन के मनोवैज्ञानिक आधारों में अन्तर्गत अधिक विस्तार से कहा जायेगा। यहाँ पर तो मानव जीवन के सामान्य मूल्यों की तुलना में सांस्कृतिक मूल्यों के विशिष्ट रूप की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया जा रहा है।

संक्षेप में इस विभेद को निम्न रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। मानव जीवन की विविध-स्तरीय आवश्यकताएँ तो प्रायः समान होती हैं किन्तु इन आवश्यकताओं की पूर्ति जिन साधनों से जिस प्रकार की जाती है वह संस्कृति विशेष द्वारा निर्धारित होता है। सर्वप्रथम हम मनुष्य की सम्बन्धी भौतिक मानवीय आवश्यकताओं से ही कतिपय उदाहरण लेकर इस तथ्य को अधिक स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगे। भूख, पर्यावरणीय प्रभावों से रक्षा तथा प्रजनन कुछ ऐसी मनुष्य की आवश्यकताएँ हैं जो कि मानव ही क्या-समस्त प्राणि-जगत् में समान रूप से पाई जाती हैं। किन्तु किन पदार्थों को किस रूप में किस प्रकार खाकर भूख का शमन किया जाता है यह संस्कृति प्रतिरूप पर निर्भर करता है। बात अत्यन्त सामान्य सी लगने पर भी मनुष्य के समायोजन को यह किस प्रकार प्रभावित कर सकती है यह कतिपय वास्तविक उदाहरणों के विवेचन द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। आधुनिक प्रगतिशील वैज्ञानिक युग में स्थान तथा समय की दूरियाँ इतनी संकुचित हो गई हैं कि विशिष्ट शिक्षा तथा अन्य कार्य हेतु व्यक्तियों का अन्य देशों के साथ विनिमय आज के संसार का एक साधारण सत्य होता जा रहा है। ऐसी परिस्थितियों में विकसित देशों के निर्धन देशों का एक सामान्य अनुभव रहा है सांस्कृतिक आघात। जीवन की नितान्त आवश्यकताओं की पूर्ति भी जिन पदार्थों से जिस प्रकार की जाती है उनमें परिवर्तन होना मानव के लिए कुसमायोजन का कारण हो सकता है। कई बार निरामिष व्यक्ति की प्रारम्भ से ही सामिष भोजन के प्रति कुछ ऐसी गहन विरक्ति बन जाती है कि उस भोजन का अभाव उसके मन में

जीवित प्राणियों के हनन सम्बन्धी की वीभत्स कल्पनाएं उत्पन्न कर देता है। यहां तक कि हम भोजन को खाने वाले के प्रति भी उसके मन में एक अचेतन घृणा उत्पन्न हो सकती है। यहां निर्देशन से सम्बन्धित जो तथ्य महत्त्वपूर्ण है वह यह है कि दशन्दिन जीवन के सामान्य प्रतिष्ठ भी संस्कृति विशेष के मानवों की कुछ समान बातों के आधार पर निर्मित होते हैं तथा उस संस्कृति में पले व्यक्ति के लिए उनमें विचलन दुःखदायी सिद्ध होता है। इसी प्रकार पर्यावरणीय प्रभावों से बचने का मौलिक ध्येय लिए हुए भी वेशभूषा का स्वरूप संस्कृति विशेष के रहन सहन के तरीकों द्वारा निर्धारित होता है। प्रजनन सम्बन्धी यौन आवश्यकताएं प्राणीमात्र में मूलरूप से विद्यमान होने पर भी उनकी सन्तुष्टि का साध्य तथा उपागम संस्कृति विशेष की अनुशासनात्मकता तथा अन्तर्वादिता द्वारा नियन्त्रित होता है। केवल इतना ही नहीं विवाह पूर्व तथा विवाहोपरान्त स्त्री पुरुष सम्बन्धों का स्वरूप भी प्रत्येक संस्कृति में अपने अपने मानकों के अनुसार एक अलग स्वरूप लिए रहता है जो कि दूसरी संस्कृति में पले व्यक्ति के लिए कुछ अटपटा सा सिद्ध हो।

यह तो सामान्य अनुरक्षण सम्बन्धी शारीरिक भौतिक आवश्यकताओं की बात हुई जो कि संस्कृति—विशेष के मानकों के अनुसार परिपूर्ण की जाती है। समाज विशेष के प्रगति स्तर के अनुसार इन आवश्यकताओं की पूर्ति में अर्थ व्यवस्था का भी एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। अब एकक व्यक्ति की अर्थ आवश्यकता तथा अर्थ आकांक्षा कितनी है—अथवा कितनी होनी चाहिये—यह भी समाज विशेष के आर्थिक मानक पर निर्भर करता है। इसी आर्थिक मानक के आधार पर व्यक्ति की वैयक्तिक तुष्टि का स्वरूप निर्धारित होता है। अमरीका तथा भारत में गरीब तथा अमीर की परिभाषाएं ही किसी निश्चित धनराशि से निरपेक्ष रूप पर निर्मित न होकर समाज के औसत आर्थिक स्तर द्वारा अनुबन्धित होती है। स्पष्ट है कि एकक व्यक्ति की वैयक्तिक तुष्टि का मापदण्ड यही औसत स्तर होगा—न कि उसकी न्यूनतम आवश्यकताओं की वास्तविक पूर्ति के लिए वांछनीय धनराशि।

आर्थिक सामाजिक स्तर से भी कुछ और उच्च स्तरीय मनोवैज्ञानिक मूल्यों के सन्दर्भ में ये ही आवश्यकताएं स्व वास्तवीकरण के सन्दर्भ में गहनतर स्वरूप धारण कर लेती हैं जिसका विवेचन अगले अंश में प्रस्तुत किया जायेगा। किन्तु आर्थिक क्षेत्र में भी वैयक्तिक तुष्टि के साथ सामाजिक प्रतिद्वन्द्विता का जो नाजुक प्रश्न घुला मिला रहता है वह संस्कृति विशेष के मूल्यों द्वारा एक बड़ी सीमा तक प्रभावित होता है। कुछ संस्कृतियां ऐसी हैं जिनमें समाज में व्यक्ति का स्थान उसकी आर्थिक स्थिति द्वारा निर्धारित किया जाता है। ऐसी परिस्थिति में स्वाभाविक ही है कि व्यक्ति सन्तोषप्रद सामाजिक समंजन की उपलब्धि हेतु अपनी अधिकांश ऊर्जा अर्थ प्राप्ति के प्रयासों में लगा दे। इसके विपरीत जिन संस्कृतियों में भौतिक के स्थान पर आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों का अधिक आदर है वहां पर स्वभावतः व्यक्ति का

दृष्टिकोण में कुछ परिवर्तन हो जायगा। आर्थिक उपलब्धि तथा भौतिक अपनी मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति का एक अनिवार्य साधन मात्र समझते हुए उनसे ऊपर होकर आध्यात्मिक मूल्यों की प्राप्ति में अपनी शक्तियाँ लगायेगा। स्पष्ट है कि समाज में उसका स्थान भी उसके आध्यात्मिक उन्नयन की सीमा के अनुसार निर्धारित होगा।

इस प्रकार जब युग-युग जन की कल्पना भी संस्कृति विशेष के मूल्यों द्वारा अनुशासित होती है तो हम कह सकते हैं कि संस्कृति के मूल में ही निर्देशन का सबल दर्शन आधार खोजा जा सकता है।

शैक्षिक आधार

शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य है व्यक्ति का समन्वित विकास तथा सर्वांगीण समायोजन। हम प्रथम अध्याय में देख चुके हैं कि निर्देशन का वैज्ञानिक प्रयास किस प्रकार शिक्षा के इस अन्तिम उद्देश्य की उपलब्धि में सहायक होता है। इस पृष्ठभूमि के सन्दर्भ में निर्देशन के शैक्षिक आधारों का अति संक्षिप्त विवेचन यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

(१) ज्ञान का विस्तार तथा विशिष्टीकरण

सर्वप्रथम तो वर्तमान युग की वैज्ञानिक औद्योगिक उन्नति के फलस्वरूप विभिन्न क्षेत्रों में पाठ्य ज्ञान-सामग्री का इतना अधिक विस्तार हुआ है कि सामान्यतः उसका सर्वांगीण अध्ययन कर सकना ही शिक्षार्थी की एक बड़ी समस्या बनी हुई है। विषय क्षेत्रों के विकास के साथ साथ ज्ञान सामग्री के विशिष्टीकरण ने शिक्षार्थियों के समक्ष एक नवीन कठिनाई उत्पन्न की। प्रथम तो इस परिवर्धित ज्ञान सामग्री का उसकी व्यावसायिक उपयोगिता तथा शिक्षार्थियों की विशिष्टता के अनुसार उपयुक्त पाठ्यक्रमों में वर्गीकरण करने का प्रश्न उपस्थित होता है। इस वर्गीकरण को विधिवत् कर सकने के लिए व्यवसाय विश्लेषण के नूतन औद्योगिक विज्ञान का सहारा लेना पड़ता है जो कि निर्देशन सेवाओं का एक प्रमुख आधार है। स्पष्ट है कि पश्चिम की अपेक्षा नूतन ज्ञान विज्ञान में हमारा देश अभी बहुत पिछड़ा हुआ है।

व्यवसाय विश्लेषण के वैज्ञानिक आधार पर व्यवसाय विशेष के कार्य, लक्षण तथा उससे सम्बद्ध क्षमताओं का स्वरूप स्पष्ट होता है जिसके आधार पर व्यावसायिक प्रशिक्षण के पाठ्यक्रम निश्चित किये जाने चाहिए। निर्देशन कार्यक्रम से शिक्षार्थी समाज को न केवल उचित मार्ग-दर्शन प्राप्त होता है अपितु समुचित पुष्टि भी उपलब्ध होती है।

व्यवसाय विश्लेषण के माध्यम से व्यवसायों के स्वरूप का अध्ययन करने के साथ साथ ही व्यक्ति की प्रकृति का उसकी रुचि, बुद्धि, अभियोग्यता, अभिवृत्ति आदि मनोवैज्ञानिक घटकों के सन्दर्भ में परीक्षण करना आवश्यक हो जाता है। इस सम्ब

नान्तर उपागम के बिना दोनों ही आयामों का स्वतन्त्र रूप से अध्ययन होने पर भी वाञ्छनीय परिणाम नहीं प्राप्त हो सकता। वस्तुतः ये दोनों प्रयत्न इसलिए किए जाते हैं कि दोनों ही पक्षों के मनोवैज्ञानिक तत्त्वों के ज्ञान के आधार पर प्रत्येक व्यक्ति के लिये उसकी मनोवैज्ञानिक क्षमताओं के अनुरूप शिक्षण तथा प्रशिक्षण का आयोजन किया जा सके। यह इसलिए आवश्यक है कि इस प्रकार के आयोजन द्वारा उसके इष्टतम वैयक्तिक विकास तथा उसके द्वारा अनुकूलतम सामाजिक योगदान की आशा की जा सकती है।

निर्देशन के स्वरूप का ज्ञान यह स्पष्ट इंगित करता है कि उक्त प्रकार के अध्ययन आयोजन उसके उत्तरदायित्व में एक प्रमुख स्थान रखते हैं।

(२) शिक्षा की उद्देश्यहीनता

उक्त विवेचन के परिप्रेक्ष्य में हमारे देश में शिक्षा की उद्देश्यहीनता की सामान्य चर्चा का परीक्षण करना कदाचित् इस स्थान पर असंगत सिद्ध होगा। हमारे देश में शिक्षा के विविध स्तरों तथा श्रेणियों में परिमाणात्मक विकास—और कई स्थलों पर गुणात्मक भी—होते हुए भी शिक्षित तथा अशिक्षित दोनों ही समाजों में इस विकसित तथा विकासमान शिक्षा के प्रति एक अनास्था तथा अवमानना की भावना प्रचलित है। कारण स्पष्ट है जो कि अपने डिप्लोमा तथा डिग्रियों को विश्वविद्यालयों के सम्मुख फाड़कर "हम डिग्री नहीं नौकरी चाहिए" नारा लगाने वाले विद्यार्थियों के आक्रोश में देखा जा सकता है। केवल उच्च शिक्षा के निरपेक्ष आयोजन मात्र से शिक्षा अपने उद्देश्यों की पूर्ति नहीं कर सकती। उसकी आयोजना सामाजिक औद्योगिक स्थिति तथा आवश्यकताओं के सन्दर्भ में की जानी चाहिए।

जैसा कि हम पूर्व विवेचनों में भी देख चुके हैं इस क्षेत्र में असंगत योजनाओं से न केवल शिक्षा की उद्देश्यहीनता परिलक्षित होती है अपितु औद्योगिक क्षेत्र की उन्नति में भी अवरोध उत्पन्न होता है। यदि यह कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि शिक्षा तथा उद्योग के क्षेत्र की इन निरपेक्ष प्रगतियों से दोनों में केवल निरर्थकता की ही अभिवृद्धि होती जा रही है। एक विकासमान देश में धन शक्ति समय तथा साधन सभी का यह एक विषम रूप में खोया हुआ मात्र है जिसका कि वैज्ञानिक निर्देशन कार्यक्रमों द्वारा अवरोधन किया जा सकता है।

माध्यमिक शिक्षा के स्वातन्त्र्योत्तर प्रथम वृहद् सर्वेक्षण के प्रतिवेदन में ही माध्यमिक शिक्षा आयोग ने बहुउद्देशीय शिक्षा योजना तथा शालाओं में निर्देशन कार्यक्रम दोनों की समान रूप से सिफारिश की थी। किन्तु हास्यास्पद वास्तविकता यह रही कि न तो माध्यमिक शिक्षा संस्थाएँ ही सही मानों में बहुउद्देशीय हो सकीं न उनकी सफलता के लिए आवश्यक निर्देशन कार्यक्रमों की ही योजना हो सकी। परिणाम यही हुआ कि शिक्षण संस्थाओं तथा शिक्षित व्यक्तियों की संख्या में वृद्धि होने पर भी उद्देश्यहीन निर्बल शिक्षण व्यवस्था तथा आस्थाहीन असन्तुष्ट व्यक्तियों की ही उत्पत्ति एवं वृद्धि होना रहा। निर्देशन के समुचित कार्यक्रमों द्वारा ही इस शोचनीय स्थिति में

सुधार लाया जा सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि शैक्षिक कार्यक्रमों की आयोजना-समितियों में प्रशिक्षित निर्देशन-कार्यकर्ताओं को भी स्थान दिया जाना चाहिये। केवल विषय-विशेषज्ञों द्वारा ही बनाए गए शैक्षिक पाठ्यक्रमों में विषय-विशेष की विस्तारयुक्त सूक्ष्मताओं का भले ही समावेश हो जावे किन्तु विभिन्न वय, रुचि, बुद्धि एवं क्षमता के व्यक्तियों की विशिष्ट आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर पाठ्यक्रम अथवा पाठ्यचर्याओं का निर्माण कर सकना बिना व्यक्ति विज्ञान से परिचित विशेषज्ञ के सम्भव नहीं। शैक्षिक पाठ्यचर्या निर्माण में इस प्रकार के विशेषज्ञों को सम्मिलित करने का नूतन-प्रामाणिक प्रस्ताव पेश रखा जा रहा है।

वस्तुतः तो न केवल शैक्षिक कार्यक्रमों के आयोजन अपितु उनके पालन तथा मूल्यांकन में भी इन विशेषज्ञों की सहायता वांछनीय है। इन्हीं तथ्यों की ओर सजग आज के प्रगतिशील देशों में निर्देशन कार्यक्रमों को समूचे शैक्षिक कार्यक्रमों के एक अविच्छिन्न अंग के रूप में आयोजित किया जाता है। इस प्रकार की आयोजना का तात्पर्य यही होता है कि उद्देश्य निर्धारण के प्राथमिक चरण से लेकर मूल्यांकन की समापनी प्रक्रिया तक शैक्षिक प्रक्रम का हर निर्देशन के प्रकाश में आलोकित हो सके। इस नूतन व्यक्ति विभाग [illegible] प्रकाश शैक्षिक मार्ग के विविध अवरोधों को न केवल हटा सके अपितु उन्हें दूर करने की विधाएं अथवा अतिक्रमण करने की दिशाएं निश्चित कर सके। हमारे विचार में भारत में शिक्षा की बहुचर्चित वर्तमान उद्देश्यहीनता, निरर्थकता, दिशाहीनता आदि को समाप्त करने का यही वैज्ञानिक उपाय हो सकता है और इसीलिये शैक्षिक कार्यकर्ताओं के समक्ष यहाँ पर निर्देशन को शिक्षा के कार्यक्रमों में समाविष्ट रूप से पुनर्गठित हुए रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। यदि हम यह मानें कि शिक्षा का लक्ष्य मानव व्यवहार में वांछनीय परिवर्तन लाना है तो हमारे विचार में परिवर्तन की व्यावहारिक वांछनीयता निर्धारित एवं निश्चित करने में शिक्षा को निर्देशन की सहायता लेनी होगी। तभी शिक्षा अपने वास्तविक उद्देश्य की पूर्ति करेगी तथा उद्देश्यहीनता की वर्तमान उपाधि से मुक्ति प्राप्त कर सकेगी।

(३) मूल्यों का सृजन एवं स्पष्टीकरण

अध्याय के प्रारम्भ में [illegible] कह चुके हैं कि सृजन से प्राप्त उत्तरों के आधार पर ही संस्कृति विशेष के व्यक्तियों की मूल्य मापनी का निर्माण होता है। अब समाज में सर्वमान्य स्वीकृत इस मूल्य मापनी का समाज के भावी सदस्यों तक प्रभावात्मक रूप में प्रेषण का व्यावहारिक उत्तरदायित्व पड़ता है शिक्षा के दर्शन व कार्यक्रमों पर। वर्तमान विकासमान ज्ञान के अनुसार यह मान्यता अधिकाधिक स्वीकृत होती जा रही है कि शैक्षिक कार्यक्रमों का उद्देश्य केवल पूर्व निर्धारित पाठ्यक्रमों में निहित ज्ञान सूचना-कौशल का प्रेषण मात्र न होकर व्यक्ति के सर्वांगीण विकास सम्बन्धी भावात्मक संवेगात्मक पक्षों—यथा अभिवृत्ति, मूल्य, रुचि आदि का सृजन-पोषण करना भी होता है। किन्तु इस सैद्धान्तिक स्वीकृति का प्रयत्न व्यावहारिकरण करने में

हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली में कोई प्रकार्यात्मक प्रयोजना नहीं पाई जाती है। शिक्षकों की प्रमुख भूमिका अनुदेशकों के रूप में—पूर्ण हो सकने में ही स्वयं उनके समायोजन सम्बन्धी प्रश्न अपनी निजी जटिलताओं सहित शिक्षा शास्त्रियों के सम्मुख शिक्षक असन्तोष सम्बन्धी विविध समस्याएं उपस्थित करते जा रहे हैं। फलस्वरूप शिक्षार्थी के भावात्मक संवेगात्मक पक्ष का विकास न केवल उपेक्षित रहता है अपितु शिक्षकों की मनोवृत्तियों द्वारा विपरीत रूप से प्रभावित होता है।

इस प्रमुख अभाव के अतिरिक्त शाला समाज तथा घर में कई ऐसे विघटनकारी तत्व होते हैं जिनका शिक्षार्थी के जीवन मूल्यों पर अनुचित प्रभाव पड़ सकता है। निर्देशन के क्षेत्र में सामान्य रूप से प्रशिक्षित शिक्षक इन प्रभावों के प्रति सजग रह सकता है किन्तु हमारे देश की शिक्षक—शिक्षा प्रायोजना में अभी निर्देशन का सामान्य रूप से समावेश नहीं हो पाया है। फलस्वरूप औसत भारतीय शिक्षक निर्देशन के मूल तत्वों से भी प्रायः अनभिज्ञ ही रहता है। किन्तु यदि उसे सामान्य रूप से इस क्षेत्र में प्रशिक्षित कर भी दिया जाता तो भी यह स्पष्ट है कि उसका प्राथमिक उत्तरदायित्व अपनी अनुदेशक की भूमिका—जो कि आज के ज्ञान विस्फोट युग में जटिलतर होती जा रही है—सफल रूप से निभाना होता है। विषय वस्तु विस्तार के साथ ही शिक्षण विधाओं का विज्ञान भी वर्तमान युग में इतना विस्तृत होता जा रहा है कि अपने व्यवसाय का दैनन्दिन कार्य भी आज के शिक्षक के लिये पर्याप्त चुनौतियां प्रस्तुत करता जा रहा है। ऐसी परिस्थिति में उससे अनुदेशकीय क्षेत्र में अप्रत्यक्षरूपेण सम्बन्धित भूमिकाओं को भी समुचित रूप से निभा सकने की अपेक्षा करना कदाचित् उसके प्रति न्यायसंगत नहीं होगा।

यह सत्य है कि एक सामान्य सीमा तक शिक्षार्थियों में स्वीकृत मूल्यों का सृजन वह अपने प्रत्यक्ष आचरण, निजी अध्यापन विधाओं तथा अपने वैयक्तिक सम्बन्धों द्वारा कर सकेगा। किन्तु इससे आगे बढ़कर इस क्षेत्र में संभावित कुछ असामान्य परिस्थितियों की ओर संवेदनशील रहते हुए भी वह उनके साथ कार्य करने में वांछित सक्रिय योगदान नहीं दे सकता। वर्तमान युग में कतिपय विरोधाभासी मूल्यों का सहअस्तित्व उक्त प्रकार की असामान्य परिस्थितियों के एक ज्वलन्त उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। आज हम भारतवर्ष के किशोर समाज की तुलना चौराहे पर अवस्थित एक ऐसे व्यक्ति के साथ कर सकते हैं जो कि अपने भावी मार्ग के सम्बन्ध में शंकित हो। अभूतपूर्व तीव्र गति से संक्रमित इस देश में विभिन्न मान्यताओं का अस्तित्व एक साथ दृष्टिगोचर होता है। किशोर तो क्या हमारे वयस्कों के मन में भी चेतन अथवा अचेतन रूप से स्वीकृति सम्बन्धी विपर्यय उत्पन्न करते हुए कुछ प्रश्न हैं। नूतन अथवा पुरातन? पूर्व अथवा पश्चिम? भौतिक अथवा आध्यात्मिक? विज्ञान अथवा विश्वास? कृषि अथवा उद्योग? भारत की चिर पुरातन संस्कृति में इस प्रकार की शंकाएं, विधाएं, जिज्ञासाएं होना बहुत अस्वाभाविक

रहा है। किन्तु मनोवैज्ञानिक रूप से भी व्यक्ति के इस अध्ययन-स्थल पर वास्तविक रूप से अवस्थित बालक के किशोर के लिये जब जिज्ञासाओं की स्पष्टता अपने बड़ों से या निश्चित रूपेण प्राप्त नहीं हो पाती तो उसकी द्विधा तथा पीड़ा दुगुनी हो उठती है। इस प्रकार के विभ्रम का प्रभाव उसके समूचे भावी जीवन पर पड़ सकता है। ऐसी परिस्थिति में आवश्यकता ही नहीं अनिवार्य है कि विशेष रूप से प्रशिक्षित निर्देशन कार्यकर्ताओं द्वारा देश के भावी नागरिकों के मन की शंकाओं का यथोचित रूप से निराकरण किया जा सके तथा उनके जीवन में आदर्शों के सम्बन्ध में निर्णय लिया जा सके तथा उनके मानस में स्वीकृत मूल्य मान्यताओं का विकास किया जा सके। स्पष्ट है कि इस प्रकार के सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु शाला में निर्देशन व्यवस्था की निर्विवाद आवश्यकता है और इन्हीं आवश्यकताओं में निर्देशन के सामाजिक आधार मूलभूत रूप से पाये जा सकते हैं।

मनोवैज्ञानिक आधार

मनोविज्ञान मानव व्यवहार का ही विज्ञान है। अतएव मानव व्यवहार से ही प्रत्यक्षरूपेण सम्बन्धित निर्देशन कार्य के सबलतम आधार मनोविज्ञान के क्षेत्र से ही उपलब्ध हो सकते हैं। इनमें से कुछ प्रमुख आधारों का विवेचन निम्न अनुच्छेदों में प्रस्तुत किया जा रहा है।

(१) व्यक्ति का समायोजन एवं विकास

एक व्यापक विस्तृत दृष्टिकोण से तो समस्त मानव जीवन को ही समायोजन एवं विकास की एक निरन्तर प्रक्रम के रूप में देखा जा सकता है। स्पष्ट रूप से शिक्षा के समस्त प्रयोजनों को भी इन्हीं दो शीर्षकों के अन्तर्गत समाविष्ट किया जा सकता है। अपने पूर्व विवेचनों में हम यह भी देख चुके हैं कि निर्देशन का मूलतः क्षेत्र जीवन एवं शिक्षा की इन्हीं सर्वांगीण स्वीकृतियों का एक अत्यन्त प्रभावोत्पादक स्वरूप प्रस्तुत करने के उद्देश्य से ही अवतरित हुआ है। समायोजन विकास के यथार्थिक प्रक्रमों से परिचय प्राप्त किए बिना न तो व्यक्ति की पूर्ण समायोजन की उपलब्धि कराई जा सकती है न ही उसको समुचित विकास की ओर सहायता दी जा सकती है। निर्देशन के परिप्रेक्ष्य में इन दोनों प्रक्रमों के निम्न विवेचन में यह बात और भी अधिक स्पष्ट हो जायगी।

समायोजन के यथार्थिक स्वरूप में तब से अधिक आयामों का होना पूर्वानुमानित होता है। वस्तुतः समायोजन शब्द ही मूलरूपेण भौतिक क्षेत्र की उस प्रक्रिया का सूचक है जिसमें किसी परिस्थिति में एक से अधिक आयामों के प्रमुख तत्व के साथ साथ उनमें प्रकार की भौतिक संगति हो कि उनमें स्थानीय या भौतिक तारतम्य बन सके। यह स्थितीय तारतम्य विठान की पूर्वावश्यकता होती है आयामों के आकार प्रकार तथा उनके भौतिक लक्षणों से सम्बन्धित समुचित जानकारी तथा उनके हस्त प्रयोग में आने वाले औज़ार। इसी तथ्य को मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में लागू करते समय

मूल पूर्वविन्यकनाए तो व ही रहेंगी जो कि यान्त्रिक क्षेत्र में होती हैं—अर्थात् परिस्थिति के मनोवज्ञानिक आयामो की प्रकृति एव लक्षण के सम्बन्ध म समुचित ज्ञान तथा उनके साथ काय कर सकने की वज्ञानिक कुशलता। स्पष्ट है कि मानवीय घटको की प्रकृति का ज्ञान उन्हे प्रभावित करने वाले कारको का सम्बोध—तथा उनके साथ काय कर सकने का कौशल्य मनोविज्ञान के क्षेत्र से ही प्राप्त हो सकता है। अतएव स्पष्ट है कि व्यक्ति के बहुआयामी समजन का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य लिये हुए निर्देशन को अपनी कायविधिआए मनोविज्ञान से ही प्राप्त करनी पड़े।

यान्त्रिक क्षेत्र सम्बन्धी उक्त उदाहरणो से यह भ्रान्ति उत्पन्न नही होनी चाहिये कि यान्त्रिक तथा मनोवज्ञानिक क्षेत्रो म समजन की प्रकृति तथा स्वरूप म यथातथ साम्य है। इस भ्रान्ति के अवरोधन के लिये इसी स्थल पर मनोवज्ञानिक क्षेत्र म समजन की अपनी कुछ विशिष्टताए भी बताना आवश्यक होगा। सवप्रथम तो यह ध्यान रहे कि मनोवज्ञानिक समञ्जन एक जीवित परिस्थिति म सम्पन्न होता है जब कि यान्त्रिक समजन की प्रक्रिया निर्जीव स्थूल पदार्थों अथवा यन्त्र तत्त्वो मे होती है। द्वितीय—और अधिक महत्त्वपूर्ण स्मरणीय तथ्य इस सम्बन्ध में यह है कि मनोवज्ञानिक समजन प्रक्रम स सम्बन्धित तत्त्व पर गत्यात्मक होते हैं। उनम भौतिक जगत् की यान्त्रिक स्थिरता नही होती। इस पक्ष के उदाहरणस्वरूप हम या तो व्यक्ति तथा उसके पर्यावरण की सम्भावित असंगतियो को ले सकते हैं अथवा उसी के अन्तर में स्थित एषणाओ अन्तर्नोदो इच्छाओ के मध्य सघष को ले सकते हैं। सामान्यत किसी भी प्रकार की असंगतता सघर्ष अथवा द्वन्द्व-तनाव उपस्थित करता तनाव का अनिवार्य परिणाम है पीडा जो कि व्यक्ति के कुसमजन का कारण बनती है। इस तनाव तथा तनावजन्य पीडा को दूर करने के लिये आवश्यक हो जाता है कि परिस्थिति में वर्तमान विविध घटको की प्रकृति से परिचय प्राप्त किया जावे। परिचय के पश्चात् या उसके साथ साथ ही अनिवाय हो जाता है कि उनकी गति विधियो का ज्ञान हो। समजन की प्रकृति तथा उसकी गतिविधियो का वज्ञानिक ज्ञान ही हमें व्यक्ति को समजन की सुखद स्थिति की ओर ले जा सकने में सक्षम कर सकता है। यह वज्ञानिक सम्बोध मनोविज्ञान के क्षेत्र स ही प्राप्त किया जा सकता। चूकि निर्देशन का एक प्रमुख लक्ष्य व्यक्ति को उसके सर्वांगीण समजन में सहायता प्रदान करना है इसलिये उसे मनोविज्ञान की वज्ञानिक नींव पर ही अपनी प्राथमिक काय शिलाए स्थापित करनी होगी।

शिक्षा के द्वितीय समाहारी ध्येय— विकास का सम्प्रत्यय समजन स न केवल सम्बन्धित होता है अपितु उससे प्रभावित भी होता रहता है। असगत पक्षो के सहअस्तित्व से सम्पूर्ण परिस्थिति का विकास अवरुद्ध होने की आशका रहती है यह एक सामान्य प्राकृतिक तथ्य है। प्राकृतिक प्राणी मानव के जीवन मे भी यह तथ्य समान रूप से चरिताथ होता है। इसलिए प्रथम महत्त्वपूर्ण तत्त्व इस सम्बन्ध म यही है कि कुसमजित व्यक्ति का विकास अवरुद्ध अथवा विघ्न हो जाने की आशका रहती

है—और ऐसी परिस्थिति में व्यक्ति को समायोजित करने में मनोविज्ञान का ही आश्रय लेना पड़ता है।

दूसरे— शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में विकास के सम्प्रत्यय का परीक्षण निर्देशन से सम्बन्धित एक और विचारणीय तथ्य प्रस्तुत करता है। सामान्यतः व्यक्ति का विकास किसी भी देश की शिक्षा प्रणाली का लक्ष्य है साधारणतः स्वीकृत ध्येय माना जाता रहा है। यों एक दृष्टि से विकास समस्त जीवित प्राणियों का एक मूल लक्षण माना जाता है जो कि उन्हें निर्जीव वस्तुओं की अपेक्षा से विभाजित करता है। अतएव प्रश्न उठ सकता है इस स्वयम्भू प्रक्रम में शिक्षा अथवा किसी बाह्य प्रभाव की क्या आवश्यकता? किन्तु इसी प्रश्न के उत्तर में निर्देशन की मनोवैज्ञानिक आवश्यकता का प्राथमिक उत्तर प्राप्त होता है। विकास की सहज उपस्थिति ही उसकी दिशा की वांछनीयता की सापेक्षित समस्या उत्पन्न कर देती है। वांछनीयता एक निरपेक्ष सम्प्रत्यय नहीं है। जहाँ सामाजिक क्षेत्र में इस वांछनीयता का स्वरूप शिक्षा तथा समाज के स्वीकृत मानकों द्वारा निर्धारित होता है वहाँ मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से वांछनीयता की प्रकृति तथा गतिविधि मानव के वैयक्तिक लक्ष्यों के साम्य व उसकी आवश्यकताओं द्वारा अनुशासित होती है। व्यक्ति विकास के निर्धारक प्रभावक तथा अवरोधक तत्त्वों का समुचित सम्बोध तो मनोविज्ञान के क्षेत्र से ही प्राप्त हो सकता है। इस सम्बोध के अभाव में निर्देशन कार्यकर्ता के लिए न तो व्यक्ति विकास को समुचित दिशाओं में प्रेरित करने की क्षमता प्राप्त हो सकती है न उसे आवश्यकतानुसार नियन्त्रित करने की योग्यता उपलब्ध हो सकती है। अतएव जीवन तथा शिक्षा के अभिन्न लक्ष्य [illegible] विकास की ओर मानव को ले जाने में निर्देशन का मनोवैज्ञानिक आधार निहित रहता है।

(२) स्व वास्तवीकरण

अब इस स्थल पर व्यक्ति-विकास की अन्तिम सन्तुष्टिमय स्थिति के रूप में स्व वास्तवीकरण का निर्देशन से सम्बन्ध परीक्षण समीचीन होगा। स्व वास्तवीकरण का तात्पर्य है—अपनी आकांक्षाओं क्षमताओं अपेक्षाओं के अनुरूप प्रत्यक्ष रूप से सफल एवं प्रभावमय क्रियाएँ कर सकना तथा संतोषप्रद स्थिति की अनुभूति कर सकना। मानसिक दृष्टि विकास एवं समायोजन की यह सर्वोच्च मनोवैज्ञानिक परिस्थिति मानी जा सकती है जिसकी तुलना हम आध्यात्मिक क्षेत्र के स्व प्रत्यभिज्ञान से कर सकते हैं। वस्तुतः विकास एवं समायोजन दोनों की ही यह सर्वोच्च स्थिति कही जा सकती है। इस स्व वास्तवीकरण की प्राथमिक [illegible] का स्थापन एवं [illegible] प्रेरणा की प्राप्ति होती है व्यक्ति को स्व धारणा के रूप में। वस्तुतः हम स्व धारणा का निर्माण ही मानव जीवन की सभी त्रुटियों अनुभूतियों सुख-दुःखों आशा निराशाओं को एक बहुत बड़ी सीमा तक अनुशासित करता है। असंगत अथवा त्रुटिपूर्ण स्व धारणा वाले व्यक्ति के लिए अनुकूलतम परिस्थितियों का लाभ उठा सकना भी असम्भव हो जाता है। अपने आप की [illegible] सामान्यतः [illegible] प्रकार की [illegible]

सकती है। या तो व्यक्ति अपना अवमूल्यन करता है—अथवा अतिमूल्यन। यह भी हो सकता है कि व्यक्तित्व के कुछ पक्षों में वह अपने आपको हीनता की दृष्टि से देखता रहता है तथा अन्य पक्षों में एक अयथार्थ उत्कृष्ट भावना बनाए रहता है। इस प्रकार समस्या के दृष्टिकोण से उक्त दोनों ही परिस्थितियाँ व्यक्ति के लिए हानिकारक होती हैं। अपने जीवन के विविध पक्षीय उत्तरदायित्वों को सफल रूप से निभा सकने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि व्यक्ति को अपनी क्षमताओं तथा सीमितताओं—दोनों का ही सही ज्ञान हो। यह आवश्यकता केवल अपने स्वयं के साथ समजित होने के लिये ही नहीं है। वस्तुतः अपने पर्यावरण के अन्य व्यक्तियों के साथ सम्बन्ध स्थापना एवं उनके साथ सुचारु रूप से कार्य कर सकने हेतु भी व्यक्ति के लिए अनिवार्य हो जाता है कि उसे अपने विषय का सही सम्बोध हो। जहाँ पर स्वयं सम्बन्धी अतिमूल्यन करने वाला व्यक्ति अपने आप में भ्रान्तियों का अनुभव करते हुए अन्य व्यक्तियों के लिए भी हंसी का पात्र बनता है वहाँ पर अपनी क्षमताओं से अपरिचित व्यक्ति अवसरों के लाभ से वंचित रहता हुआ असफलताओं निराशाओं तथा हीन भावनाओं से सतत पीड़ित होता रहता है। इस भयंकर मनोवैज्ञानिक मन स्थिति के अस्तित्व में सुनियोजित शिक्षा भी व्यक्ति के लिए अनुत्पादक ही सिद्ध होती है।

निर्देशन का प्रायमिक उत्तरदायित्व होता है व्यक्ति को उसकी सही तस्वीर देख सकने तथा उसे स्वस्थ रूप में स्वीकार कर सकने में सक्षम बनाना। इस स्वस्थ स्वीकृति की स्थिति में ही वह अनावश्यक आशाओं की अग्नि में अपनी मूल्यवान शक्तियों को भस्म करने का भय से उनके अनुकूल सफल कार्य कर सकने के लिए उन्हें उचित सचित करता रह सकता है। इस सफल सफलता के परिणामस्वरूप धीरे धीरे अपनी सुप्त क्षमताओं का भी सतत विकास करता हुआ प्रगति की राह पर आनन्दपूर्वक अग्रसर हो सकता है। ऐसी मार्ग की अंतिम परिस्थिति पर उस स्व वास्तवीकरण की सन्तोषप्रद अनुभूति हो सकती है। इन चरणों के बीच सतत रूप से व्यक्ति का निर्देशित कर सकने के लिए उसके विविध वैयक्तिक पक्षों का प्रायमिक परिचय उसकी निहित सम्भावनाएं उसके प्रभावक आधार-तथ्य—आदि तथ्यों की जानकारी अनिवार्य है—और यह जानकारी मनोविज्ञान के क्षेत्र से ही प्राप्त हो सकती है। वस्तुतः मनोविज्ञान का नूतन क्षेत्र ही व्यक्ति समजन की ये नवीन राह दर्शाता है। किन्तु इन राहों पर चल सकने के लिए निर्देशन का व्यावसायिक आयाम विकसित होता जा रहा है और इस विकास में इस निरन्तर रूप में मनोविज्ञान का मौलिक आधार शोधना पड़ता है।

( ) वैयक्तिक विभिन्नताएं

निर्देशन कार्य का प्रमुख केन्द्र बिन्दु होता है व्यक्ति—और आधुनिक मनोविज्ञान ने इस व्यक्ति की प्रकृति के सम्बन्ध में जो सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रस्तुत किया है वह है वैयक्तिक विभिन्नताओं का। मानव-व्यवहार के इस नूतन विज्ञान ने प्रतिस्थापित किया है कि एकक व्यक्ति अपने आप में सम्पूर्ण एवं विभिन्न इकाई

है। प्रत्येक व्यक्तियों के किसी कुल, समूह में भी कोई दो चेहरे एक से नहीं होते किन्तु इस साधारण तथ्य को एक नैसर्गिक सहज वास्तविकता के रूप में देखते हुए हमारी प्रवृत्ति उस पर सामान्य स्वीकृति मात्र देने की हो जाती है। इस प्रत्यक्ष वास्तविकता पर कुछ अधिक विचार करने पर मालूम होता है कि किसी व्यक्ति की ओर सबसे प्रथम ध्यान आकर्षित करने वाले उसके चेहरे से आगे बढ़ने पर व्यक्तियों के विविध शारीरिक तत्त्वों—यथा लम्बाई, मोटाई, वक्ष का रूप, केश का रंग, कंठ का स्वर आदि में भी स्पष्ट विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है। ये तो कुछ प्रकृति के प्रायः तात्कालिक घटक [illegible] जिनका कि प्रत्यक्ष पर्यवेक्षण किया जा सकता है। मनोविज्ञान का विकास इन विभिन्नताओं के वैज्ञानिक मूल के सम्बन्ध में हमें प्रबुद्ध करता हुआ स्पष्ट करता है कि जिस प्रकार शारीरिक रूप से कोई भी दो व्यक्ति एक से नहीं होते उसी प्रकार व्यक्तियों के विभिन्न मनोवैज्ञानिक आयामों में भी विविध विभिन्नताएँ पाई जाती हैं। जहाँ व्यक्तियों की मानसिक योग्यताओं में भिन्नता हो सकती है वहाँ विविध संवेगात्मक लक्षणों के भिन्न भिन्न स्वरूप विभिन्न व्यक्तियों में परिलक्षित होते हैं। शिक्षक को कक्षा में केवल विविध बौद्धिक स्तरों के छात्रों के साथ कार्य करने की समस्या मात्र का ही सामना नहीं करना होता है। अधिगम के प्रक्रम से सम्बन्धित अन्य कई घटक भी होते हैं जो कि उसके अध्यापन कार्य को प्रभावित करते रहते हैं। जहाँ एक छात्र कुछ घोंघे के समान सतत संकुचित रहकर अध्यापक के विविध प्रयासों के बावजूद भी अपनी [illegible] को खोलकर कक्षा में समुचित सहयोग प्रदान नहीं कर पाता, वहाँ पर कोई अन्य बाह्यमुखी विद्यार्थी अपनी निरन्तर उच्छृंखल आचरणी क्रियाओं द्वारा कक्षा का सारा अनुशासन भी विचलित कर सकता है। किसी छात्र के लिए शिक्षक के अध्यापन स्तर एवं गति की सामान्यता [illegible] का कारण हो सकती है जबकि वही दूसरे विद्यार्थी के तदनुसार मानसिक स्तर के कारण कक्षा की औसत गति से भी कदम नहीं मिला पाता। अध्यापक की एक सामान्य आलोचनात्मक टिप्पणी जहाँ किसी संवेदनशील छात्र के तनाव का कारण बन जाती है वहाँ अध्यापक की तीव्र फटकारों की भी किसी [illegible] विद्यार्थी के कानों पर जूँ तक नहीं रेंग सकती। यहाँ तक तो हुई व्यक्ति व्यक्ति के बीच भिन्नताओं की बात। किन्तु [illegible] से भी [illegible] तथ्य जिस पर आधुनिक मनोविज्ञान प्रकाश डालता है—वह है अन्तर्व्यक्तिक विभिन्नताओं का। एक व्यक्ति दूसरे से तो भिन्न होता ही है किन्तु एक व्यक्ति के अन्तर में भी नाना प्रकार की विरोधाभासी भिन्नताओं का अस्तित्व पाया जाता है। व्यक्ति के सामान्य विकास प्रक्रम में से इसका एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकता है। यह एक स्पष्ट सत्य है कि किसी व्यक्ति के विकास आरम्भ में उसकी विविध आयु रेखाएँ समानान्तर हों यह आवश्यक नहीं। शारीरिक आयु तथा मानसिक आयु के प्रचलित अन्तर के आधार पर ही बुद्धि-लब्धि [illegible] परिकलन करने का फार्मूला बन पाता है। विविध विकास स्तरों के लिए आधुनिक मनोविज्ञान कोई [illegible] आयु

सीमायें निर्धारित नहीं करता है क्योंकि विभिन्न व्यक्तियों में परिपक्वन की गति प्रकृति तथा सह प्रभाविता में अन्तर पाया जाता है। किन्तु इस स्वीकृत व्यक्ति भेद को और भी अधिक सजटिलता प्राप्त होती है एक ही व्यक्ति में उपलब्ध उसकी विभिन्न प्रकार की आयुओं में अन्तर से। आज का प्रगतिशील मनोविज्ञान आयु के केवल शारीरिक तथा मानसिक विभेदों में अग्रसर होकर मानव की अन्य कोई आयु— यथा संवेगात्मक व्यावसायिक शैक्षिक आदि के सम्बन्ध में प्रकाश डालता है। वैयक्तिक विकास के लिए उत्तरदायी शिक्षक को इन सभी प्रकार की मनोवैज्ञानिक वास्तविकताओं के परिप्रेक्ष्य में भी अपने काय करने पड़ते हैं। त्रिविध रूपी तथा विविध परीय वैयक्तिक विभिन्नताओं के बीच में व्यक्ति का अध्ययन करके उसी अपने नाना रूपी व्यवसायी उत्तरदायित्व निभाने पड़ते हैं। और इसीलिए यह आवश्यक ही नहीं अनिवार्य हो जाता है कि न केवल शिक्षक वैयक्तिक काम पर आधारित निर्देशन के प्रकार्यात्मक विधान में प्रशिक्षित हो अपितु शाला में विशिष्ट रूप से प्रशिक्षित निर्देशन विशेषज्ञों की तकनीकी सेवाओं का प्रावधान हो। वस्तुत वैयक्तिक विभिन्नताओं के अस्तित्व का तथ्य ही निर्देशन कार्यक्रम की आवश्यकताओं का प्रमुख आधार कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। यदि सभी व्यक्ति यन्त्र उत्पादित पदार्थों के समान एकरूप होने तथा उनके विकास अधिगम एवं समंजन के प्रक्रमों में समरूपता होती तो कदाचित उनके लिए भी व्यक्तिगत निर्देशन सेवाओं की आवश्यकता न पड़ती किसी पूर्व निर्धारित शिक्षण ढाँचे में वे एक रंग रूप व आकार प्रकार तथा नाप तौल वाली साबुन की टिकियाओं के सदृश ढल जाते।

(४) व्यक्तित्व की प्रकृति—

वैयक्तिक विभिन्नता का उपरोक्त विवेचन हमारा ध्यान निर्देशन के अन्तिम किन्तु सबसे महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक आधार की ओर आकर्षित करता है और वह है व्यक्तित्व की प्रकृति।

सामान्यत मनोवैज्ञानिकों में यह विचार अधिकाधिक सहमति प्राप्त करता जा रहा है कि व्यक्तित्व की प्रकृति का वर्णन किसी एक परिभाषा की संकुचित सीमा में अवरोधित नहीं किया जा सकता। इस विचार के आधार में है व्यक्तित्व के स्वरूप की सजटिलता। व्यक्तित्व के कई अन्योन्याश्रित अन्तर्सम्बन्धित तथा अन्तर्गठित आयामों पर आधुनिक मनोविज्ञान इस प्रकार उत्तरोत्तर प्रकाश डालता जा रहा है कि व्यक्तित्व के कई लम्बे वर्णनों का समाहार केवल यह कह कर करना पड़ता है कि व्यक्तित्व वही है जो कि व्यक्ति है।

इस प्रकार की सजटिल प्रकृति के मनोवैज्ञानिक निर्मिति के साथ कार्य करने का महत् उत्तरदायित्व वहन करने वाले निर्देशन कार्यकर्ता के लिये प्राथमिक पूर्वावश्यकता होगी व्यक्तित्व के स्वरूप से मनोवैज्ञानिक परिचय उसकी गतिक्रिया सम्बन्धी समुचित सम्बोध तथा उसके माप जाँच विषयी व्यवस्थित ज्ञान। स्पष्ट है कि ये सभी बौद्धिक उपलब्धियाँ मनोविज्ञान के क्षेत्र से ही प्राप्त हो सकती है। वस्तुत मनोवि

ज्ञान का विषय तो इन महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के सम्बन्ध में सैद्धान्तिक तथ्यों का स्पष्टीकरण करता है। किन्तु इनके साथ प्रत्यक्ष रूप से कार्य करने का गुरु उत्तरदायित्व तो शिक्षक पर है जिसे कि इस पुस्तक के पाठकों ने प्राथमिक सीमा स्तर का निर्देशन कार्यकर्ता माना है। स्पष्ट है कि व्यावहारिक कार्य करने से पूर्व कार्यकर्ता को सैद्धान्तिक तथ्यों पर अधिकार प्राप्त हो जाना चाहिए और चूँकि यह सैद्धान्तिक प्रकाश मनोविज्ञान के क्षेत्र से प्राप्त होता है अतः कहा जा सकता है कि व्यक्तित्व के स्वरूप से परिचय में निर्देशन सेवाओं का एक अत्यन्त सबल आधार निहित रहता है। यथासम्भव तथ्य विवरण का हमने अगले पृष्ठ विवेचनों में निर्देशन के एक प्राथमिक आधार के रूप में प्रस्तुत किया है। वस्तुतः ये दोनों ही प्रश्न व्यक्तित्व के स्वरूप व निरूपण से सम्बन्धित हैं। यह तो कि विकास तथा समायोजन के अध्ययन को व्यक्तित्व अध्ययन का ही एक प्रमुख अंग मान लिया जाय तो भी अतिशयोक्ति नहीं होगी। व्यक्तित्व के स्वरूप ज्ञान के आधार पर ही उसके विकास की दिशा तथा समायोजन की योजना निर्धारित की जा सकती है।

किन्तु व्यक्तिगत भिन्नता विषयक हमारा चिन्तन हमारे कार्य क्षेत्र की जटिलता को और भी स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करता है। स्वयं व्यक्तित्व प्रकृति की जटिलता के साथ साथ भिन्नता इस तथ्य पर बल देता है कि कोई भी दो व्यक्ति एक से नहीं होते। अर्थात् दूसरे शब्दों में प्रत्येक व्यक्तित्व में कहा जा सकता है कि प्रत्येक व्यक्तित्व अनूठा होता है। वस्तुतः यह सम्पूर्ण ज्ञान की एक शाखा ही उसे न केवल अधिक तीव्र स्वरूप प्रदान करती है अपितु उसका अर्थ परिभाषा से सुस्पष्ट विशेषीकरण करती है।

व्यक्तिगत विभिन्नताओं के अध्ययन ने व्यक्ति विभिन्नता का तथ्य तो व्यक्तित्व-स्वरूप की जटिलता पर और भी अधिक बल दिया है। इस मनोवैज्ञानिक तथ्य का अनिवार्य परिणाम यह होता है कि निर्देशन कार्यकर्ता को मनोविज्ञान की सहायता से व्यक्ति के विषय का वस्तुगत सम्बोध प्राप्त करना अनिवार्य हो जाता है।

यहाँ तक तो हुई व्यक्तित्व रचना की प्रचलित अभिव्यक्तियों के साथ कार्य करने की बात। किन्तु वर्तमान मनोविज्ञान ने व्यक्तित्व के कुछ अचेतन पक्षों पर प्रकाश डालकर निर्देशन कार्यकर्ता को नवीन चुनौतियाँ प्रदान की हैं। प्रचलित मनोविज्ञान ने जब अपना कार्य आरम्भ किया था तो कथन था कि चेतन व्यवहार की डोरियों का संचालन नियन्त्रण ही आज के मुख्य रूप से स्थित किन्हीं प्रच्छन्न प्रवृत्तियों द्वारा होता है। आज के विकासमान वर्तमान पर्यावरण में जब प्रत्यक्ष पदार्थों के साथ जूझने से ही विविध समस्याएँ विकसित होती हैं। तब अचेतन की गहन गहराइयों में गोते लगाकर व्यक्तित्व रचना के सम्पादन की खोज करने की क्षमता तथा परखने का धैर्य बिना मनोविज्ञान के बहुआयामी प्रकाश के सम्भव नहीं।

सामान्यतः साधारण परिस्थितियों में हम प्रौढ़ व्यक्तित्व के साथ कार्य

करने में ही जब उक्त प्रकार की चुनौतियों का सामना करना पड़ता है तब विचलित व्यक्तित्व के लिये क्या कहा जाय यह चिन्तन का विषय हो सकता है। यों तो निर्देशन के क्षेत्र की यह एक सामान्य मान्यता है कि शिक्षक तथा शाला उपबोधक की साधारण कार्य सीमा का प्रसार औसत छात्र तक ही रहता है। औसत जनसंख्या अर्थात् ६८.२६ प्रतिशत छात्रों के बीच जो सहज वयक्तिक विचलन पाया जाता है उसी के परिप्रेक्ष्य में उसे अपनी कार्य योजनाओं का आयोजन धारण करना अपेक्षित होता है। मानक से बहुत अधिक मात्रा में विचलित व्यक्तियों का वह समुचित निदान कर के उन्हें उपयुक्त विशेषज्ञ के पास निर्देशित कर सके ऐसी आशा उससे की जा सकती है।

किन्तु सर्वप्रथम इस निदान के औचित्य तथा उपयुक्त विशेषज्ञ के चुनाव की चुनौतियों में ही मनोवैज्ञानिक तथ्यों पर उचित अधिकार की आवश्यकताएं निहित रहती हैं। इस लिये निर्देशकों उपबोधकों के लिये आयोजित कोई भी प्रशिक्षण पाठ्यक्रम बिना मनोविज्ञान का आधार लिये नहीं बन सकता। कई मनोवैज्ञानिक सम्प्रत्ययों के सम्बन्ध की पारस्परिक स्पष्टता ही इसी क्षेत्र से उपलब्ध हो सकती है। बिना इस आधारभूत स्पष्टता के निर्देशन की प्रकार्यात्मक आयोजनाओं के त्रुटिपूर्ण हो जाने की आशंका हो सकती है।

अब ही औसत जनसंख्या के बीच प्राप्त सहज विचलन की बात। और यही वह मार्मिक कार्य बिन्दु है जहां पर व्यक्ति के साथ कार्य करने वाला म प्रशिक्षित तथा अप्रशिक्षित का भेद परखा जा सकता है। व्यक्तित्व मनोविज्ञान में दीक्षित निर्देशक उपबोधक के लिये औसत जनसंख्या की परास में पड़ने वाला व्यक्ति भी वह सम्पूर्ण इकाई है जो कि उसकी समीपतम इकाई से भी कई मानों में भिन्न है। किन्तु व्यक्तित्व मनोविज्ञान से वयक्तिक विभिन्नता के इस सूक्ष्म ज्ञान के साथ ही वह समस्त जनसंख्या की कतिपय आधारभूत समान आवश्यकताओं के प्रति भी पूर्णरूपेण संवेदनशील रहता है।

उक्त विवेचनों के आधार पर कहा जा सकता है कि व्यक्तित्व के स्वरूप ज्ञान में निर्देशन कार्य का एक अत्यन्त समाहारी मनोवैज्ञानिक आधार निहित रहता है।

उपसंहारात्मक कथन

निर्देशन के नूतन क्षेत्र में विषय प्रवेश तथा उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के विहंगावलोकन के तत्सम्बन्धित अनुवर्तन में प्रस्तुत यह अध्याय निर्देशन कार्य के मूलभूत आधारों का एक समाहारी चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। इस अध्याय में निर्देशन के दार्शनिक सामाजिक सांस्कृतिक शैक्षिक तथा मनोवैज्ञानिक आधारों का भिन्न भिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत विशद् विवेचन करने का प्रयास किया गया है। इसका यह तात्पर्य नहीं कि ये विभिन्न आधार एक दूसरे की शून्यता में देखे-परखे जा सकते हैं न ही यह मान्यता होनी चाहिये कि इनमें से किसी का निर्देशन कार्य में निरपेक्ष महत्व है।

य दलोग या निर्देशन कार्य का मूल आधार है—मानव या और विशिष्ट रूप से—व्यक्ति। व्यक्ति के जीवन व की बहुपक्षीयता के कारण मानव से सम्बन्धित आज कोई भी ऐसा विषय क्षेत्र नहीं होगा जिसके विशेषज्ञ एकाकी रूप से अपने व्यावसायिक उत्तरदायित्वों को निभा सकें। विविध विषय क्षेत्रों की सीमाओं में निर्देशन के आधारों का निहित होना इस तथ्य की पुष्टि करता है। इस प्रकार प्रस्तुत अध्याय में निर्देशन का इन विविध विषयों से सैद्धान्तिक सम्बन्ध स्थापन भी सम्पन्न हुआ।

इस सम्बन्ध में द्वितीय महत्त्वपूर्ण बात यह है कि पुस्तक के इस स्थल पर शिक्षा के सैद्धान्तिक विवेचन का भी एक प्रकार से समाहार हुआ है। पुस्तक के आगे का अधिकांश निर्देशन की प्रकार्यात्मक योजनाओं तथा व्यावहारिक कार्य भूमिकाओं से सम्बन्धित होगा।

निर्देशन सेवाओं का परिचय

(विषय प्रवेश पूर्वभूत अभिग्रहण वर्तमान विद्यार्थी की वैयक्तिक अपेक्षाएं स्वयं निश्चय कर सकने की क्षमता समायोजिता तथा सहिष्णुता आत्मनिर्भरता नागरिक उत्तरदायित्व विद्यार्थी अधिकारपत्र प्रकार्यात्मक सेवाएं निर्देशन सेवाएं प्राप्त व्यक्ति इतिहास मूलभूत किन्तु उपयोज्य ज्ञान एवं मानचित्र रूप सेवा का विशेष ज्ञान वैयक्तिक सूचना तथा अज्ञात गणना उपयोगिता विकासात्मक व्यापकता विश्वसनीयता प्रकार अभिनिर्धारण शरीर एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी दत्त उपलब्धियां मनोवैज्ञानिक दत्त जीवन सम्बन्धी आकांक्षाएं सूचनास्थान एवं संकलन विधि प्राप्य पर्यावरणीय सूचना सेवा प्रकृति प्रयत्न अन्तर्भिन्न एवं परिशुद्ध विविधता प्रकार शैक्षिक पाठ्यक्रम एवं पाठ्य वर्णन व्यावसायिक अवसर-व्यावसायिक प्रशिक्षण सामाजिक आर्थिक सूचना पूर्णता एवं संकलन विधि प्राप्य उपयोजन सेवा प्रकृति-वैयक्तिक एकान्त अवस्था गोपनीयता वैयक्तिक सेवा प्रकार शैक्षिक पाठ्यक्रम शैक्षिक कुशलताएं वैयक्तिक सामाजिक समस्याएं परन्तु कठिनाइयां आर्थिक प्रश्न प्राप्य एवं आवश्यक तत्व नियोजन सेवा प्रकृति समाहारी एवं सेवाओं का परिणाम सहयोगी विकासात्मक प्रकार शैक्षिक कार्यक्रम शैक्षिक कठिनाइयां विज्ञापन प्रशिक्षण पाठ्येतर क्रियाएं व्यावसाय प्रवेश साक्षात्कार की तैयारी प्राप्य तथा आवश्यक तत्व उपागम वर्तनीय एवं न्यूनतम आर्थिक अल्पकालीन कार्य-व्यवस्था अनुवर्ती सेवाएं प्रकृति आशय सहयोगी समाहारी विश्वसनीय एवं वैध प्रकार व्यक्ति का अनुगमन निर्देशन सेवाओं का अनुवर्तन प्राप्य एवं आवश्यक तत्व नेतृत्व सहयोग एवं व्यवस्था वर्तनीय सहायता निर्देशन सेवाओं की भारत में सम्भावनाएं प्रशासनीय अभिवृत्तियां का प्रशिक्षण एवं व्यवस्था न्यूनतम स्वरूप उपसंहारात्मक कथन।)

इस पुस्तक के आरम्भ से ही जिस तथ्य पर बारम्बार बल दिया जा रहा है वह है निर्देशन के नूतन क्षेत्र की असंदिग्ध प्रकार्यात्मकता। निर्देशन का प्राथमिक परिचय तथा विकासात्मक स्वरूप प्रस्तुत करते समय ही हम कह चुके हैं कि वर्तमान विकासमान विषय-नेताओं की सैद्धान्तिक मान्यताओं को एक व्यावहारिक रूप प्रदान करने हेतु ही निर्देशन का नवीन विधान आधुनिक युग में प्रवर्तन हुआ है। प्रस्तुत

अध्याय तथा इससे अनुवर्ती अध्यायों में अधिकार निर्देशन के प्रकार्यात्मक पक्ष का विवेचन किया जाएगा। इस अध्याय में निर्देशन सेवाओं से सम्बन्धित सामग्री प्रस्तुत की जाएगी।

मूलभूत अभिग्रहण

किसी भी क्षेत्र में व्यावहारिक कार्य करने के कतिपय मूल अभिग्रहण होते हैं। या तो एक अत्यन्त बृहद् दृष्टिकोण से प्रथम तीन अध्यायों के समस्त विवेचनों को ही निर्देशन कार्य के सैद्धान्तिक अभिग्रहणों के रूप में देखा जा सकता है। किन्तु अध्याय के इस अंश का उद्देश्य कुछ अधिक विशिष्ट है। जनतन्त्र की कतिपय ऐसी आस्थाओं के परिप्रेक्ष्य में विद्यार्थी, शिक्षक, माता-पिता तथा समाज के बारे जो हमारी विभिन्न धारणाएं बने गए सामान्यतः होता हैं। उनके सम्बन्ध में अपनी मूल मान्यताएं प्रस्तुत करते हुए निर्देशन सेवाओं के स्वरूप सम्बन्धी कुछ आधारभूत अभ्युपगमों का विवेचन यहाँ किया जाएगा। प्रत्येक अभ्युपगम का प्रस्तुतीकरण निर्देशन सेवाओं से सम्बन्धित करके किया जाएगा। आशा है कि इस प्रकार पृष्ठभूमि में निर्देशन सेवाओं का परिचय पाठकों के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकेगा।

(१) वर्तमान विद्यार्थी की वैयक्तिक अपेक्षाएं

जनतन्त्र में स्वीकृत शिक्षा दर्शन के अनुसार आज के विद्यार्थी से समाज कुछ वैयक्तिक गुणों की अपेक्षा करता है। वस्तुतः एक सफल व्यक्ति के रूप में प्रभावपूर्ण एवं सन्तोषप्रद जीवनयापन कर सकने हेतु व्यक्ति में इस प्रकार के गुण होना आवश्यक होता है। इनमें से कुछ प्रमुख वांछनीय गुणों की ओर संक्षिप्त रूप में पाठकों का ध्यान आकर्षित किया जा रहा है।

(क) स्वयं निश्चय कर सकने की क्षमता

जनतन्त्र का प्रथम लक्षण है वैयक्तिक अधिकारों का समुचित आदर। इन अधिकारों में से भी जो अधिकार व्यक्ति के लिए सबसे अधिक महत्त्व रखता है वह है अपने विविधपक्षीय जीवन सम्बन्धी विभिन्न निश्चय स्वयं करने की स्वतन्त्रता। दूसरों द्वारा व्यक्ति पर थोपे गए निश्चयों का न तो व्यक्ति के लिए कोई मूल्य रहता है न उसकी उनमें आवश्यक आस्था हो पाती है। जब इस आवश्यक आस्था की प्रेरणा ही व्यक्ति के पास नहीं होती तो स्वाभाविक है कि इन निश्चयों को क्रियान्वित करने हेतु उसमें किसी प्रकार का उत्साह भी न रहेगा।

उक्त सामान्य सत्य की स्वीकृति जो सम्बन्धित प्रश्न प्रस्तुत करती है– वह है— ये स्वतन्त्र निश्चय ले सकने की पूर्वावश्यकताएं क्या होनी चाहिए? अथवा वे कौनसी पूर्व-परिस्थितियाँ हैं जो कि व्यक्ति को स्वतन्त्र निश्चय ले सकने में सहायक होती हैं? मूलतः इन पूर्वावश्यकताओं या पूर्व परिस्थितियों को दो दृष्टिकोणों से देखा जा सकता है—व्यक्ति के सन्दर्भ में तथा उसके वातावरण से सम्बन्धित करके। सर्वप्रथम तो व्यक्ति के निश्चय से सम्बन्धित इन दोनों ही पक्षों के विषय में उस

सम्पूर्ण जानकारी होना चाहिए। पर्याप्त समुचित विश्वसनीय तथा वैध सूचनाओं के अभाव में कोई भी निश्चय कुछ अर्थ नहीं रखता। वस्तुतः निश्चय की स्थिति तक पहुँच सकने की शक्ति की मनोदशा ही नहीं बन पाती। सूचनाओं की उपलब्धि के पश्चात् द्वितीय आवश्यकता उत्पन्न होती है—इस सूचना-सामग्री के समुचित अवबोध की। आज के प्रयतिमान युग में कई तथ्यों की प्रकृति ही इतनी तकनीकी होती है कि उनका वास्तविक अर्थ अथवा निमित्त समझना बिना उस तकनीक में निपुण विशेषज्ञ की सहायता के कठिन हो जाता है। उदाहरणार्थ डाक्टर-पोषण से दुखी किसी व्यक्ति का परिश्रम टेस्ट का परिणाम उसके भावी आहार सम्बन्धी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सूचनाएं प्रदान करता है। किन्तु उस सूचना का वाचन निर्वचन वह बिना चिकित्सा विशेषज्ञ की सहायता के नहीं कर सकता। भौतिक क्षेत्र के इस मूर्त उदाहरण के समान मनोवैज्ञानिक-सवेगात्मक क्षेत्र में भी परिस्थितियाँ होती हैं जिनका अवबोध मानव के लिए उसके निश्चयों की पूर्वावश्यकता के रूप में होता है। इनमें से कुछ तो वह अपने ज्ञान की सीमा एवं सीमा के अनुरूप स्वयं समझ सकता है। किन्तु कुछ के समझने का प्रश्न तो दूर रहा उनका संकलन करना भी बिना विशेषज्ञों की सहायता के सम्भव नहीं हो पाता। शैक्षिक जगत का एक सामान्य उदाहरण इस तथ्य को स्पष्ट कर देगा। आठवीं कक्षा में विज्ञान, गणित तथा मानवीय विषयों में लगभग समान उपलब्धि प्राप्त कर एक प्रतिभाशाली छात्र को यह निश्चय लेना है कि वह नवीं कक्षा में कौनसा विषय विशेषता क्षेत्र चयन करे। इस महत्त्वपूर्ण निश्चय के ऊपर उसके समस्त भावी जीवन की दिशा निर्भर करती है। प्रस्तुत उदाहरण में सर्वप्रथम तो उपलब्ध सूचना की अपर्याप्तता उसके निश्चय को सम्भव नहीं कर पा रही है। वस्तुतः दोनों ही विषय-क्षेत्रों की समान उपलब्धि उसके लिए निश्चय ले सकने की सुखमय स्थिति प्रस्तुत करने के स्थान पर दुविधा का दुःख ही उत्पन्न कर रही है। सूचनाओं की सम्पूर्णता के लिए छात्र की अभिक्षमताओं तथा अभिरुचियों के सम्बन्ध में अधिक वस्तु सामग्री की आवश्यकता है—और इन सामग्रियों का मनोवैज्ञानिक उपकरणों द्वारा निश्चित संकलन बिना इस क्षेत्र के विशेषज्ञ की सहायता के सम्भव नहीं है। किन्तु संकलन हो चुकने पर भी ये मनोवैज्ञानिक सूचनाएं अपने आप में व्यक्ति के लिए कोई अर्थ नहीं रख पाएंगी। आवश्यक यह होगा कि पुनः इस क्षेत्र का विशेषज्ञ ही इन सूचनाओं की व्याख्या व्यक्ति के बोध स्तर के अनुरूप करे। तभी वह अपने निश्चय में इनका समुचित उपयोग करके उस निश्चय का वास्तविक रूप में लाभप्रद तथा अर्थपूर्ण बना सकेगा। तो स्पष्ट है कि निश्चय ले सकने की प्राथमिक पूर्वावश्यकताओं पर्याप्त सूचना-सामग्री की उपलब्धि तथा उसका समुचित अवबोध की पूर्ति हेतु विशेषज्ञ की सहायता पूर्वानुमानित है और यह सहायता जैसाकि अध्याय में आगे विस्तारपूर्वक बताया जाएगा निर्देशन विशेषज्ञ की तकनीकी सेवाओं द्वारा ही प्राप्त हो सकती है जिनके प्रशिक्षण का एक प्रमुख अंश मनोविज्ञान से सम्बन्धित होता है।

यहाँ तक तो हमने केवल व्यक्ति से सम्बन्धित सूचनाओं के ही उदाहरण

प्रस्तुत किए गए। किन्तु वैयक्तिक विकास तथा जीवन भर उसके प्रत्येक पग पर व्यक्ति के बढ़ निश्चयों को सम्भव करने के लिए आवश्यक सूचना सामग्री उतनी ही महत्त्वपूर्ण होती है जितनी कि वैयक्तिक सूचनाएं। गत अध्याय में पाठकों के समक्ष एक प्रत्युत्पन्न छात्र का उसके भावी रूप दिया था तथा उसके कुछ सूक्ष्म परीक्षणों द्वारा तथ्य का अधिक स्पष्टीकरण कर दिया। इस प्रतिभाशाली छात्र को अपना विषय-क्षेत्र निश्चित करने के पूर्व अपनी सभी क्षमताओं रुचियों-योग्यताओं के अतिरिक्त भी अन्य कई तथ्यों के सम्बन्ध में जानकार हो जाना चाहिए। उदाहरणार्थ उसे यह मालूम होना चाहिए कि प्रस्तुत विषय-क्षेत्र कौन कौन से व्यवसाय विकल्पों के द्वार उसके लिए उन्मुक्त करता है? तत्पश्चात् इन विभिन्न व्यवसाय विकल्पों का स्वरूप क्या है? उनके साथ इसकी प्रकृति तथा व्यक्ति की सीमाएं, व्यावसायिक परिस्थितियों की अनुकूलताएं, सम्भावित आय के स्तर, सम्पत्तियों की सामाजिक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि आदि घटक व्यवसाय विशेष में प्रविष्ट होने के निश्चय को प्रभावित करते हैं। अतएव विषय विशेष के सम्बन्ध या व्यावसायिक निश्चय के समय के लिए भी उस विषय क्षेत्र की व्यावसायिक सम्भावनाओं तथा उनकी विशेषताओं सम्बन्धी विस्तृत सूचनाएं व्यक्ति के लिए आवश्यक हो जाती हैं।

अब वास्तविक स्थितियों में कुछ अधिक जटिलताएं उक्त परिस्थिति को एक ऐसी जटिलता प्रदान करती हैं जो कि व्यक्ति के स्वतन्त्र निश्चय के सहज हेतु एक प्रयत्न सम्बन्धी पूर्वापेक्षता को और जटिल करती है। आज के विकासमान औद्योगिक समाज में शिक्षा विषयों तथा व्यावसायिक धाराओं का एक से एक सम्बन्ध स्थापित करना सम्भव नहीं है। दोनों ही शाखाओं के क्षेत्र में स्थिति यह है कि उनमें आन्तरिक तथा पारस्परिक व्याप्तियां पाई जाती हैं। कई बार एक ही विषय-क्षेत्र कई व्यावसायिक धाराओं के मार्ग उन्मुक्त करता है और ऐसी परिस्थिति में प्राथमिक निश्चय के समय विभिन्न धाराओं सम्बन्धी कुछ मोटे-मोटे तथ्यों को ध्यान में रखना पड़ता है। इस प्रकार की सभी आवश्यक तत्सम्बन्धी सूचना-सामग्री सकलित हो जाने पर विचारशील छात्रों के सम्मुख जो सबसे बड़ी चुनौती उपस्थित होती है वह है इन सब विविध विकल्पों में स्वयं के लिए सबसे लाभदायक विकल्प का चयन। वर्तमान परिस्थिति में यह चयन सभी प्रकार से सफल बनाने हेतु व्यक्ति में पर्याप्त तीव्र विवेचन बुद्धि की आवश्यकता होती है। सामान्यतः बुद्धि का कुछ अंश तो व्यक्ति प्रकृति से ही साथ लेकर ही जीवन में पदार्पण करता है। किन्तु बुद्धि की प्रकृति सम्बन्धी आधुनिक शोध द्वारा प्राप्त वैज्ञानिक प्रमाण इस बात के उपलब्ध हैं जो सिद्ध करते हैं कि बुद्धि का स्वरूप उसकी विकास सीमा उसके विशिष्ट लक्षण तथा उसकी प्रकार्यात्मक प्रवृत्तियाँ अन्य कई पर्यावरणीय प्रभावों द्वारा अनुशासित होती हैं। इन प्रभावों में जितनी वैज्ञानिक-तकनीकी प्रेरणा व्यक्ति को प्राप्त होगी उतनी ही उसकी बुद्धि की प्रवृत्ति में गुणात्मक तथा परिमाणात्मक दोनों ही प्रकार की उन्नति होने की सम्भावना होगी। इस प्रकार की वैज्ञानिक-तकनीकी प्रेरणा का प्रभाव किसी वैज्ञानिक शिक्षित से ही

प्रसारित हो सकता है और निर्देशन का इतना शुभ इस प्रकार के प्रकाश को लेकर ज्ञान-गगनांगण में अवतीर्ण हुआ है।

(ख) सहयोगिता तथा सहिष्णुता— वैयक्तिक गरिमा की सादर स्वीकृति के समकक्ष अथवा समान्तर ही गणतन्त्र का द्वितीय सहज लक्षण है। अन्तिम चरण तथा मूल्यों में मान्यता। यदि प्रत्येक व्यक्ति को अपने विचार निश्चय तथा कार्य की स्वतन्त्रता देना स्वीकार किया जाता है तो वैयक्तिक विभिन्नता के मनोवैज्ञानिक सत्य के सन्दर्भ में यह पूर्वानुमानित होता है कि गणतान्त्रिक समाज-व्यवस्था में कई प्रकार के विचारों निश्चयों कार्यों का सहअस्तित्व रहेगा। व्यावहारिक सह-अस्तित्व की सफलता के लिए पुनः अनिवार्य हो जाता है कि उस समाज के व्यक्तियों का एक दूसरे के विचारों मूल्यों व्यवहारों के प्रति आदर हो। अपने स्वयं की विचारधारा से कुछ वभिन्य होने पर भी उनमें एक दूसरे के मतों को सम्मान दे सकने की क्षमता होनी अपेक्षित है।

यहां पर एक मौलिक तथ्य का स्पष्टीकरण आवश्यक हो जाता है। एकक व्यक्ति की स्वतन्त्र विचारधारा होने से हमारा यह तात्पर्य नहीं कि इन विविध धाराओं की गतिविधि में केवल विरोधिता ही प्रवाहित हो सकती है। समान मान्यताओं से आबद्ध किसी भी समाज के कतिपय सर्वस्वीकृत आधारभूत मूल्य तो अवश्य होने हैं। यदि ये न हों तो उस जनसमूह को समाज संज्ञा से सम्बोधित भी नहीं किया जा सकता। गणतन्त्र में व्यक्ति के विचार स्वातन्त्र्य का अर्थ यही है कि सूत्र सामाजिक मान्यताओं की वृहत् पृष्ठभूमि में उसकी वैयक्तिक क्षमताओं को अनुकूलतम सम्पुष्टि प्राप्त हो सके। वस्तुतः एक आदर्श गणतन्त्र में सामाजिक उन्नति तथा वैयक्तिक विकास एक-दूसरे के परिपूरक एवं पोषक ही होते हैं। तो यह वह सुखमय स्थिति होगी जहां गंगा-यमुना की पृथकाभासित जलधाराओं के संगम में एक ही सरस्वती की सुषमा प्रवाहित होती रहती है। इसलिए सामान्यतः गणतन्त्र में व्यक्ति-व्यक्ति के हितों में संघर्ष नहीं होना चाहिए।

यदि व्यक्ति-व्यक्ति के हितों में संघर्ष का नहीं होना एक गणतान्त्रिक मान्यता है तो उस मान्यता का तर्कसंगत उपप्रमेय है सहिष्णुता तथा अन्तिम चरण विरोधी अथवा विरोधाभासी आशयों में संघर्ष को अवरोधित करने का सहज तक सहज उपाय है इन आशयों में पारस्परिक परिचय और इस परिचय की व्यावहारिक राह है अन्तिमचरण यह अन्तसंचरण विचारों तथा मान्यताओं मूल्यों का होना चाहिए। अन्तस चरण का उस प्राकृतिक प्रक्रिया में व्यक्ति की सहिष्णुता उसका एक अनिवार्य पूर्वानुमानित गुण बन जाती है। यदि दूसरे के विचारों तथा मूल्यों के प्रति संवेदना तथा सहिष्णुता ही नहीं होगी तो अन्तस चरण का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होगा। कहने का आवश्यकता नहीं कि प्राथमिक परिचय इस पूर्वापेक्षित सहिष्णुता के भी मूल में अवस्थित रहता है।

पारस्परिक परिचय, सहृदयता तथा आनन्द चराव का सम्मिलित सुखद परिणाम प्रकट होता है। सहयोगिता के रूप में व्यक्ति न केवल किसी की गणना का एक साधन मात्र है अपितु जो गणतन्त्र समाज में एक विशिष्ट स्थान धारण करता है। सहयोगिता में समाज में वाह्य सत्ता द्वारा शक्ति के माध्यम से आरोपित किसी यन्त्र के पुर्जों में यान्त्रिक तारतम्य के विपरीत गणनाश्रित सहयोगिता में स्वतःस्फूर्त तथा प्रबुद्ध प्रभाव एक सम्मत कार्यप्रणाली है जिसकी विशेषताएँ सभ्यता सामाजिक कार्यों की सम्मिलित एकता के साथ भी जीवनव्यापी वैविध्य के विभिन्न रूप निखारती रहती है, गुणात्मक अनन्यता को प्रकम्पित करती रहती है। परन्तु शान्ति में उक्त वांछनीय गुणों का विकास इस प्रकार की समुचित भूमिका के आधार पर ही सम्भव हो सकता है और इस प्रकार आधार का सुव्यवस्थित निर्माण निश्चय ही व्यापक सेवाओं के माध्यम से सर्वांगीण व्यक्तिगत विकास के साथ पूर्ण रूप में ही जाता है।

(ग) आत्मनिर्भरता—गणतन्त्र के प्रारम्भिक मन्त्र व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के व्यावहारिकता की मूलभूत आवश्यकता रहती है समाज के प्रत्येक व्यक्ति में आत्मनिर्भरता का अस्तित्व। परावलम्बी व्यक्ति न केवल समाज के ऊपर समस्या के लिए भारस्वरूप होने के कारण उसके समग्र स्वस्थ बल को अपने तक प्रसारित होने से अवरोधित करता है अपितु अपने पाँवों पर खड़े न रह सकने वाले अपंगु की भाँति शारीरिक रचना के अनुरूप ही अपने मानसिक-संवेगात्मक व्यवहार में भी स्वयं का हीन प्रतिमा लिए हुए उस दुर्बल मूर्ति का साक्षात्कार करने में एक सतत संकोच का अनुभव करता रहता है। ऐसे व्यक्ति के द्वारा अन्य व्यक्तियों के प्रति उचित सम्मान की सही भाव से सम्मान भावना न होकर अन्ततः अपने स्वयं की हीनता भावना का प्रत्यक्ष प्रकाशन न करने की एक आतुर चिन्तामात्र होती है। स्वयं के सहारे के लिए एक मूक आह्वान बनकर कई बार वह भाव अपने शासन में अनवरत अव्यक्त ईर्ष्या तथा अपमान भावों को अवगुण्ठित कर सकता है।

यों तो परावलम्बिता के सबसे प्रत्यक्ष स्वरूप का दर्शन तो शारीरिक क्षेत्र में ही होता है और उसके स्थूलतम रूप में उत्पन्न झुंझलाहट आदि अथवा मार के निर्णयपूर्ण दृश्य अभी भी यत्र-तत्र विद्यालयों में सहज ही देखने को मिल जाते हैं जिनका आमूल उन्मूलन हमारे समाहृत गणतन्त्र का एक मूल लक्ष्य है। किन्तु इस शारीरिक आर्थिक परवशता से कई गुनी अधिक भयंकर होती है वह मानसिक हीनता जो कि व्यक्तित्व के अंग को उसके सर्वव्यापक मानसिक क्षेत्रों में एक विषैले कीट की भाँति निरन्तर कुतरती रहती है। इस निराकार कीटाणु के कुचक्र से न तो स्वयं व्यक्ति स्वस्थ हो पाता है न ही वह अन्य व्यक्तियों की दृष्टियों की कोई आन्तरिक सुरभि उत्पन्न कर उसके द्वारा अन्य जीवधारियों को अपनी ओर आकृष्ट कर पाता है। मानसिक स्वस्थ मन क्षेत्र में आत्मपरिपुष्टता का अभाव व्यक्ति

को उसकी आर्थिक सामाजिक सम्पूर्णता की प्राप्ति प्रयत्नों में भी निरन्तर अवरोध उत्पन्न करता रहता है।

सर्वप्रथम शैक्षिक क्षेत्र में एक छात्र को अपने प्रयत्नों के प्रति प्रायः एक अविश्वास सा बना रहता है। कक्षा के अन्य छात्रों से सन्तुष्टि प्राप्त किए बिना वह अपने सामान्य कक्षा-कार्य पर भी विश्वास नहीं कर पाता। बारम्बार दूसरों से पूछने से सर्वप्रथम तो वह साथियों का सम्मान-स्नेह खोता जाता है। तत्पश्चात् शिक्षक द्वारा पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देने में भी उसे एक सतत सन्देह चिन्तित करता रहता है कि कहीं उसका उत्तर त्रुटिपूर्ण न हो। ऐसा प्रभाव वाले व्यक्ति की एक सतत संशयता तथा स्थिति उसे दूसरों पर अवलम्बन के लिए निर्भर रहने के लिए बाध्य करती है। शनैः शनैः यह परावलम्बन उसकी स्वभाव प्रवृत्ति बनाकर उसके व्यक्तित्व तथा जीवन के अन्य पक्षों में भी प्रविष्ट तथा प्रस्फुरित होता रहता है।

प्रश्न उठ सकता है—इस समस्या का निर्देशन सेवा से क्या सम्बन्ध? किन्तु वस्तुतः इस समस्या का तो निर्देशन से मूलभूत सम्बन्ध है। निर्देशन का एक मुख्य उद्देश्य होता है व्यक्ति को अपनी आपकी समस्याएं सुलझा सकने में स्वतन्त्र बनाना। इस स्वातन्त्र्य के लिए व्यक्ति की आत्मनिर्भरता पूर्वानुमानित है। वस्तुतः वैयक्तिक-मानसिक क्षेत्र में यह स्व विश्वास स्वावलम्बन एवं अधिकार प्राप्त कर चुकने में सहायता देने के पश्चात भी निर्देशन की भूमिका का अन्त नहीं होता। क्योंकि इससे आगे बढ़कर आर्थिक-सामाजिक संसार में भी व्यक्ति की आत्म निर्भरता सुनिश्चित कर सकने हेतु निर्देशन कार्यकर्ताओं का उत्तरदायित्व हो जाता है—उपयुक्त व्यावसायिक निर्देशन-सेवाओं का आयोजन। इन सेवाओं के माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति को अपनी क्षमतानुकूल व्यावसायिक अवसरों की सूचनाएं तथा इन व्यवसायों में प्रवेश एवं सफलता प्राप्त करने में निर्देशन प्राप्त हो सकते हैं। इस प्रकार गणतन्त्र की एक ओर मौलिक आवश्यकता आर्थिक सम्पन्नता की भी पूर्ति वैयक्तिक तथा सामाजिक दोनों ही स्तरों पर हो सकती है।

(घ) नागरिक उत्तरदायित्व—एक दृष्टिकोण से तो उक्त-विवेचित सभी गुण स्वतन्त्र चिन्तन की क्षमता सहिष्णुता सहभागिता आत्मनिर्भरता तथा आर्थिक सम्पन्नता व्यक्ति के नागरिक उत्तरदायित्व की व्याख्या के रूप में देखे जा सकते हैं। किन्तु चूंकि नागरिक उत्तरदायित्व को गणतान्त्रिक समाज एवं शिक्षा प्रणाली के एक प्रमुख अभीप्सित व्यवहार-गुण के रूप में स्वीकार किया जाता है इसलिए हमने इसका स्वतन्त्र विवेचन प्रस्तुत करते हुए निर्देशन सेवाओं से इसका सम्बन्ध स्थापन करना समुचित समझा।

नागरिक उत्तरदायित्व पद का यदि शाब्दिक विश्लेषण किया जाय तो विश्लेषण के पश्चात उसके विशेष्य का समझ लेना अधिक सरल होगा। उत्तरदायित्व को यदि उस सिक्के का एक पहलू कहा जाय जिसका कि दूसरा पक्ष 'अधिकार' के रूप में तुल्यरूप हो तथा गणतन्त्र में 'उत्तरदायित्व' तथा 'अधिकार' के स्वरूपों का

समुचित विकास हो सकता है। एक प्रजातन्त्रीय व्यक्ति तथा एक समाज के सदस्य के रूप में अपने अधिकारों के प्रति संवेदना की जागृति निर्देशन के माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति में की जा सकती है। तत्पश्चात् इन अधिकारों की प्राप्ति के मार्ग पर भी विशेषज्ञ कार्यकर्ताओं के निर्देशन द्वारा वे अग्रसर होते हैं। वस्तुतः अपने अधिकारों की प्राप्ति को ही वह एक उत्तरदायित्व के रूप में देख पाता है। उत्तरदायित्वपूर्ण एवं आत्मनिर्भर व्यक्ति बनकर स्वतन्त्र एवं सुखी जीवन निर्वाह कर सकने की अधिकार प्राप्ति द्वारा वह एक सभ्य नागरिक तथा स्वावलम्बी समाज सदस्य बन पाने का सहज लिए उत्तरदायित्व भी निभाता है। यह तो हुई उत्तरदायित्व की बात। अब यदि नागरिक का मूल्यांकन किया जाय तो उसके अन्तर में आत्मविश्वास की शक्ति सन्निहित रहती है जिससे स्वस्थतम विकास तथा अनुकूलतम समायोजन निर्देशन का ध्येय होता है। एक सक्षम व्यक्ति ही कुशल नागरिक की भूमिका को सफलतापूर्वक निभा सकता है।

वर्तमान विद्यार्थी की वर्तमान अपेक्षाओं के उक्त विवेचन से यही सामान्यतः मान लिया जा सकता है कि इन अपेक्षाओं को सम्पादित कर सकने के लिए निर्देशन की नितान्त आवश्यकता है।

(२) **विद्यार्थी अधिकार** — वर्तमान विद्यार्थी से एक प्रजातान्त्रिक समाज की क्या अपेक्षाएं हो सकती हैं इसका हमने विस्तृत रूप से विवेचन किया। किन्तु यह विवेचन पुनः एक मूल प्रश्न हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है। वह है—इन अपेक्षाओं के सन्दर्भ में एक प्रजातान्त्रिक शिक्षा प्रणाली में विद्यार्थी का अधिकार-पक्ष क्या हो सकता है? या यों कहें कि हमारी इन अपेक्षाओं की पूर्ति के लिए इन तरुणों के क्या अधिकार बन होंगे?

अप्रत्यक्ष रूप से कई सम्बन्धित अधिकारों का विवेचन तो हम प्रत्येक अपेक्षा के साथ-साथ कर चुके हैं। उसके अनुवर्तन में अब इन अधिकारों का प्रत्यक्ष रूप से संक्षिप्त समाहार निर्देशन सेवाओं के परिप्रेक्ष्य की एक समुचित पृष्ठभूमि प्रस्तुत कर सकेगा।

हमने प्रारम्भ में ही इस बात पर बल दिया था कि प्रजातान्त्रिक शिक्षा प्रणाली में दीक्षित प्रत्येक व्यक्ति से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने विविध निश्चय स्वतन्त्रतापूर्वक ले सके। आज के संकटपूर्ण युग में इस प्रकार के निश्चय ले सकने के लिए व्यक्ति में विवेचक बुद्धि का होना अनिवार्य है। किन्तु बुद्धि में विवेचक शक्ति का अस्तित्व ही तभी आवश्यक तथा सम्भव होगा जबकि व्यक्ति के पास विविध प्रकार की सूचनाएं उपलब्ध हों। ये सूचनाएं एक व्यक्ति तथा उसके समूचे पर्यावरण से सम्बन्धित निर्देशन के व्यावसायिक कार्यकर्ता द्वारा ही उपलब्ध की जा सकती हैं।

सूचनाओं की उपलब्धि के पश्चात् भी किस प्रकार के वातावरण में निश्चय लिए जाते हैं यह भी एक महत्वपूर्ण प्रश्न हो जाता है। सामान्यतः वातावरण में

निर्धारित योजनाओं तथा अनुज्ञात्मक पर्यावरण में निर्मित आयोजनाओं का न केवल स्वरूप भिन्न होता है अपितु उनके व्यावहारीकरण की विधाओं में भी पर्याप्त भेद प्रविष्ट हो जाता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि गणतांत्रिक शिक्षा प्रणाली एवं समाज योजना के अन्तर्गत विद्यार्थी से जिन निश्चयों की अपेक्षा होती है उसके लिए ऐसे अनुज्ञात्मक पर्यावरण की प्राप्ति होनी चाहिए जिसमें उसे दी गई सहायता किसी भी प्रकार के आदेशों निदेशों द्वारा अनुबंधित न हो।

इस प्रकार के उन्मुक्त पर्यावरण में समुचित सूचनाओं के सन्दर्भ में स्वतन्त्र निश्चय के चुकने पर प्रश्न उठता है इन निश्चयों को कार्यान्वित करने का। आज के युग की वर्तमान सङ्कुलता के परिप्रेक्ष्य में यदि यह कहा जाए कि अपनी सुनिर्धारित योजनाओं के वास्तवीकरण में भी विद्यार्थी को कई अनपेक्षित पेचीदगियों का सामना करना पड़ता है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। नवीन मार्ग पर विश्वासपूर्वक अपने प्राथमिक चरण जमा सकने में सहायता प्राप्त करना उसका अधिकार है। एक बार उस मार्ग से कुछ परिचय प्राप्त कर चुकने पर फिर उस पर सफलतापूर्वक अग्रसर होने की अपेक्षा हम उससे व्यावसायिक रूप में कर सकते हैं। किन्तु अपने निर्धारित मार्ग पर चलते चलते अपने व्यक्तिगत विकास तथा पर्यावरणीय परिवर्तनों के साथ साथ कई प्रश्न उसके सम्मुख उपस्थित हो सकते हैं। सबसे स्वाभाविक प्रश्न जो उसके मन में उसकी प्रत्येक क्रिया के पश्चात उत्पन्न हो सकते हैं वे हैं— मैंने कितना अच्छा किया? — क्या मैंने जो किया वह करना था? क्या मैंने जो चुना उससे अधिक उपयुक्त विकल्प भी मेरे लिए कोई था? आदि। किसी भी सजग उत्तरदायी तथा विवेकयुक्त गणतांत्रिक नागरिक के मन में इस प्रकार की जिज्ञासाओं की जागृति यदि एक सराहनीय वास्तविकता है तो इस प्रकार की उलझनों के मध्य अपना निज मार्ग का विश्वस्त शमन प्राप्त करने में व्यावसायिक सहायता पाना भी उसका गणतांत्रिक अधिकार है। आवश्यकता है कि न केवल वह स्वयं अपनी क्रियाओं का अपने निश्चय एवं अपनी योजनाओं के सन्दर्भ में सतत मूल्यांकन करता रहे अपितु विशेषज्ञ अनुकलन द्वारा उसे अपने निजी मूल्यांकन की विश्वसनीयता-वैधता के सम्बन्ध में आश्वासन प्राप्त होता रहे।

(३) प्रसारात्मक सेवाएं — उक्त अनुच्छेद में वर्णित आज के विद्यार्थी से हमारी अपेक्षाएं तथा इन अपेक्षाओं के सन्दर्भ में उनके अधिकार—एक मूलभूत आवश्यकता की ओर बारम्बार हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं—और वह आवश्यकता है—प्रसारात्मक स्तर पर चिन्तन एवं कार्य की। यदि कथित अपेक्षाओं में हमारी आस्था है—और यदि विवेचित अधिकारों में हमारा विश्वास है तो इस आस्था विश्वास का सहज अनुवर्ती सत्य यह होना चाहिए कि इन अपेक्षाओं अधिकारों को स्वरूप देने हेतु हम एक वास्तविक कार्यक्रम की ही योजना बनानी होगी। और वह वास्तविक कार्यक्रम निर्दिष्ट सेवाओं के सुव्यवस्थित रूप में ही आयोजित हो सकता है। हो सकता है कि विभिन्न प्रकार की अपेक्षाओं को सम्भावित कर सकने तथा विभिन्न अधिकारों को

परिपूर्ण करने के लिए एक से अधिक प्रकार की सेवाओं का आयोजन करना पड़े। किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि ये सेवाएं एक दूसरे से किसी प्रकार की असम्बन्धित होंगी। वस्तुतः अभी तक तो विश्लेषण इस प्रकार के कार्यक्रम की एक सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत करते हुए उसकी प्रकार्यात्मक आवश्यकता पर बल दे रहा है। निर्देशन क्षेत्र में यदि हमारा विश्वास है तो उस विश्वास का व्यावहारीकरण निर्देशन कार्यक्रम के रूप में होना चाहिए।

इस प्रकार के निर्देशन कार्यक्रम के अन्तर्गत किस प्रकार की प्रकार्यात्मक सेवाएं व्यक्ति को दी जा सकती हैं इसका विवेचन अध्याय के द्वितीय भाग में प्रस्तुत किया जा रहा है।

निर्देशन सेवाएं आदर्श स्वरूप

निर्देशन के क्षेत्र में हमारी आस्था इसी बात की हो रही है कि निर्देशन की व्यावहारिक प्रकृति एवं कार्यात्मकता उद्देश्यों के अनुरूप ही उसकी सम्भावित वास्तविक क्रियाओं की सफल सम्पन्नता हेतु एक ऐसी प्रकार्यात्मक योजना बनाई जावे जिसमें विभिन्न क्रियाओं के स्पष्ट स्वरूप, कार्यकर्ताओं की भूमिकाएं, क्षमताएं तथा प्रशिक्षण, विविध कार्मिकों के पारस्परिक सम्बन्ध आदि व्यावहारिक बिन्दुओं की एक विशद रूपरेखा सबको एक रूप में सौंपी जावे। अध्याय के प्रस्तुत भाग में कतिपय प्रकार्यात्मक सेवाओं के रूप में विभिन्न निर्देशन क्रियाओं के स्वरूप का स्पष्टीकरण किया जावेगा। कार्यकर्ताओं की भूमिका, पारस्परिक सम्बन्ध आदि के विषय में अगले अध्याय में विवेचन प्रस्तुत किया जाएगा।

इस स्वरूप के प्रस्तुतीकरण के पूर्व निम्न बिन्दुओं को ध्यान में रखना समीचीन होगा —

(१) कतिपय मूलभूत बिन्दु

—प्रत्येक सेवा का प्रस्तुतीकरण एक परिपक्व निर्देशन के स्वीकृत उद्देश्यों के सन्दर्भ में किया जाएगा।

—प्रस्तुत सेवाओं के अन्तर्गत समाए गए कार्य तथा क्रियाविधियाँ एक आदर्श ढाँचे के स्वरूप में प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

—जैसा कि पूर्व भाग में भी कहा गया है— केवल सैद्धान्तिक स्पष्टीकरण हेतु ही प्रत्येक सेवा का विवेचन स्वतन्त्र रूप से प्रस्तुत किया जा रहा है। वास्तविक व्यवहार में इन्हें एक दूसरे की पृथकता में देखना सम्भव नहीं है।

(२) अवबोध व्याख्या एवं आदर्श रूप —

उक्त मूलगत विन्दुओं के आधार पर निर्देशन कार्यक्रम एवं सेवाओं की एक सुबोध्य व्याख्या निर्देशन के स्वीकृत दर्शन के सन्दर्भ में निम्न प्रकार से प्रस्तुत की जा सकती है —

निर्देशन का व्यावहारिक कार्यक्रम कतिपय अन्तःसम्बन्धित प्रकार्यात्मक सेवाओं का एक सुसंगठित प्रतिरूप है। इस कार्यक्रम में परस्पराश्रयी क्रियाओं के माध्यम से यह

प्रयत्न किया जाता है कि एक व्यक्ति को उसके स्वयं तथा उसके पर्यावरण की वैध विश्वसनीय सूचनाओं के सन्दर्भ में उत्तरदायित्वपूर्ण निश्चय स्वतन्त्रतापूर्वक ले सकने में समुचित सहायता मिल सके। तत्पश्चात् इन निश्चयों के अनुरूप कार्य अवसरों की प्राप्ति एवं सम्पन्नता की राह पर कदम उठा सकने में आवश्यक निर्देशन प्राप्त हो सके। और अन्त में अपने उद्देश्यों, कार्यों, कार्य विधाओं आदि के सतत् अनुवर्तन एवं वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन में तकनीकी सहयोग की उपलब्धि हो सके।

निर्देशन कार्यक्रम की उक्त कथित सम्भाव्य अपेक्षाओं की यदि और भी अग्रिम व्याख्या की जाए तो कतिपय प्रक्रियात्मक सूत्रकों का स्वरूप स्पष्टरूपेण उभरता दृष्टिगोचर होता है। अतः कहा जा सकता है कि वर्णित अपेक्षाओं के अभिप्रेत अर्थों का वर्णन निम्न प्रकार से हो सकता है —

आवश्यक है कि—

—प्रत्येक व्यक्ति के सम्बन्ध में वैध तथा विश्वसनीय सूचनाओं का विविध संकलन किया जावे।

—प्रत्येक व्यक्ति के समूचे पर्यावरण के विषय में वास्तविक तथ्यों का संग्रह किया जावे।

—प्रत्येक व्यक्ति को उक्त सूचनाओं के सन्दर्भ में उत्तरदायित्वपूर्ण निश्चय ले सकने में व्यावसायिक सहायता मिल सकने की योजना बताई जावे।

—इन निश्चयों को क्रियान्वित करने से सम्बन्धित प्रारम्भिक सहायता का समुचित प्रबन्ध किया जावे।

—अपने निश्चयों एवं कार्यों का मूल्यांकन कर सकने के प्रति सजगता उत्पन्न की जावे तथा उसे वस्तुनिष्ठतापूर्वक कर सकने में व्यावसायिक सहायता की प्रायोजना की जावे।

उक्त व्यावहारिक व्याख्याओं के आधार पर पांच आवश्यक सेवाओं का स्वरूप स्पष्ट होता है। प्रत्येक सेवा के अन्तर्गत कार्यविधाओं के अनुरूप हम उनका नामकरण निम्न प्रकार से कर सकते हैं।

—वैयक्तिक सूचना सेवा

—पर्यावरणीय सूचना-सेवा

—उपबोधन सेवा

—नियोजन सेवा

—अनुवर्तन सेवा

इस नामकरण के अनुवर्तन में प्रत्येक सेवा का विशद वर्णन उसके स्वरूप, उद्देश्य, तार्किक कार्यविधाएं आदि के सन्दर्भ में करना समीचीन होगा। इस प्रकार के विश्लेषणात्मक वर्णन का विशिष्ट उद्देश्य यही है कि शालाओं में निर्देशन के प्रक्रियात्मक आयोजना को इन व्यावहारिक सूत्रकों द्वारा समुचित कार्य प्रेरणाएं प्राप्त हो सकें। हमारी शिक्षा प्रणाली में आदर्श की कई वांछनीय बातें प्राय

सद्धान्तिक स्वाकृति एव सपुष्टि क स्तर पर ही छोड़ दी जाती हैं। इसका एक कारण यह भी होता है कि वे स्वीकृत क्रियाओं को वास्तविक रूप से करने के प्रकार्यात्मक दृष्टि प्राप्त न होने से वह सद्धान्तिक रूप से मान्यता देने पर भी कार्यों को वह कार्यान्वित करने का अवसर नहीं प्राप्त होती। इसलिए शिक्षा योजनाओं का इस सार्थकता को ध्यान म रखकर ही हमने प्रस्तुत पुस्तक के सबसे अधिक भाग को प्रकार्यात्मक रूप म ही अभिव्यक्ति प्रदान किया है।

( ) पेशा तथा या विशद वर्णन

(क) व्यावसायिक सूचना तथा नियोजन कार्यक्रम का यह एक प्रमुख पूर्वाग्रह होता है कि विभिन्न क्षेत्र के समस्त नागरिकों के लिए नाना विषयक समस्त सूचनाएँ शिक्षा के कार्यक्रम का तथा सम्बद्ध व्याख्या के लिए अधिक महत्त्वपूर्ण बना सकती हैं। इन सूचनाओं के आधार पर पाठ्यचर्या निर्माता तथा सम्बद्ध प्रकाशकों का वर्ग प्रायोजन कर सकते हैं जिनका समुचित शिक्षा उपलब्ध विषयक सहज अध्ययन विधाओं के माध्यम से करते हैं। इनसे संस्थाओं को समस्त ज्ञान परिवर्तनशील व्यवस्थाओं का अन्तिम लक्ष्य भी इससे का सहयोगात्मक विकास-सम्पादन हो होता है। अतएव उनके लिए भी छात्रों की प्रकृति व आवश्यकता से सम्बन्धित सामग्री उनके समक्ष कार्य करने का मूल आधार बनता है। अतएव यदि इन वस्तुओं का परिचालित नहीं होती कि निर्देशन कार्यक्रम की प्रथम तथा सर्वाधिक सूचना भली-भाँति प्रकार से समय शिक्षा नेत के लिए व्यावसायिक सन्दर्भ को इस सामग्री प्रदान करती है।

(ख) प्रकृति—वस्तुत व्यावसायिक सूचना किसी भी व्यक्ति के सम्बन्ध म वे सूचनाएँ व्यक्ति के अन्य व्यक्तियों से उसका स्पष्ट विभेद करता है। इन सूचनाओं के आधार पर ही हम उस व्यक्ति को एक मानव परिवार के रूप म पहचान पाते हैं। एक व्यक्तित्व के रूप म उसकी क्षमताओं सीमितताओं का निरूपण करते हैं इस निरूपण के आधार पर हम स्वाधीन वय प्रणालियाँ कर सकते हैं तथा उसके ज्ञान के विविध आयामों में उस सफल निर्देशन कर सकते हैं।

व्यक्तिगत सूचना तथा का क्षेत्र सभी प्रकार की सूचनाओं से सम्बन्धित होता है। अधिक विशिष्ट रूप से कहा जा सकता है कि यह कहा गया है जिसके द्वारा एक छात्र के सम्बन्ध म आवश्यक सूचनाओं का संकलन विश्लेषण वर्गीकरण निर्धारण विवेचन तथा प्रयोग निश्चित क्रम म किया जाता है। प्रकार्यात्मक दृष्टि से यहाँ पर आवश्यक विश्लेषण की व्याख्या समीचीन होगी। यों तो साधारण रूप से किसी भी व्यक्ति के सम्बन्ध म कई प्रकार की सूचनाएँ हो सकती हैं। इन समस्त सूचना समूह को संकलित करने म अपनी ऊर्जा निर्दिष्ट करने की अपेक्षा अधि निर्देशन कार्यकर्ता का यह विदित है कि उसके कार्य के लिए किस प्रकार का सूचनाएँ आवश्यक हो सकता है तो वह उन्हें ही एकत्रित करने म अपनी शक्तियाँ लगायेगा।

हमारी दृष्टि से सूचनाओं की आवश्यकता निम्न प्रकार के कुछ माप दण्डों द्वारा निर्णीत की जा सकती है—

सगतता—सवप्रथम तो यह देखने की आवश्यकता है कि जो सूचना सकलित की जा रही है वह निर्देशन काय से सम्बन्धित है या नहीं। यद्यपि अत्यन्त ही विस्तृत दृष्टिकोण से तो व्यक्ति सम्बन्धी प्रत्येक सूचना महत्वपूर्ण है तथा निर्देशन काय से उसका किसी न किसी प्रकार सम्बन्ध भी होता है। किन्तु यहाँ सगतता का मूल्य निर्धारण हम व्यावहारिकता की कसौटी पर करना चाहिये। प्रत्यक्ष एवं निकट रूप से जो सूचनाएँ निर्देशन के विशिष्ट काय से सम्बन्धित हों उन्हें ही एकत्रित करने से निर्देशन काय अनावश्यक उलझनों में अवरुद्ध न होकर दक्षतापूर्वक चलाया जा सकता है। इस प्रकार की सूचनाओं के कुछ प्रत्यक्ष उदाहरण अगले अंश में दे दिये जायेंगे।

उपयोगिता—निर्देशन काय के लिये आवश्यक सूचनाओं का द्वितीय माप दण्ड है—उनकी व्यावहारिक उपादेयता। किसी व्यक्ति के प्रविपन मासिक स्पन्दनों की सूचना उसकी शारीरिक स्थिति का अत्यन्त सगत सूचना होते हुए भी निर्देशन काय में लिए उसका कोई प्रत्यक्ष उपयोगिता नहीं है। अतएव ऐसी सूचनाओं का संग्रह करना भी निर्देशन कार्यकर्ता का माप आवश्यक नहीं। निर्देशन उपयोगिता के कुछ कार्यकारी मापदण्ड निर्देशन के विशिष्ट निर्धारित उद्देश्यों के सन्दर्भ में निश्चित कर लिए जा सकते हैं। सामान्यत ये मापदण्ड व्यक्ति के समायोजन व विकास से सम्बन्धित आयामों से जुड़े जा सकते हैं।

विकासात्मक—निर्देशन काय का प्रथम स्मरणीय बिन्दु यह है कि यह काय विकासमान गत्यात्मक जीवित-स्पन्दित व्यक्तियों के साथ किया जाता है। इस तथ्य का स्वाभाविक उपसिद्धान्त यह होता है कि इन व्यक्तियों के सम्बन्ध में सकलित सूचनाओं के स्वरूप में भी विकासात्मकता हो। किसी भी व्यक्ति के सम्बन्ध में एक ही समय पर एकत्रित की हुई सूचना उसके किसी भी पक्ष अथवा पक्षों की तत्कालीन स्थिति पर ही कुछ प्रकाश डाल सकती है। वह उसके विकासमान व्यक्तित्व को वाछनीय रूप से आलोकित करने में असमर्थ ही सिद्ध होगी।

व्यापकता—व्यक्तित्व के विकासमान स्वरूप के साथ ही उसकी समाहारी व्यापकता उसकी प्रकृति को यह जटिलता प्रदान करता है जो कि निर्देशन कार्मिको के बहुमुखी उत्तरदायित्वों को वास्तविक चुनौती होता है। किसी भी व्यक्ति का व्यक्तित्व ऐसे अन्तसम्बन्धित पक्षों का सुसगठित प्रतिरूप होता है कि इन विविध पक्षों में से किसी एक या किन्हीं एक दो आयामों सम्बन्धी सूचनाएँ व्यक्तित्व के सम्पूर्ण चित्र के अवबोध के बिना अधूरी ही रह जाती हैं। कहावत है कि सूचना का कतई नहीं होना अपर्याप्त सूचना होने से अधिक श्रेयस्कर है। तदनुसार वैज्ञानिक शोधकार्य का भी एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्धान्त है—अपर्याप्त सूचनाओं के आधार पर कोई निष्कर्ष न निकालिये। हमारे पुरातन नीति ग्रन्थों में भी यह

स्पष्ट तथ्य है कि जहाँ प्रश्न तथा विज्ञापन-लेखों की किसी न किसी सीमा तक आवश्यकता है वहाँ पर उन सब दुर्लभ्य व्यक्ति का पता भी स्पष्ट नहीं हो सकता। कहने का तात्पर्य यह कि यदि व्यक्ति के बहु आयामी विकासशील व्यक्तित्व के साथ कार्य करना है तो उसके सम्बन्ध की सूचनाओं में व्यापकता होना अनिवार्य है।

विश्वसनीयता—विश्वसनीयता विहीन सूचनाओं के बल पर कार्य करना वैसा ही है जैसा कि दुर्बल नींव पर भवन निर्माण करना। वस्तुतः अविश्वसनीय सूचनाओं के आधार पर व्यक्ति को सम्मति देने की आयोजनाएँ बनाने में उसे लाभ से अधिक हानि ही पहुँचाने की आशंका रहता है। इसलिये आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है कि संचित सूचना पत्रकों में कोई भी सूचना समाहित करने के पूर्व उसकी विश्वसनीयता के सम्बन्ध में पूर्णरूपेण आश्वस्तता प्राप्त करली जावे।

(आ) **प्रकार**—निर्देशन कार्य के लिये आवश्यक सूचनाओं की प्रकृति के सम्बन्ध में अनुमान में ही नहीं सूचनाओं के वास्तविक प्रकारों पर भी विचार कर लेना तर्कसंगत रहेगा। संक्षेप में निम्नलिखित सूचनाओं के प्रकार एक तालिका के रूप में प्रस्तुत किए जा रहे हैं। वा प्रत्येक कार्यकर्ता अपनी आवश्यकता व्यक्ति की प्रकृति तथा समस्या के स्वरूप के अनुसार संग्रह की जाने वाली सूचनाओं के प्रकार निर्धारित कर सकता है।

व्यक्तिविषयिक दत्त—तात्कालिक अभिलेखों में वैयक्तिक सूचना सेवा का मूल आधार ही व्यक्तिगत अभिलेख होता है। तदनुसार इस सेवा द्वारा प्राथमिक सूचना संग्रह यह होनी चाहिये कि एक छात्र को एक अलग व्यक्ति के रूप में परिचित कर सके। अर्थात् यह सूचना उसी के सम्बन्ध में होनी चाहिये उसके साथ प्रक्रिया में विभिन्न करते हुए। विशिष्ट रूप से यह सूचना उसके नाम वय आदि सम्बन्धी तथ्यों में सम्मिलित होगी क्योंकि उसे एक पहचान प्रदान करते हैं जिनके द्वारा हम उसे अन्य छात्रों के समूह में से पहिचान कर अलग कर सकते हैं।

सूचनाओं के इसी प्रकार के अन्तर्गत हम व्यक्ति की कौटुम्बिक पृष्ठभूमि सम्बन्धी तथ्यों को भी समाहित कर सकते हैं। उसके कुटुम्ब के सदस्यों की संख्या उसकी सामाजिक आर्थिक स्थिति आदि ऐसे तथ्य हैं जो व्यक्ति के विकास समायोजन में सम्बन्धित होने के कारण निर्देशन कार्य में सहायक होते हैं।

शरीर एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी दत्त—यों तो शरीर के आकार प्रकार सम्बन्धी कई तथ्यों का भी निर्धारण रूप में ही अवलोकन तथा कर लिया जा सकता है। यहाँ पर इन्हें स्वास्थ्य के साथ रखने का तात्पर्य यही है कि व्यावहारिक निर्देशन कार्य का प्रत्यक्ष सम्बन्ध शरीर के आकार प्रकार रूप रंग आदि से अधिक उसकी निरोगिता स्वस्थता तथा विकास परिपक्वता से होता है। तो इस आधार के अन्तर्गत सर्वप्रथम हम व्यक्ति के सामान्य स्वास्थ्य सम्बन्धी सूचनाएँ एकत्र करना चाहेंगे। इसमें भी किसी सम्बन्धित रोगों की मौजूदा स्थिति के विषय में

निर्देशन कार्यकर्ता का विशेष रुचि होगी। इसलिये नेत्र तथा कान सम्बन्धी कोई भी गत अथवा वर्तमान खामियों के सम्बन्ध में वह अवगत हो जाना चाहेगा जिससे छात्र की शैक्षिक उपलब्धियों पर उसके सम्भावित प्रभाव को वह सही प्रकार से आँक सके।

इन प्राथमिक सूचनाओं के अनन्तर अन्य पर व्यक्ति के सम्पूर्ण स्वास्थ्य की सामान्य स्थिति के सम्बन्ध में तथ्य संगृहीत किये जा सकते हैं। कई बार बाल्यकाल की कतिपय व्याधियाँ—यथा चेचक पोलियो आदि व्यक्ति के कतिपय शारीरिक मानसिक अंगों को सदैव के लिये दुर्बल करते हुए उसके शारीरिक मानसिक-संवेगात्मक पक्षों को एक निरन्तर हीनता प्रदान कर देती हैं। मात्र के शारीरिक विक्षेपण तथा संवेगात्मक हीनता के कई कारण इस प्रकार की दुर्घटनाओं में अवगुंठित रहते हैं। इसलिये शरीर तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी सूचनाओं के अन्तर्गत व्यक्ति के जीवन में इस प्रकार के तथ्यों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिये।

शैक्षिक उपलब्धियाँ—एक अत्यन्त विस्तृत दृष्टिकोण से तो यह कहा जा सकता है कि छात्र निर्देशन के समूचे कार्यक्रम का अन्तिम उद्देश्य ही है उसकी शैक्षिक उपलब्धि। किन्तु व्यक्ति के विकासमान तथा बहुआयामी स्वरूप के सन्दर्भ में यह भी स्मरणीय तथ्य है कि न तो उसकी वर्तमान शैक्षिक उपलब्धि उसकी विगत उपलब्धियों से असम्बद्ध कोई स्वतन्त्र स्थिति है न ही व्यक्ति के अन्य जीवन पक्षों से असम्पृक्त कोई एकाकी परिणाम। इसलिये उसकी इस दिशा में उपलब्धि का विवरण भी एक विकासात्मक रूप से होना चाहिये। यह तो हुई सामान्य छात्र की साधारण उपलब्धियों की बात। किन्तु इसके अतिरिक्त छात्रों की विशेष उपलब्धियाँ भी होती हैं। किसी छात्र का कक्षा में प्रथम आना कभी पदक प्राप्त करना समाचार पत्रों में उसका नाम आना आदि उसकी शैक्षिक कथा की ऐसी महत्वपूर्ण घटनाएँ हैं जो कि उसकी विकासमान शैक्षिक उपलब्धियों को नानारूपेण प्रभावित करती हैं। अतएव इनके सम्बन्ध में उपलब्ध सूचनाएँ एकत्र करना निर्देशन कार्य के लिये संगत सिद्ध होगा।

यह तो हुई शुद्धरूपेण शैक्षिक उपलब्धि की बात। किन्तु हमारे आधुनिक शैक्षिक चिन्तन के अनुसार विद्यार्थी की शाला उपलब्धियाँ उसके पाठ्यक्रम से ही सम्बन्धित नहीं होतीं। आज की शिक्षा योजना में पाठ्येतर या पाठ्य सहगामी प्रवृत्तियों का उतना ही महत्त्व है जितना कि पाठ्य विषयों का। अतएव यह आवश्यक होगा कि छात्र के पाठ्यसहगामी पुरस्कारों-पारितोषिकों-समादरों आदि का भी उसी प्रकार व्यवस्थित एवम् विकासमान लेखा हो जिस प्रकार कि शुद्ध पाठ्यक्रम सम्बन्धी उपलब्धियों का। व्यक्तित्व की बहुआयामी प्रकृति तथा ऐसी प्रकृति के विकास-संवर्धन के स्वीकृत शैक्षिक ध्येय के परिप्रेक्ष्य में पाठ्य-सहगामी प्रवृत्तियों रुचियों विरुचियों सम्बन्धी सूचनाओं को भी वैयक्तिक अनुसूची में समाहित करना अनिवार्य होगा।

मनोवैज्ञानिक दत्त — ऊपर दिए गए व्यक्ति प्रकार से सम्बन्धित सभी सूचनाओं को मनोवैज्ञानिक दत्त के नाम से सम्बोधित किया जा सकता है। किन्तु यहाँ पर इस शीर्षक का विशिष्ट तात्पर्य उस सूचना सामग्री से है जो कि सामान्यतः वस्तुनिष्ठ एवं प्रमापित परीक्षणों के प्रयोग से एकत्रित की जाती है। कई मनोवैज्ञानिक रचनाएँ तथा व्यक्तित्व परख उपायों के माध्यम से संचित सूचना सामग्री की मनोवैज्ञानिक दत्त से न केवल समुचित सम्पुष्टि होती है अपितु आवश्यक सत्यापन भी हो जाता है। साधारणतः यह सूचना व्यक्ति के बौद्धिक मानसिक स्तर, उसकी विशिष्ट योग्यताएँ, उसके व्यक्तित्व परिलक्षण, उसकी व्यावसायिक रुचियाँ आदि के सम्बन्ध में होती है।

यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि इस प्रकार की सूचना सामग्री केवल मानकीकृत मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के माध्यम से ही एकत्रित की जावे यह आवश्यक नहीं। विशेषकर शाला निर्देशन के क्षेत्र में तो कई सरल विधियाँ हैं जिनका निर्देशक प्रयोग शिक्षक एवं उपबोधक स्वयं सफलतापूर्वक कर सकता है। इनके द्वारा अधिक सरल एवं मनोवैज्ञानिक ढंग से छात्रों की रुचियों, मनोवृत्तियों, व्यक्तित्व लक्षणों आदि के सम्बन्ध में व्यवस्थित रूप से दत्तसंकलन किया जा सकता है। निर्देशन कार्य के इन अपेक्षाकृत सरल उपकरणों के विषय में पञ्चम अध्याय में विस्तारपूर्वक विवेचन किया जाएगा।

जीवन सम्बन्धी आकांक्षाएँ — यद्यपि यह अनुसूची का अंग मात्र, निर्देशन की दृष्टि से अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है। वास्तव में व्यक्ति की आकांक्षाओं के ज्ञान के सन्दर्भ में ही उसके लिए उचित निर्देशन की योजना बनाई जा सकती है।

आकांक्षा सम्बन्धी सूचनाओं के साथ प्राथमिक निर्देशन कार्य के अतिरिक्त भी इन सूचनाओं के साथ महत्त्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक पक्ष है। किसी भी व्यक्ति द्वारा अपने स्वयं की बहुमुखी आकांक्षाओं का चयन किसी अंश मनोवैज्ञानिक के लिए व्यक्ति की आकांक्षा-स्तर का एक प्रमुख सूचक होता है। आधुनिक मनोविज्ञान ने व्यक्ति के आकांक्षा-स्तर का अन्य कई घटकों—यथा उपलब्धि अभिप्रेरणा और व्यावसायिक रुचियाँ, व्यक्तित्व समायोजन से सहसम्बन्ध स्थापित किया है। अतएव निर्देशन कार्यकर्ता के लिए इस विषय की सूचना प्राप्त कर लेना व्यक्ति को समुचित सहायता देने के दृष्टिकोण से अत्यन्त लाभदायक होगा।

व्यक्ति की आकांक्षा स्तर विषयक सूचनाएँ एक और दृष्टिकोण से निर्देशन कार्यकर्ता के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं। जब निर्देशक के पास व्यक्ति की मानसिक क्षमता, बौद्धिक स्तर तथा विशिष्ट अभिक्षमताओं सम्बन्धी वस्तुनिष्ठ सामग्री संकलित रहती है तो वह व्यक्ति की आकांक्षा-स्तरों का परीक्षण उसकी मनोवैज्ञानिक सम्भावनाओं के परिप्रेक्ष्य में कर सकता है। इस परीक्षण से उसे पर्याप्त व्यक्ति की वास्तविकता अभिविन्यास (reality orientation) के सम्बन्ध में उपयोगी सूचना उपलब्ध हो सकती है। अपने भाव के विषय में व्यक्ति के अतिरंजन

तथा सवयूरल दोनों हो क सम्बन्ध म ज्ञान प्राप्त करके वह उसे उचित निर्देशन प्रदान कर सकता है। अपने जीवन के विविध पक्षों म अपनी क्षमताओं के अनुरूप व्यक्ति वास्तविक उद्देश्य निर्धारित कर सकने की दिशा म वह व्यक्ति की युक्तियुक्त रूप से सहायता देने म समर्थ हो सकता है।

(ड) सूचना स्रोत एवं सकलन विधि सर्वप्रथम सूचना प्राप्त करने का प्रथम स्रोत हो सकता है स्वयं व्यक्ति। उससे प्रारम्भिक अभिनिर्धारण देने से लेकर उसके आरक्षा-स्तर तथा भविष्य योजना सम्बन्धी ऐसी कोई भी सूचना नहीं जिसमें प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से हम उससे सम्पर्क स्थापित न करना पड़े। सामान्य वार्तालाप विशिष्ट अभिमुख-सवाद प्रायोगिक प्रश्नसमूह समाजमितीय साधन मानकीकृत परीक्षण स्वजीवनियाँ आदि ऐसी कई प्रविधियाँ हैं जिनके उपयोग द्वारा स्वयं छात्र से ही उसके सम्बन्ध म अनेक उपयोगी सूचनाएं प्राप्त हो सकती हैं। जैसा कि कह चुके हैं इन सकलन विधियों के विषय म विस्तृत विवेचन तो अध्याय 6 म प्रस्तुत किया जाएगा किन्तु यहाँ पर इनका व्यक्ति के एक प्राथमिक सूचना-स्रोत होने के सदर्भ म उल्लेख मात्र किया जा रहा है।

स्वयं व्यक्ति से प्राप्त उसके सम्बन्ध की सूचनाएं अत्यन्त मूल्यवान होते हुए भी उसकी व्यक्तिनिष्ठता से अछूती नहीं रह सकती। अतएव आवश्यक हो जाता है कि इन सूचनाओं का सम्पुष्टिकरण तथा सत्यापन अन्य स्रोतों से प्राप्त सूचनाओं द्वारा किया जाए।

एक शाला निर्देशक के लिए स्वयं छात्र के पश्चात उससे सम्बन्धित सूचनाओं का महत्त्वपूर्ण तथा विश्वसनीय स्रोत होता है उस छात्र के शिक्षक। यदि यह भी कह दिया जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि समस्त शाला परिवार म छात्र के शिक्षकों से अधिक कोई भी उसके विषय म नहीं जानता। प्राचार्य प्रशासक को तो छात्र सम्बन्धी सूचनाएं शिक्षकों के माध्यम से ही प्राप्त होती हैं। इसलिए छात्र सम्बन्धी उनका ज्ञान अप्रत्यक्ष होता है। सच पूछा जाए तो स्वयं शाला-परामर्शक को भी छात्र के निरन्तर सम्पर्क म आने के इतने अवसर नहीं मिलते जितने कि छात्र के शिक्षकों को। इन शिक्षकों म भी मूल कक्षा अध्यापक (यदि इसका प्रावधान हो) का स्थान इस दृष्टि से केन्द्रीय महत्त्व का है क्योंकि वह छात्र के सबसे अधिक सम्पर्क म आता है। वह छात्र की सामान्य रुचि अभिवृत्ति उपलब्धि तथा व्यक्तित्व गुणों के सम्बन्ध म महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रदान कर सकता है। इसके अतिरिक्त वे अध्यापक अथवा कार्यकर्ता जो कि पाठ्यसहगामी क्रियाओं का उत्तरदायित्व वहन करते हैं वे छात्र के पाठ्येतर पक्ष म निर्देशक को कई मूल्यवान सूचनाएं दे सकते हैं। ये सूचनाएं उनके द्वारा प्राप्त छात्र के चित्र को एक वाञ्छनीय सम्पूर्णता एवं व्यापकता प्रदान करती हैं।

शिक्षकों से इस प्रकार की सूचनाएं संगृहीत करने के लिए निर्देशक कई सरल प्रविधियाँ प्रयुक्त कर सकता है—जिनमें अभिमुख सवाद आयोजित प्रपत्र

प्रश्न समूह, चिह्नांक सूचियाँ, मूल्य निर्धारण मापनियाँ आदि हैं। इनकी चर्चा भी अध्याय ६ में की जायेगी।

आज के शिक्षा-युग में यह एक स्वीकृत सत्य है कि यद्यपि छात्र के सर्वांगीण विकास के लिये शाला का एक विशिष्ट उत्तरदायित्व होता है फिर भी उसके जीवन का अधिक समय तो शाला की चहारदीवारी के बाहर के घटकों से प्रभावित होता है। इन समस्त प्रभावों में उसका घर एक ऐसा महत्त्वपूर्ण स्थल है जिसकी उसके व्यक्तित्व निर्माण में निर्णायक भूमिका रहती है। यदि छात्र के बहुमुखी व्यक्तित्व के सम्बन्ध में सर्वाधिक मौलिक सूचनाएँ कहीं से प्राप्त हो सकती हैं तो वह छात्र का घर ही है। इसके अतिरिक्त यही एक स्थल है जहाँ उसके सम्बन्ध की विकासात्मक सूचनाओं का सही स्वरूप रहता है। अतएव छात्र के अभिभावक को व्यक्तिक सूचना संग्रह हेतु प्राथमिक महत्त्वपूर्ण सूचना-स्रोत माना जा सकता है।

किन्तु इनसे सूचनाएँ प्राप्त करने में जो कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं वह है इनसे सम्पर्क स्थापित करने की। विशेषकर भारत में यह कठिनाई अशिक्षित अभिभावकों के असहयोगी व्यवहारों द्वारा द्विगुणी हो जाती है। किसी तरह शाला में शिक्षक-अभिभावक सम्मेलनों अथवा छात्र के गृह भ्रमण के माध्यम से यदि सम्पर्क भी स्थापित कर लिया जाता है तो प्रश्न उठता है सूचना-संकलन की प्रविधियों का। इन प्रपत्र चिह्नांक सूचियों अथवा अन्य सूचना-पत्रों की पूर्ति करने की ओर इनकी एक सहज विरक्ति होने के कारण एक सामान्य भारतीय शिक्षक तथा उपबोधक का तो साधारण बातचीत की प्रचलित विधा से ही आवश्यक सूचनाएँ एकत्रित करने का विकल्प उपयुक्त रहता है। इस उद्देश्य से बातचीत करने हेतु उनमें प्रारंभिक सामंजस्य स्थापन कौशल्य होना आवश्यक है। कई माता-पिता अपने बालकों के सम्बन्ध की कतिपय ऐसी शारीरिक संवेगात्मक सूचनाएँ देना नहीं चाहते क्योंकि उनके विचारानुसार बालक के पक्ष में न हों। किन्तु यह हर्ष का विषय है कि हमारे देश के अभिभावक इस दिशा में अधिकाधिक प्रबुद्धता प्राप्त करते हुए शाला को उत्तरोत्तर सहयोग प्रदान करते आ रहे हैं।

शिक्षकगण तथा अभिभावकों से अधिक समीपता से एक और समूह छात्र को जानता है—और वह है उसका समवयस्क मित्र-मण्डल। इस समूह से छात्र विषयक सूचनाएँ एकत्र करने हेतु प्रत्यक्ष संवाद अथवा स्पष्ट प्रश्नावलियाँ अत्यन्त ही अनुपयुक्त साधन होते हैं। सामान्यतः किशोरावस्था में समूह भावना इतनी दृढ़ होती है कि इस वय के छात्र एक दूसरे के विषय में कुछ भी बताना समूह नियम का अतिक्रमण समझते हैं। वस्तुतः छात्र विषयक जिस प्रकार की सूचनाएँ इस स्रोत से प्राप्त हो सकती हैं वे उसकी समाजमितीय स्थिति से ही सम्बन्धित होती हैं। अतएव इन सूचनाओं का संकलन भी केवल समाजमितीय साधनों द्वारा करना ही

समीचीन होता है। इन साधनों के परीक्षण एकांक जितने कम पारम्परिक होंगे उतनी ही अधिक विश्वसनीय सूचनाएं सम सामूहिकों में प्राप्त होने की सम्भावना होगी।

(ई) प्रारूप प्रत्येक सेवा के सम्बन्ध में एक संगत प्रश्न उठता है कि उसका आयोजन प्रारूप क्या हो तथा इस आयोजन की प्रभाविता किन घटकों से सम्बन्धित हो सकती है? विशेष कर किसी भी इस कार्यक्रम पर प्रभावात्मक दृष्टिकोण से विचार करते समय तो यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बिन्दु हो जाता है। इसलिए प्रत्येक निर्देशन सेवा के विवेचन में इस पक्ष पर भी विचार किया जाएगा।

वैयक्तिक सूचनाओं का सतत अनुरक्षित करने में एक सम्भावित भ्रान्ति का निवारण वांछनीय है वह भ्रान्ति हो सकती है इस अनुसूची की हमारी शालाओं में प्रचलित संचयी वृत्त के साथ एकरूपता स्थापित कर देने की।

वस्तुतः शाला का संचयी वृत्त अपेक्षाकृत अधिक व्यापक वैयक्तिक अनुसूची का एक महत्वपूर्ण अंश हो सकता है। संचयी वृत्त में सामान्यतः छात्र की शैक्षिक उपलब्धियों सम्बन्धी सूचनाओं का लेखा रखा जाता है। यह वृत्त अधिकतर शिक्षकों के कार्य से सम्बन्धित होता है तथा उन्हीं द्वारा इसकी प्रविष्टियाँ भी की जाती हैं। निर्देशन उपयोजन के कार्य हेतु आयोजित वैयक्तिक सूचना-सेवा द्वारा जो अनुसूची तैयार की जाती है उसमें संचयी वृत्त में निहित छात्र की शैक्षिक उपलब्धियों के अतिरिक्त अन्य कई प्रकार की बहुमूल्य सूचनाएं सम्मिलित रहती हैं जिनका वर्णन पूर्व अनुच्छेदों में किया जा चुका है।

विषय वस्तु की उक्त व्यापकता के अतिरिक्त संचयी वृत्त तथा वैयक्तिक अनुसूची में एक प्रमुख भेद रहता है उनके बाह्य प्रारूप के सम्बन्ध में। सामान्यतः शाला के संचयी वृत्त का प्रारूप सुरक्षित होता है जिसमें समय-समय पर निश्चित खानों की पूर्ति कर दी जाती है। इसके विपरीत आदर्शरूपेण वैयक्तिक अनुसूची एक ऐसी असुरक्षित मुक्त मिसिल है जिसमें समय-समय पर आवश्यकतानुसार विभिन्न प्रकार की सूचनाओं के प्रपत्र रख दिए जाते हैं। एक औसत मिसिल की भांति इन प्रपत्रों को बद्ध करने की भी आवश्यकता नहीं। इनमें से किसी एक या एक से अधिक किन्हीं सम्बन्धित प्रपत्रों का यदि निर्देशन कार्यकर्ता अध्ययन करना चाहें तो उन्हें सरलतापूर्वक निकाला तथा रखा जा सकता है। इस अनुसूची में पूर्व वर्णित सभी प्रकार की सूचनाओं सम्बन्धी प्रपत्र रहते हैं।

निर्देशन कार्यक्रम की दृष्टि से आवश्यक है कि प्रत्येक छात्र की अनन्य मिसिल हो जिसमें उसी से विशिष्टरूपेण सम्बन्धित विभिन्न प्रपत्रों का विकासात्मक संकलन होता जाए। व्यवस्थित मिसिलीकरण तथा उपयोग की सरलता की दृष्टि से इन मिसिलों के बाह्य पृष्ठ पर विद्यार्थियों के नाम लिख कर उन्हें वर्णानुसार जमा देना चाहिए।

कई वैयक्तिक सूचनाओं की गोपनीय प्रकृति के सम्बन्ध में यह भी आवश्यक है कि ये निश्चित ताले में रखी जावें। इसके लिए उपबोधक के कक्ष में कैबिनेट फाइल ड्राअर की व्यवस्था होना आवश्यक है। इन ड्राअर में मिसिलें लगाते समय वर्णानुसार संकेत चिह्न लगा देने से कोई भी मिसिल तत्काल निकालने में समय नष्ट नहीं होता।

इस सेवा के उक्त प्रकार के प्रारम्भ तथा व्यवस्था के लिए शाला में कतिपय पूर्वावश्यकताएँ वांछनीय हैं। सर्वप्रथम तो इसके निर्माण, अनुरक्षण तथा उचित उपयोग हेतु एक प्रबल प्रेरणा अनिवार्य है। एकाकी निर्देशक या उपबोधक के लिए न तो यह सम्भाव्य है न वांछनीय ही कि वह इन समस्त प्रकार की सूचनाओं को स्वयं ही संचित करे।

दूसरे इस प्रकार की सेवा व्यवस्था के लिए शाला में कुछ न्यूनतम बजट की भी आवश्यकता होगी। बिना निश्चित धनराशि के इस सेवा की न्यूनतम आवश्यकताओं यथा कागज, फार्म, कैबिनेट, ताले आदि की भी व्यवस्था होना असम्भव है।

तीसरे इस सेवा में निहित कई छोटे मोटे बाबूगीरी कृत्यों के लिए इसी प्रकार कुछ सहायता का प्रावधान होना वांछनीय है। यदि प्रशिक्षित उपबोधक की शक्तियाँ भी इस प्रकार के सभी कृत्यों में नष्ट होती रहेंगी तो उपबोधक के अन्य तकनीकी तथा उच्चस्तरीय कृत्यों के लिए उसके पास पर्याप्त शक्ति नहीं रह पायेगी। अतएव इस दिशा में यदि शाला को कुछ आर्थिक क्षेत्र में व्यय भी करना पड़े तो वस्तुतः मानवीय शक्तियों के क्षेत्र में यह मूल्यवान बचत ही सिद्ध होगी।

(स) पर्यावरणीय सूचना-सेवा — पर्यावरणीय परिस्थितियों, अवसरों, क्षेत्रों तथा आवश्यकताओं से सम्बन्धित सूचनाएँ जब तक निर्देशन कार्मिकों को उपलब्ध नहीं होतीं तब तक व्यक्ति को उसके भावी जीवन में अधिकतम समायोजन हेतु सही मात्रा में सहायता देना उनके लिए सम्भव नहीं हो सकता। वैयक्तिक सूचना सेवा के माध्यम से व्यक्ति विषयक जो कुछ सामग्री एकत्रित की जाती है वह अपने आप में समस्त पूर्णताएँ होते हुए भी निर्देशन कार्यकर्ताओं को अपने काम में बहुत आगे नहीं ले जाती। आवश्यकता इस बात की होती है कि इस सामग्री का परीक्षण उपयुक्त पर्यावरणीय वास्तविकताओं के सन्दर्भ में किया जाए। तभी व्यक्ति इस सम्पूर्ण चित्र के आधार पर अपने भावी जीवन विषयक महत्त्वपूर्ण निश्चय एवं सुनिश्चित रूप में ले सकता है। इन्हीं मूलभूत मान्यताओं के आधार पर निर्देशन कार्यक्रम की द्वितीय महत्त्वपूर्ण सेवा पर्यावरणीय सूचना सेवा का आयोजन किया जाता है[3]।

यह एक प्रकार से तो कहा जा सकता है कि वैयक्तिक सूचना की तुलना में इसका आकार अधिक विस्तृत होता है। कई पर्यावरणीय पक्षों में कई व्यक्ति एक साथ रह सकते हैं। किन्तु प्रत्येक के लिए वे पक्ष उसकी अपनी वैयक्तिक विशिष्टता के

सन्दर्भ में स्वतन्त्र महत्त्व रखते हैं। इसलिए छात्र की दृष्टि से कई जानकारी के लिए एक साथ संकलन कर लेने पर या निर्वचन के समय इन सूचनाओं की एक व्यक्ति के लिए विभिन्न प्रकार से व्याख्या करनी पड़ती है।

(ग) प्रकृति—जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व के अनेक अन्तःसम्बन्धित पक्ष होते हैं उसी प्रकार उसका पर्यावरण भी कई प्रयोजनपरक आयामों का एक सुसम्बन्धित सातत्य होता है। अतः पर्यावरणीय सूचना सेवा में उसके जीवन के विविध क्षेत्रों से सम्बन्धित सूचनाओं का विवेचन संकलन किया जाता है। वस्तुतः इसमें ऐसी प्रत्येक सूचना का समाहित किया जाता है जिसकी आवश्यकता छात्र को अपने पर्यावरणगत अवसरों के मूल्यांकन हेतु पड़ सकती है। निर्देशन इतिहास के प्रारम्भिक काल में इस सेवा को व्यावसायिक सूचना-सेवा अथवा व्यावसायिक सूचना सेवा के नाम से सम्बोधित किया जाता था। निर्देशन के परिवर्तित सन्दर्भ तथा निर्देशन कार्य की विकासमान परिधि के अनुरूप इस सेवा का कार्य विस्तार भी होता गया तथा व्यवसाय की संकुचित सीमा को पार करके व्यक्ति जीवन के नाना पक्षों को स्पर्श करने लगा। किन्तु यह कहा जा सकता है कि विशेष कर शैक्षिक कार्य के दृष्टिकोण से तो इस सेवा के अन्तर्गत अधिकांश में शैक्षिक-व्यावसायिक सूचनाएँ ही समाहित करना पर्याप्त होगा।

संक्षेप में हम इस सेवा की प्रकृति के वर्णन में कह सकते हैं कि इस सेवा के माध्यम से व्यक्ति के बहुपक्षीय पर्यावरण के सम्बन्ध में आवश्यक एवं उपलब्ध सूचनाओं का संकलन, वर्गीकरण, विश्लेषण, संश्लेषीकरण, निर्वचन एवं उपयोग विधिवत् रूप से किया जाता है। पूर्व प्रकाशात्मक दृष्टिकोण में हमने जिस प्रकार वैयक्तिक सूचनाओं की वाङ्‌मय प्रकृति के सम्बन्ध में कतिपय विशिष्ट मापदण्ड निर्धारित कर दिये थे उसी प्रकार इस सेवा के अन्तर्गत प्राप्त की जाने वाली सूचनाओं के सम्बन्ध में भी कर लेना उपयुक्त रहेगा। हमारे विचारानुसार निम्न प्रकार के सार रूप इन सूचनाओं के सम्बन्ध में हमारे निर्देशक बिन्दु हो सकते हैं —

प्रथमतः— आज की प्रगति से आज के विकासमान युग में यदि कोई भी सूचना अद्यतन नहीं हुई तो उसका कोई विशेष मूल्य नहीं रहेगा। उक्त तथ्य की पुष्टि में कतिपय अनुभूत वास्तविकताएँ स्पष्ट उदाहरणों के रूप में प्रस्तुत की जा सकती हैं। प्रत्येक आधुनिक शिक्षक यह जानता है कि यदि वह अपना विषय-वस्तु तथा अध्यापन-विधियाँ समय-समय पर नवीनतम शोधों से अवगत नहीं है तो वह स्वभावतः रूप से अपने विद्यार्थियों तक अपने विषय सम्बन्धी सूचनाओं का संचारण नहीं कर सकता। विभिन्न व्यावसायिक प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों के विषय में तो यह कई बार नवीन कार्यकर्ताओं की कटु अनुभूतियों के रूप में सिद्ध हो चुका है कि अपने प्रशिक्षण काल की अवधि पूर्ण करके जब तक वे अपने वास्तविक कार्य क्षेत्र में प्रविष्ट होते हैं तब तक तो उनका अर्जित ज्ञान-कौशल्य अनावश्यक हो जाता है। आधुनिक काल की औद्योगिक प्रगतियों के परिप्रेक्ष्य में यह बात तकनीकी क्षेत्र की सूचनाओं

पर भी पूर्णरूपेण लागू होती है। यों विभिन्न प्रकार की सूचनाओं का महत्त्व एवं तुलनात्मक अध्ययन तथा व्यक्तिगत दृष्टिकोण से आँका जा सकता है। किन्तु निर्देशन के प्रत्येक काम में दो प्रकार की सूचनाएं ही सबसे अधिक लाभप्रद सिद्ध होती हैं।

असत्यता एवं परिशुद्धता—यदि सूचना में परिशुद्धता न हो तो वास्तविक कार्याधार के रूप में उसका कोई भी अर्थ नहीं। यह तो एक सामान्य अनुभव का विषय है कि त्रुटिपूर्ण सूचनाएं होने से तो सूचनाएं बिल्कुल नहीं होना अधिक अच्छा होता है। जब एक सूचना के अभाव में व्यक्ति कम से कम अपना सामान्य ज्ञान प्रयुक्त करने के लिए स्वतन्त्र रहता है, तब सूचना के नाम पर कोई त्रुटिपूर्ण सूचना उपलब्ध हो जाने पर अपनी कार्यदिशा में अनिर्णीत होकर भ्रामक मार्ग पर अकारण विचार बन सकता है। किशोरावस्था की संवेदनशील अवस्था में इस प्रकार की परिस्थिति के संभावित परिणाम और भी अधिक भयंकर हो सकते हैं। इसलिए आवश्यक है कि आज निर्देशन कार्य में विशेषकर इस संक्रामक स्थिति द्वारा छात्रों की उनकी भविष्य-योजनाओं हेतु संकलित सूचना-सामग्री की परिशुद्धता के विषय में उत्तम सावधानी अवश्य बरती जाए।

कभी-कभी सामग्री के संकलन अथवा वितरण में सूचनादाता के निजी अभिमतों या अभिरुचि भी सूचना की परिशुद्धता को विपरीत रूप में प्रभावित कर सकती है। इस प्रभाव के सम्बन्ध में इसे सदा केवल अनुभूति ही रहना भी आवश्यक नहीं। अपने पूर्वानुभवों से अनुप्राणित कई अध्यापक, अभिभावक भी कभी-कभी व्यक्तियों की सम्पूर्ण कार्यक्षमताओं को प्रभावित कर सकते हैं। उदाहरणार्थ किसी विशिष्ट प्रकार के व्यवसाय विशेष विषय अथवा सम्बन्ध अनुभवों के मूल परिणाम स्वरूप व्यक्ति उन व्यवसायों के प्रति उनके मन में निज अनुकूल अथवा प्रतिकूल रुचियाँ बना लेता है। इस प्रकार का दृष्टिकोण चाहे—चाहे वह अभिभावक एवं वरिष्ठ मित्र हो अथवा निर्देशन कार्यक्रम का सूचनादाता, इन व्यवसायों के सम्बन्ध में किशोर को अभिव्यक्ति करते समय अनजाने ही अपनी मनोवृत्तियों को भी अपनी सूचनाओं के साथ घुले मिले रूप में संयुक्त करके उन तक अनायास ही प्रेषित कर देता है। आवश्यक नहीं कि यह प्रेषण के माध्यम स्पष्ट शब्दों लिखित के रूप में ही हो। कई बार व्यक्ति के बोल-स्वरूप भावात्मक अभिव्यक्तियों तथा अप्रत्यक्ष उदाहरण-माध्यम के द्वारा ये अभिव्यक्तियाँ स्पष्ट कही हुई बात के साथ-साथ अनायास ही प्रेषित हो जाती हैं। एक अनुभवी वयस्क के पास से आने के कारण किशोर इन सबको सहज ही आस्थापूर्वक ग्रहण कर लेते हैं—और ये उनके सम्भावित निश्चयों तथा भावी जीवन को सदैव प्रभावित करती रहती हैं।

इसलिए यह नितान्त ही आवश्यक है कि निर्देशन कार्यक्रम की सूचना सेवाओं का उत्तरदायित्व निभाने वाले कार्मिक यथासम्भव व्यक्तिगत पूर्वाग्रहों से मुक्त हों। यों तो प्रत्येक व्यक्ति के लिए अपने कुछ निजी अभिमत होना एक मनोवैज्ञानिक सत्य है। किन्तु किसी

वैज्ञानिक सेवाओं के उत्तरदायित्व का भार-वहन करते समय यह अनिवार्य हो जाता है कि अपनी निजी व्यक्तिनिष्ठता से परे होकर क्रमिक वैज्ञानिक वस्तुनिष्ठता को सर्वोपरि महत्त्व प्रदान करें तथा अपने व्यक्तिगत अभिमतों द्वारा सूचना संकलन अथवा सूचना सम्प्रेषण की क्रियाओं को भ्रष्ट न होने दें।

सूचना की परिशुद्धता का सम्बन्ध एक सीमा तक हमारे पूर्व-चर्चित बिन्दु अद्यतनता से भी है। हो सकता है कि सूचना विशेष किन्हीं विशिष्ट कालों अथवा परिस्थितियों में परिशुद्ध हो किन्तु वर्तमान स्थिति में वह त्रुटिपूर्ण है। इस तथ्य के दो बड़े प्रत्यक्ष उदाहरण नित्य परिवर्तित एवं सतत परिवर्तनशील हमारी वर्तमान पाठ्यचर्याओं सम्बन्धी सूचनाओं में प्राप्त हो सकते हैं। आज के विद्यार्थी के लिए सर्वप्रथम अपने पाठ्यक्रम में अंकित विविध विषय विकल्प विभिन्न नियम तथा बहु-पक्षीय सूचनाओं को ध्यानपूर्वक पढ़ लेना अनिवार्य हो गया है क्योंकि वर्तमान काल में इनमें निरन्तर परिवर्तन होने की सम्भावना रहती है। शाला परामर्शक को भी इन परिवर्तनशील आवश्यकताओं से सतत अभिज्ञता बनाए रखना चाहिए अन्यथा उसके द्वारा अपरिशुद्ध सूचना संचारण की आशंका रहेगी।

उक्त विवेचन इन सूचनाओं की विकासात्मक प्रकृति की ओर भी इंगित करता है। जो भी व्यक्ति के वर्तमान निश्चय लेने हेतु अद्यतनतम सामग्री का महत्त्व ही सर्वाधिक हो सकता है—तथापि व्यावसायिक क्षेत्रों में विकासात्मक सूचनाओं का भी अपना एक महत्त्व होता है। परिवर्तित व्यावसायिक धाराएं कई बार उनके भविष्य परिवर्तन की दिशाओं के वांछनीय संकेत दे सकती हैं जो कि व्यक्ति के व्यवसाय-सम्बन्धी निश्चयों में एक सीमा तक सहायक हो सकते हैं।

विविधता : निर्देशन कार्य हेतु संकलित की जाने वाली सूचना सामग्री की प्रकृति में हम वांछनीय विविधता को कई दृष्टिकोणों से परख कर सकते हैं। सर्वप्रथम तथा सबसे विस्तृत आयाम तो होता है व्यक्ति के निजी व्यक्तित्व तथा सम्बन्धित पर्यावरण की बहुविधता के सन्दर्भ में। व्यक्ति का कोई भी निश्चय उसके जीवन के किसी एक ही पक्ष से विशिष्टरूपेण स्थित होने पर भी उसके अन्य जीवन पक्षों से भी अविच्छिन्न रूपेण सम्बन्धित होता है। अतएव उसे निर्देशन देते समय उसके सम्मुख उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व एवं समूचे पर्यावरण की एक सुसंगठित तस्वीर प्रस्तुत करने की आवश्यकता होती है। स्पष्ट है कि यह तस्वीर उसके नाना पक्षों सम्बन्धी विविध प्रकार की सूचनाओं द्वारा ही बनाई जा सकती है। जहाँ उसके शैक्षिक निश्चयों को विभिन्न सम्बन्धित व्यावसायिक अवसरों की पृष्ठभूमि में सजाना होता है वहाँ उसके व्यवसाय सम्बन्धी निश्चयों में उसके शारीरिक गुण मनोवैज्ञानिक लक्षण शैक्षिक उपलब्धियों तथा प्रशिक्षण—पृष्ठभूमियों को झलकाना होता है। अतएव विविधता का प्रथम प्रकार व्यक्तित्व के नाना पक्षों तथा पर्यावरण के विभिन्न आयामों में देखा जा सकता है।

विविधता का द्वितीय प्रकार होता है जीवन में उपलब्ध विभिन्न अवसरों के

रूप में । शैक्षिक व्यावसायिक अवसरों के विषय में यह निर्देशन-कार्मिक की अभिज्ञता सीमा जितनी अधिक विस्तृत होगा उतना ही विभिन्न विकल्प वह व्यक्ति के सम्मुख न केवल प्रस्तुत कर सकेगा अपितु उनका अपनी क्षमताओं के सन्दर्भ में तुलनात्मक मूल्यांकन कर सकने में सहायता प्रदान कर सकेगा ।

व्यक्ति का वैयक्तिक क्षमताओं की ज्ञान सूचनाओं की एक तीसरी प्रकार की विभिन्नता की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करती है— और वह है व्यक्ति-व्यक्ति के बीच की क्षमताओं के अन्तर से सम्बन्धित । वैयक्तिक विभिन्नताओं का मनोविज्ञान हमें बताता है कि कोई भी दो व्यक्तियों की कुशलता क्षमता आशा अपेक्षा आकांक्षा प्रायः अनुभव या वि म एकरूपता नहीं होती । अतएव विभिन्न व्यक्तियों के साथ काम करने वाले निर्देशन कार्मिक के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि उसके पास विभिन्न वैयक्तिक लक्षणों में संरक्षा का सकने वाला विविध सूचना भण्डार हो ।

यहाँ तक तो हुई अधिकांश में व्यक्ति के लक्षणों से सम्बन्धित बात । किन्तु जब विशेषकर नवयुवकों के उच्चस्तरीय शिक्षा अथवा व्यवसाय प्रवेश का प्रश्न आता है वहाँ पर इस शिक्षा के विशिष्ट लक्षणों तथा नूतन व्यावसायिक जीवन के विविध पक्षों से सम्बन्धित सूचना भी इन सब कार्यकर्ताओं का दे सकना आवश्यक हो जाता है । जीवन के इन अग्रिम पक्षों में व्यक्ति से अधिक स्वतन्त्र व्यवहार की अपेक्षा की जाती है । आत्मविश्वासपूर्वक इस प्रकार का व्यवहार कर सकने के लिए आवश्यक है कि वह अपने नियोक्ता व जीवन में भली प्रकार परिचित हो । अतएव निर्देशन कार्मिक की सकलित सूचना सामग्री में भी इतनी सम्पूर्णता होनी चाहिए जो कि व्यक्ति जीवन के इस स्तर से सम्बन्धित पर्यावरणीय पक्षों के विविध अंगों एव लक्षणों को अपने में समाहित कर सके ।

(आ) प्रकार उक्त अनुच्छेद में पर्यावरणीय सूचना सामग्री की प्रकृति के विस्तृत विवेचन में उसमें समाविष्ट की जाने वाली सूचनाओं के प्रकारों के सम्बन्ध में विविध झलकियाँ पाठकों को प्राप्त हो चुकी हैं । उन्हें समेट कर एक स्थल पर अब निम्नांकित बिन्दुओं के अन्तर्गत क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है —

शैक्षिक पाठ्यक्रम एवं पाठ्यचर्याएं

ज्ञान विशिष्टीकरण के वर्तमान युग में आज के विद्यार्थी के लिए शैक्षिक पाठ्यक्रमों एवं पाठ्यचर्याओं सम्बन्धी सामग्री का प्रारम्भिक महत्त्व है विशेषकर इसीर देश में जहाँ पर विद्यार्थी शिक्षण ज्ञान की अपेक्षा मौखिक रूप से ही कुछ पाए प्राप्त करने का ही अधिक अभ्यस्त होता है । विषयों के सीमा विस्तार तथा उनसे सम्बन्धित अवसरों की वृद्धि के कारण आधुनिक पाठ्यचर्याओं की संख्या बढ़ती जा रही है । इन सतत परिवर्तनों के सन्दर्भ में पाठ्यक्रमों तथा उनकी आवश्यकताओं सम्बन्धी सूचनाओं का इस सेवा में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है ।

व्यावसायिक अवसर

औद्योगिक-तकनीकी उन्नति, व्यवसायों के विशिष्टीकरण तथा काम कुशलताओं के विभिन्नीकरण ने व्यावसायिक अवसर सम्बन्धी सूचनाओं को इतना अधिक जटिल बना दिया है कि बिना किसी व्यवस्थित विश्लेषण विधि के इस क्षेत्र में सूचना संकलित कर सकना भी एक महती चुनौती है। चूंकि इन सूचनाओं का छात्र के भावी निश्चयों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है इसलिए पर्यावरणीय सूचना-सेवा के माध्यम से इन सूचनाओं का विधिवत संकलन तथा उपयोग होना चाहिए।

व्यावसायिक प्रशिक्षण

किसी भी व्यवसाय में प्रवेश प्राप्ति तथा सफल कार्य की एक महती पूर्वापेक्षा होती है उस व्यवसाय के लिए वांछनीय कुशलताओं-क्षमताओं में विधिवत प्रशिक्षण। वर्तमान व्यवसाय जगत की प्रकृति, उनमें अपेक्षित कुशलताओं का स्वरूप तथा तकनीकी प्रशिक्षण देने वाली संस्थाओं में इतना परिवर्तन एवं विस्तार हुआ है तथा होता जा रहा है कि छात्र तो क्या—वर्तमान शिक्षकों के लिए भी इन बिन्दुओं सम्बन्धी नवीनतम सूचनाएं रख सकना सम्भव नहीं हो पाता। आज के जटिल व्यवसाय युग में भली प्रकार समन्वित हो सकने के लिए छात्र के लिए इन सूचनाओं की आवश्यकता का मूल्यांकन करना है। निर्देशन कार्यक्रम की पर्यावरणीय सूचना सेवा द्वारा छात्रों तथा नव-व्यवसाय प्रवेशकों के लिए इन महती सूचनाओं का संकलन उपयोग करता है।

सामाजिक आर्थिक

किसी भी शैक्षिक पाठ्यक्रम तथा व्यावसायिक क्षेत्र की प्राथमिक जानकारी तो उसकी व्यवसाय आवश्यकताओं तथा कार्यकुशलताओं से सम्बन्धित होती है। इस प्रकार का विषय वस्तु अथवा व्यवसाय-लक्षण सम्बन्धी सूचनाओं का विवरण 'शैक्षिक पाठ्यक्रम' तथा 'व्यावसायिक अवसर' के अन्तर्गत हम कर चुके हैं। किन्तु शिक्षा तथा व्यवसाय क्षेत्रों के इन प्राथमिक परिचयों के अतिरिक्त इनका एक सामाजिक आर्थिक पक्ष भी होता है। किसी भी तकनीकी शैक्षिक पाठ्यक्रम के कारण कतिपय आर्थिक प्रतिबन्ध होते हैं जिनके सम्पूर्ण ज्ञान बिना विद्यार्थी के लिए उनमें प्रवेश प्राप्ति के निश्चय ले सकना कठिन होता है। इसी प्रकार किसी भी व्यवसाय की एक सामाजिक आर्थिक स्थिति होती है। उसमें प्रविष्ट होने के निश्चय को यह परिस्थिति एक बहुत बड़ी सीमा तक अनुशासित करती है। पर्यावरणीय सूचना सेवा में किसी भी पाठ्यक्रम तथा व्यवसाय के सम्बन्ध में इस प्रकार की सूचनाएं एकत्र करना भी परमावश्यक है। कई बार किन्हीं शैक्षिक पाठ्यक्रमों के अनुशीलन अथवा व्यावसायिक प्रशिक्षण के पालन हेतु आर्थिक छात्रवृत्तियाँ तथा औद्योगिक प्रावधान भी होते हैं। पश्चिम में तो यह एक सामान्य तथ्य है अतएव छात्र सामान्यतः इस प्रकार की सूचनाओं के स्रोत खोजते रहते हैं। किन्तु हमारे देश में यह एक अपेक्षाकृत नवीन विचारधारा होने के कारण इसके सम्बन्ध में भी पर्यावरणीय सूचना सेवा को सजग रहने की आवश्यकता है।

स्रोत सूचना—निर्देशन कार्यक्रम का यह एक आवश्यक अभिग्रहण होता है कि छात्र के लिए व्यावसायिक न तो सभी प्रकार का निर्देशन उनके द्वारा ही लिया जा सकता है न ही केवल उनके माध्यम से उन समस्त प्रकार की वाञ्छनीय सूचनाएँ उपलब्ध हो सकती हैं। किन्तु इस अभिग्रहण के साथ ही निर्देशन-सेवाओं का एक प्रमुख उत्तरदायित्व यह भी होता है कि व्यक्तिगत आवश्यकता के विविध पक्षों में वह छात्र की सूचना के उपयुक्त स्रोतों का पता लगाने में निर्देशित कर सके। शारीरिक रोग, मानसिक व्याधि तथा आर्थिक संकट की कुछ समस्याएँ इस प्रकार की भी होती हैं जिनका निर्देशन कार्यकर्ता प्रत्यक्ष रूप से स्वयं कुछ नहीं कर सकता। किन्तु ऐसी परिस्थितियों में वह छात्र की समस्या के उपयुक्त स्रोतों के सम्बन्ध में सूचना अवश्य दे सकता है। अतएव पर्यावरणीय सूचना सेवा में इस प्रकार के सामाजिक सहायता केन्द्रों के सम्बन्ध में वाञ्छनीय सामग्री का संकलन भी करना आवश्यक होता है। कई बार हमारे किशोर छात्रों को राष्ट्रीय-स्तर, प्रान्तीय-स्तर, जनपदीय स्तर आदि सामाजिक संगठनों के विषय में तथा इनके राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय कार्यों के सम्बन्ध में भी ज्ञान देना होगा। आज के सम्पूर्ण समाज में कई ऐसे संगठनों-संस्थाओं का निर्माण विकास हुआ जा रहा है जिनके द्वारा विभिन्न व्यक्तियों को समय व अनिवार्यतः अथवा विभिन्न दशाओं में विशिष्ट प्रकार की सहायता की जाती है। दुर्भाग्यवश इस प्रकार की सूचनाएँ हमारे अधिकांश अध्यापकों को भी प्राप्त नहीं होती फिर छात्रों का फिर क्या कहा जाय। पर्यावरणीय सूचना सेवा में इस प्रकार की सूचनाओं का एक महत्त्वपूर्ण स्थान रहता है।

(६) सूचना-स्रोत एवं संकलन विधि—पर्यावरणीय सूचनाओं में विभिन्न आयाम एवं स्तर सम्बन्धी सामग्री का संकलन किया जा सकता है। छात्र के निकटतम पर्यावरणीय सूचना-स्तर स्थानीय की स्थिति, आवश्यकता एवं अवसर से लेकर यह सामग्री स्थानीय, प्रान्तीय, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों तक विस्तृत रहती है। वह तो छात्र स्वयं इन स्रोतों तक जाकर पर्यावरण की सूचनाएँ प्राप्त करने में सामान्य रुचि रखता है। किन्तु हमारे विचार से विभिन्न पक्षों तथा विविध स्तरीय पर्यावरणीय सूचनाएँ छात्र को व्यवस्थित रूप में उपलब्ध कराने का उत्तरदायित्व मानना ही होता है और यह कार्य विभिन्न क्रम से आयोजित की निर्देशन सेवाओं के माध्यम से ही किया जा सकता है।

सामान्य रूप से कहा जा सकता है कि सूचना प्राप्ति का प्राथमिक स्रोत होता है सम्बन्धित व्यक्ति, संस्था, अभिकरण अथवा स्थल। यह तो सर्वविदित है कि प्रत्यक्ष बातचीत अथवा व्यवस्थित व्यक्तिगत-संवाद से सूचना अधिक सफल रूप से मौखिक तथा लिखित रूप में प्राप्त हो सकती है। किन्तु यह विधि न केवल समय नष्ट करती है अपितु कई बार व्यावहारिक कठिनाइयों के कारण अव्यावहारिक भी सिद्ध होती है। न तो सारे निर्देशन कार्यकर्ताओं को इतनी सुविधाएँ रहती हैं कि वे प्रत्येक आवश्यक सूचना को प्राप्त करने के लिए सूचना-स्रोतों तक जा सकें न ही

सूचना मानाओं के पास इतना समय नहीं रहता है कि वे इन कार्मिकों से बराबर बातचीत कर सकें। इसके अतिरिक्त प्रतिष्ठित शैक्षिक एवं औद्योगिक अभिकरण अपनी प्रशस्ति हेतु नाना प्रकार की मुद्रित सामग्रियाँ तैयार करवाके रखते हैं। किसी भी अच्छी शैक्षिक संस्था के प्रवेश नियम, पाठ्यक्रम, आर्थिक अपेक्षाएं आदि उसके प्रोस्पेक्टस अथवा प्रशस्ति पत्रिका में उपलब्ध हो सकती हैं। अतएव शालाओं में भिन्न भिन्न प्रकार के उच्चस्तरीय महाविद्यालय एवं प्रशिक्षण संस्थाओं के ये प्रकाशन डाक द्वारा मंगवा लिए जा सकते हैं। आजकल कई औद्योगिक तकनीकी संस्थान भी अपने कार्य के विविध पक्षों के सम्बन्ध में अत्यन्त आकर्षक पम्फलेट्स तैयार करवा कर रखते हैं। अनेक प्रकार के चार्ट, चित्र, आरेख तथा आलेखों द्वारा इन संस्थाओं के विविध पक्षीय जीवन परिस्थिति तथा अपेक्षाओं के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त हो सकता है। कई बार तो ऐसी सूचना-सामग्री निःशुल्क वितरित की जाती है किन्तु हमारे विद्यालयों को इस तथ्य के सम्बन्ध में ज्ञान नहीं होता।

हमारे देश में इस प्रकार की महत्वपूर्ण सूचना सामग्री के मुद्रित चित्रित दृश्य श्रव्य व सांख्यिक उपकरण राष्ट्रीय-स्तर पर शैक्षिक, औद्योगिक तथा शोध संस्थाओं द्वारा तैयार किए गए हैं। पुस्तक के सातवें अध्याय में इनके विषय में अधिक विशद तथा विशिष्ट रूप से उल्लेख किया जायेगा।

इस मुद्रित सामग्री से प्राप्त सूचनाओं के अतिरिक्त भी छात्र को कई व्यवसायों, प्रशिक्षण संस्थाओं तथा उच्चस्तरीय शिक्षण संस्थाओं सम्बन्धी तथ्यों की कई बार आवश्यकता होती है। इसके लिए शाला निर्देशक को क्षेत्रीय पर्यटन की आयोजना करना चाहिए। इस विधा का प्रत्यक्ष लाभ यह होता है कि छात्र अभिमुख संवाद, प्रश्नावली एवं प्रपत्र पूर्ति, पर्यवेक्षण आदि प्रविधियों के उपयोग से न केवल परिचित होते हैं अपितु इनके द्वारा स्वयं कार्य परिस्थितियों के परिवीक्षण अध्ययन द्वारा अपने भावी निश्चय अधिक ठोस रूप से ले सकते हैं। शैक्षिक अथवा प्रशिक्षण संस्थाओं की स्थानीय अपेक्षाओं, आवश्यकताओं के सम्बन्ध में उनका प्रथम स्थानीय ज्ञान वर्धित होता है। व्यावसायिक तत्वों के सम्बन्ध की विशद सूचनाएं भी व्यवसाय विश्लेषण की तकनीकी प्रविधि द्वारा ही प्राप्त हो सकती हैं। इस विश्लेषण के संदर्भ में जहां छात्रों को वास्तविक कार्य-परिस्थितियों का प्रत्यक्ष परिचय प्राप्त करने का अवसर मिलता है वहां निर्देशन कार्मिक को व्यवस्थित रूप से कुछ तकनीकी सूचना बिन्दुओं का संकलन कर सकने की सुविधा प्राप्त हो जाती है।

(ई) प्रारूप—पर्यावरणीय सूचना-सेवा के प्रारूप के सम्बन्ध में सबसे महत्वपूर्ण बात है इस सेवा द्वारा उपलब्ध सामग्रियों के समुचित उपयोग की। ये सूचनाएं न केवल छात्रों के लिए अपितु शिक्षकों तथा अभिभावकों के लिए भी अत्यन्त महत्वपूर्ण सूचना-स्रोत होती हैं। विशेष कर हमारे देश में तो शिक्षक तथा अभिभावक छात्र द्वारा चयनित विशेषता धाराओं के व्यावसायिक अभिप्रेत अर्थों के सम्बन्ध में भी प्रायः अनभिज्ञ ही रहते हैं। अतएव आवश्यक है कि इन सामग्रियों का संकलन

निरीक्षण तथा प्रदर्शन इस रूप में किया जावे कि छात्र की रुचि यदि किसी व्यवसाय में हो तो वे सरलता से उस व्यवसाय से सम्बन्धित आवश्यक बातों से परिचित हो सकें। इसके अतिरिक्त वाचनालय में पत्र-पत्रिकाएँ, पुस्तकें आदि भी छात्रों को व्यवसाय के विषय में सामान्य रूप से मार्गदर्शन कर सकें।

विविध व्यावसायिक पाठ्यक्रमों से सम्बन्धित एवं व्यवसाय धाराओं के लिए विभिन्न व्यवसाय सम्बन्धी आर्थिक सूचनाओं की तालिकाएँ, भिन्न भिन्न व्यवसाय विद्यालयों के विवरण, छात्रों के किसी ऐसे केन्द्रीय स्थान पर लगाए जा सकते हैं जहाँ पर छात्रों की प्रायः सहज ही दृष्टि पड़ सकती हो। इसके अतिरिक्त अधिक व्यावसायिक मुद्रित सामग्री वाचनालय-पुस्तकालय में सरलता से उपलब्ध हो सकनी चाहिए—कम-से-कम विद्यालय के समान उन छात्रों की पहुँच तक तो सीमा में वह रहनी चाहिए। इस प्रकार की सूचना-सम्बन्धी प्रदर्शनी अथवा फिल्म प्रदर्शनी में छात्रों के अतिरिक्त शिक्षकों तथा अभिभावकों को भी सम्मिलित करना चाहिए।

व्यावसायिक सूचना-सेवा के समान कतिपय अन्य पर्यावरणीय सूचना सेवा की प्रभाविता का प्रदर्शन करते हैं। व्यावसायिक—शैक्षिक प्रश्न तो इस प्रकार से आते रहते हैं। बहुत सी आवश्यकताएँ नहीं कि व्यावसायिक सूचना सेवा के समान ही इस सेवा हेतु भी एक स्वतन्त्र कक्ष का प्रावधान होना चाहिए जिसमें मनन एवं प्रदर्शन सामग्रियों का संग्रह निरन्तर बना रहे। पठनीय सामग्रियों के प्रदर्शन के साथ ही उनके प्रयोग का प्रश्न भी महत्त्व रखता है—और इस प्रदर्शन हेतु प्रदर्शन उपकरण तथा प्रशिक्षित व्यक्ति—दोनों की ही आवश्यकता होती है।

आर्थिक प्रावधान के अतिरिक्त व्यावसायिक सूचना सेवा के साथ ही इस सेवा के सफल संचालन हेतु भी कुछ कर्मचारीय सहायता की आवश्यकता होती है। ध्यान रखिए सुझाव के रूप में हम कहना चाहेंगे कि इस प्रकार के कर्मचारीय कार्य के कई उत्तरदायित्वों में शाला के पुस्तकालय अध्यक्ष तथा स्वयं छात्रों का सक्रिय सहयोग लिया जा सकता है। स्वयं छात्रों को तो अधिक व्यावसायिक सूचना सामग्री के संकलन के लिये भी प्रेरित किया जा सकता है। प्रतिदिन के समाचार पत्र स्वयं के अभिभावकों से उनके व्यवसाय सम्बन्धी बातचीत किसी क्षेत्रीय पर्यटन के पश्चात् शाला-पत्रिका हेतु उसका विवरण—आदि ऐसे कुछ प्रेरक साधन हो सकते हैं जिनके द्वारा छात्र पर्यावरणीय सूचनाओं के संकलन, मूल्यांकन एवं उपयोग हेतु प्रेरित किये जा सकते हैं।

(ग) उपबोधन सेवा

[illegible] [illegible] शालेय गतों की विशद प्रशासक तथा अन्य शालेय कार्मिका द्वारा आनुषंगिक निर्देशन तो प्रायः चलता ही रहता है। किन्तु [illegible] आनुषंगिक निर्देशन की दो प्रमुख सीमितताएँ हो सकती हैं। एक तो इन अनजानी व्यक्तियों द्वारा दिया हुआ अनौपचारिक निर्देशन प्राय विद्यार्थी की योग्यता तथा अभिरुचियों से सम्बन्धित नहीं होता। अपने अनुभवों के आधार पर कुछ पर्यावरणीय अवसरों/आवश्यकताओं से परिचित होने पर भी इन अनजानी व्यक्तियों को न तो छात्र के

मनोवैज्ञानिक लक्षणों का अवबोध होता है न इन लक्षणों का पर्यावरणीय घटकों से सम्बंधित करके देखने का कौशल। छात्र को वैज्ञानिक रूप से वह निर्देशन देने के लिए उक्त क्षमता आवश्यक होती है जिसका प्रयोग विशिष्ट रूप से तकनीकी उपबोधन सेवा में होता है।

इसके अतिरिक्त शिक्षकों आदि द्वारा दिया गया परामर्श निर्देशन प्रायः छात्रों की कुछ सामान्य आवश्यकताओं के ही संदर्भ में होता है। यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि शाला के कार्यक्रम से सम्बन्धित विद्यार्थियों की ऐसी आवश्यकताओं के अतिरिक्त भी एक अनन्य व्यक्ति के नाते प्रत्येक छात्र की कुछ निजी समस्याएं भी हो सकती हैं। कई बार इन वैयक्तिक कठिनाइयों का उसकी शालीय उपलब्धियों पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है। किन्तु वैयक्तिक सहायता के अभाव में उसे यह सब कुछ चाप चाप सहन करना पड़ता है। विशिष्ट रूप से वैयक्तिक स्तर पर क्रियाशील उपबोधन सेवा में इन वैयक्तिक स्तर की आवश्यकताओं के सम्बन्ध में ही विशेष रूप से कार्य किया जाता है। तदनुसार इस सेवा की प्रकृति के सम्बन्ध में निम्न बिन्दुओं का विधिवत रूप से उल्लेख किया जा सकता है।

(अ) प्रकृति

वैयक्तिक—उक्त विवेचन के परिप्रेक्ष्य में इस सेवा की अनन्य वैयक्तिक प्रकृति पर ही सर्वप्रथम बल देना समाचीन रहेगा। वस्तुतः यदि यह कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि उपबोधन सेवा एक एक वैयक्तिक सम्बन्ध के आधार पर ही नियोजित होती है। इस सम्बन्ध की प्रकृति भी विविध एवं एक सम्बन्धों की तुलना में अत्यन्त ही अनन्य होती है। इस सेवा के सफल संचालन की एक प्राथमिक पूर्वावश्यकता ही यह होती है कि इस प्रगूढ़ एक एक सम्बन्ध में सामंजस्य हो, सम अनुभूति हो सौहार्द्र हो। एक उपबोधक तथा उपबोध्य के मध्य यह एक विचित्र प्रकार का सम्बन्ध-स्थापन होता है जहां पर कि विचार-संचरण के लिए सदैव ही भाषा के सामान्य माध्यम की आवश्यकता नहीं होती। कई बार उपबोध्य अपनी निजी समस्याओं को नाना प्रकार के अशाब्दिक संचार-साधनों द्वारा उपबोधक तक प्रेषित कर देता है। कई परिस्थितियों में बोलने वाले के वास्तविक शब्द जितना नहीं कह सकते उससे कहीं अधिक अर्थों का इंगित वाणी के स्वरक्रम, मुखा के हाव भाव, नेत्रों की दृष्टि, व्यक्ति के आसन आदि संचारकों द्वारा प्राप्त हो सकते हैं। जहाँ विशिष्ट शब्दों के तो निश्चित अर्थ ही सभी व्यक्तियों के लिए समान होते हैं वहां पर इन वैयक्तिक प्रयत्नों का अर्थ प्रत्येक व्यक्ति के लिए भिन्न-भिन्न होता है। इस तथ्य का आत्मीयकरण तथा इसके आधार पर वास्तविक अर्थ कर सकने की क्षमता ही उपबोधन सेवा की मूलभूत आवश्यकता होती है।

एकान्त व्यवस्था—इस सेवा की विशिष्ट वैयक्तिक प्रकृति का तर्कगत निष्कर्ष यही निकलता है कि इसके नियोजन संचालन हेतु शाला में किसी एकान्त कक्ष की व्यवस्था होना अनिवार्य है। कोई भी व्यक्ति अपनी निजी तथा गोपनीय प्रश्नों के

विषय में एक स्थान पर चर्चा सम्भव नहीं था जहाँ वह अपने विचार बिना किसी अप्रसन्नता अथवा असंगत रुचि की आशंका के स्वतन्त्रतापूर्वक व्यक्त कर सके। अब निर्देशन विषयों की व्यक्तिगत चर्चा में एकान्तता एक मूलभूत आवश्यकता बन जाती है। किसी शारीरिक अथवा मानसिक रोग के निदान, परीक्षण तथा उपचार हेतु जब हम चिकित्सक और रोगी की एकान्त व्यवस्था को एक सहज आवश्यकता के रूप में स्वीकार करते हैं तो फिर इन अप्रत्यक्ष रोगों से अधिक महत्त्वपूर्ण तथा अमूल्य मानसिक व्याधियों और समायोजन उलझनों के सम्बन्ध में भी ऐसी व्यवस्था की उपेक्षा की मान्यता क्यों नहीं? यह तो स्वयं विचार का विषय है। और यह भी आवश्यक नहीं कि यह सब एक व्यक्तिगत व्यवहार ही किसी व्याधि के सम्बन्ध में हो। सामान्यतः कई स्वस्थ व्यक्ति भी अपने निजी विषयों के सम्बन्ध में अन्य व्यक्तियों के सम्मुख विचार तथा स्पष्ट बातें करना पसन्द नहीं करते। फिर किसी विशिष्ट समस्या से ग्रस्त व्यक्ति के लिए तो ऐसा करना और भी कठिन हो जाता है। उदाहरणार्थ यदि कोई छात्र किसी शिक्षक के साथ अपना व्यक्तिगत दुर्भाव रखता है और उसके व्यक्तिगत जीवन पर इसके विपरीत प्रभावों के विषय में बातचीत करके इस विषम परिस्थिति में कुछ सुधार करने हेतु सहायता पाना चाहता है तो अन्य बालकों का वहाँ पर उपस्थित छात्रों की उपस्थिति में उपर्युक्त बात नहीं कर सकता। इसलिए वह ऐसे एकान्त स्थान की अपेक्षा करता है जहाँ वह निर्भीक रूप से अपने विचारों को अभिव्यक्त कर सके।

गोपनीयता—उक्त बिन्दु के सन्दर्भ में ही इस सेवा के अनुशीलन में निहित गोपनीयता का विवेचन कर लेना युक्तिसंगत रहेगा। यहाँ पर इस बात का स्पष्टीकरण आवश्यक है। इस बिन्दु के सम्बन्ध में यह कहना और अच्छा कि इस सेवा की प्रकृति गोपनीय है। हमारे कहने का तात्पर्य यह है कि इस सेवा के प्रसंग में जो भी दत्त संकलन, अध्ययन, विश्लेषण आदि होता है उसकी गोपनीयता के सम्बन्ध में आश्वस्त होने की परम आवश्यकता है। वस्तुतः इस सेवा के स्वरूप का ही स्पष्ट वर्णन यह कह कर किया जा सकता है कि—यह वह सेवा है जिसमें सम्पूर्ण व्यक्ति तथा उसके समूचे वातावरण से सम्बन्धित सब सूचनाओं के गोपनीय अध्ययन, परीक्षण, विश्लेषण के आधार पर व्यक्ति को एक एक परिस्थिति में इस प्रकार की व्यावसायिक सहायता प्रदान की जाती है कि वह अपने सम्बन्ध में स्वतन्त्रतापूर्वक उत्तरदायित्वमय निर्णय ले सके।

उपर्युक्त सेवा-सम्बन्धी दत्त की गोपनीय प्रकृति के अनुरक्षण हेतु कक्ष व्यवस्था की एकान्तता पर्याप्त नहीं। व्यक्ति सम्बन्धी कई प्रकार के दत्त इस प्रकार गोपनीय प्रकृति के होते हैं कि उनको इस प्रकृति की सुरक्षा के लिये उचित साधन सुविधा की आवश्यकता होती है। अध्याय के अन्तर्गत इस बिन्दु पर विस्तार से कहा जायेगा।

केन्द्रीय सेवा—निर्देशन सेवा की प्रकृति का आधार निर्देशन कार्यक्रम में इसकी महत्त्वपूर्ण केन्द्रीय स्थिति का उल्लेख करके किया जा सकता है। इस बिन्दु

का विवेचन यह कह कर प्रारम्भ करना असंगत नहीं होगा कि अपने शाब्दिक तथा नामकरण-दोनों ही अर्थों के सन्दर्भ में उपबोधन सेवा को निर्देशन कार्यक्रम की केन्द्रीय सेवा कहा जा सकता है।

सर्वप्रथम तो प्रमुख निर्देशन-सेवाओं की जो प्राथमिक अनुसूची हमने प्रारम्भ में प्रस्तुत की उसमें इस सेवा की संख्या क्रमिक रूप से भी मध्य में आती है। फिर वास्तविक निर्देशन कार्य संचालित करने के दृष्टिकोण से भी निर्देशन कार्यक्रम की प्रारम्भिक दो सेवाओं की क्रियाएं सम्पन्न न हो सकने तक उपबोधन की तकनीकी सेवा समुचित रूप से नहीं की जा सकती। स्पष्ट है कि जबतक व्यक्ति तथा उसके पर्यावरण सम्बन्धी आवश्यक सूचनाओं का विधिवत संकलन-वर्गीकरण ही न हो पाया हो तो उस दत्त सामग्री के आधार पर निर्वचन किस प्रकार किए जा सकते हैं? तदनुसार यह भी एक वास्तविकता है कि जबतक उक्त आधारों पर व्यक्ति अपने स्वतन्त्र निश्चय नहीं निर्धारित कर लेता तबतक उसे नियोजन में किस प्रकार सहायता दी जा सकती है? तथा उसके निश्चयों का युक्तियुक्त अनुसरण किस प्रकार किया जा सकता है? तो इस प्रकार कहा जा सकता है कि कार्य-व्यवस्था की दृष्टि से भी इस सेवा का एक केन्द्रीय स्थान होता है।

अन्त में तकनीकी महत्त्व के दृष्टिकोण से भी इस सेवा का न केवल निर्देशन कार्यक्रम में अपितु समूची शाला व्यवस्था में एक केन्द्रीय महत्त्व होता है। यदि यह कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि सम्पूर्ण शाला की बहुमुखी क्रियाओं में से कोई भी प्रक्रिया ऐसी नहीं है जो इसका स्थानापन्न कर सके।

(आ) प्रकार—मूलतः उपबोधन सेवा द्वारा छात्र को उसके जीवन के कई पक्षों में वैयक्तिक सहायता दी जाती है। कतिपय सम्भावित पक्षों का उल्लेख उदाहरणस्वरूप यहाँ पर किया जा रहा है।

शैक्षिक पाठ्यक्रम—इस पक्ष में शाला में उपलब्ध पाठ्यक्रमों के स्वरूप प्रकार आवश्यकता तथा भावी सम्भावनाओं के ज्ञान के आधार पर छात्र अपने शैक्षिक निश्चय लेने में सहायता प्राप्त करते हैं।

शैक्षिक कुशलताएं—पाठ्यक्रम चयन के उपरान्त छात्र को उसके सफल पालन में भी कई प्रश्न हो सकते हैं जो कि उसके सूचना ज्ञान कौशल्य स्पष्टता अभिरुचिता अध्ययन आदतें परीक्षा-कुशलता आदि से सम्बन्धित हो सकते हैं। इन प्रश्नों का समाधान छात्र को उपबोधन सेवा द्वारा प्राप्त हो सकता है।

पाठ्येतर क्रियाएं—इस पक्ष में पाठ्यक्रम से अप्रत्यक्षरूपेण-सम्बन्धित प्रवृत्तियों सम्बन्धी जानकारी द्वारा छात्र इनका सन्तुलन अपने समूचे व्यक्तित्व के साथ करने में सहायता प्राप्त करते हैं।

वैयक्तिक सामाजिक समस्याएं—छात्र के बहुपक्षी व्यक्तित्व की कई उलझनें हो सकती हैं जिन्हें सुलझाने में वह वैयक्तिक सहायता की अपेक्षा करता है। ये कठिनाइयाँ उसके कक्षा अधिगम के सन्दर्भ में हो सकती हैं अथवा शिक्षक विद्यार्थी

सम्बन्धों में उद्भूत हो सकती है। कभी कभी इन कठिनाइयों का सम्बन्ध समवयस्क साथियों के दल से होता है जिसके कारण सामाजिक मानव तथा व्यक्तित्व विकासों में कुछ गड़बड़ हो सकता है। आत्मनिर्भर [illegible] भिन्न-अवस्था में कभी तथा जाति [illegible] इन छात्र [illegible] सम्बन्ध में कुछ कठिनाइयाँ उत्पन्न कर सकते हैं जो कि [illegible] के लिये भी कष्टदायक सिद्ध हो सकता है। विभिन्न छात्र समस्याओं के सम्यक् परिचय के आधार पर उपबोधक ऐसी परिस्थितियों में एकक छात्र की वैयक्तिक सहायता समायोजन की दिशा में कर सकता है।

तथा कभी कुछ सामान्य/असामान्य शारीरिक सीमितताओं या दोषों के कारण कतिपय छात्र न केवल स्वयं दुखी रहते हैं अपितु अपने साथ साथियों के तिरस्कार व उपेक्षा के पात्र बनकर कुसमायोजन के शिकार बन जाते हैं। इस दिशा में उनका पथ-प्रदर्शन करना कर्तव्य उपबोधक का है जो [illegible] उत्तरदायित्व हो जाता है।

घरेलू कठिनाइयाँ—छात्रों के पारिवारिक आत्मीय जीवन का समायोजन बहुत कुछ सीमा तक उनकी घरेलू परिस्थितियों द्वारा प्रभावित होता है। इन परिस्थितियों में कई बार कई ऐसी समस्याएँ आती हैं जिन्हें छात्र अपने मित्रों को तो क्या स्वयं अपने आपको भी नहीं कह सकता। घर की हीन-अनुभवता तथा स्थितियों की वास्तविकता को स्वीकारने में भी उसे प्रायः संकोच होता है। कभी-कभी तो घरेलू कारणों से उद्भूत छात्र की आत्मविश्वासहीनता, कुण्ठा, चिन्ता तथा असुरक्षा व हीन भावना की प्रकृति इतनी गम्भीर होती है कि किशोर छात्र को उसके समस्त कारण, उनके सही स्वरूप तथा उनके प्रभाव व समाधान के सम्बन्ध में अनभिज्ञता ही रहती है। छात्रों के मन [illegible] इन परिणामों के लक्षण देखते हुए भी वह इन कारणों को नहीं जान पाते। वास्तव में उन तक जाने व उन्हें समझने का न तो उनके पास समय है और न इस प्रकार के तकनीकी कार्य हेतु उनका कोई विशिष्ट प्रशिक्षण ही होता है। विशेष रूप से नियोजित प्रशिक्षित उपबोधक का ही यह उत्तरदायित्व होता है कि वह इस प्रकार की परिस्थितियों में एकक छात्र को समुचित वैयक्तिक उपबोधन प्रदान करे।

आर्थिक प्रश्न—अपने परिवार की विशिष्ट परिस्थितियों के कारण कई बार कतिपय प्रतिभाशाली छात्रों को भी अपनी क्षमतानुकूल शिक्षाध्ययन करने में आर्थिक कठिनाइयों का अनुभव करना पड़ता है। ऐसी परिस्थिति में निर्देशन कार्यक्रम द्वारा विविध आर्थिक-स्रोतों के सम्बन्ध में सूचना प्रसारण करना ही पर्याप्त नहीं होता। विविध स्रोतों से प्रस्तुत धनराशि विभिन्न रूपों में प्राप्त कर सकने हेतु एकक छात्र को वैयक्तिक सहायता की आवश्यकता होती है। विशेषकर हमारी संस्कृति में जहाँ पर किशोरों को स्वतन्त्र रूप से आमदनी प्राप्त करने का—पश्चिमीय किशोरों की तुलना में—बहुत कम अवसर होता है—वहाँ पर एकक छात्र को इस प्रकार के स्रोतों की जानकारी में भी व्यक्तिगत सहायता की आवश्यकता

होती है जो कि उपबोधन सेवा द्वारा प्राप्त हो सकती है।

(ह) प्रारम्भ एवं आवश्यक तत्त्व—जैसा कि इस सेवा के विवेचन के प्रारम्भ में ही स्पष्ट किया जा चुका है इसके प्रारम्भ की प्राथमिक आवश्यकता होती है—भौतिक साधन-सुविधाओं के रूप में। एकान्त कक्ष शान्त वातावरण विश्रामपूर्वक बैठकर बात कर सकने की उपयुक्त व्यवस्था दत्त सामग्री को सुरक्षित एवं गोपनीय रख सकने के कैबिनेट फाइल तालें आदि ये ऐसी भौतिक पूर्वावश्यकता हैं जिनके बिना उपबोधन सेवा की कल्पना करना ही मूर्खता होगा।

उक्त भौतिक आवश्यकताओं से सम्बन्धित है इस सेवा में निहित आर्थिक पक्ष। उक्त प्रकार के स्थान व उपकरणों की व्यवस्था बिना अर्थ के करना असम्भव है।

इसी अर्थ-व्यवस्था से निकटतम मिला जुला प्रश्न उपस्थित होता है प्रशासक की आस्था का। यदि उसकी इस प्रकार की सेवा में आस्था नहीं हुई तो वह इस प्रकार के महत्त्वपूर्ण तकनीकी कार्य को आर्थिक अपव्यय के रूप में देख सकता है। विशेषकर कई प्रकार के आर्थिक संकटों में जकड़े हुए हमारे माध्यमिक विद्यालयों के प्रशासकों को इतनी अधिक प्रकार की आवश्यकताओं का सामना करना पड़ता है कि उनके लिये इस सम्बन्ध में आर्थिक पूर्ववर्तिताएँ निश्चित कर सकना सचमुच एक दूभर काम हो उठता है।

प्रशासक की आस्थाहीनता का एक और दुष्परिणाम हो सकता है उपबोधक को पर्याप्त समय का अभाव। यों तो आदर्श व्यवस्था वह होगी जबकि एक पूरे समय का उपबोधक एक स्वतन्त्र रूप से शाला उपबोधक का कार्य कर सके। किन्तु यदि बजट की आर्थिक सीमितताओं के कारण यह सम्भव न हो सके तो शाला का समय सारिणी में शाला उपबोधक का कम से कम सप्ताह में दो तीन घण्टे का तो प्रावधान होना अनिवार्य है।

सबसे अधिक सोचनीय तो वह परिस्थिति होती है जबकि शाला उपबोधक को एक ऐसे एक्स्ट्रा के रूप में देखा जाता है जो छुट्टी की हाजिरी भी ले गेम्स का निरीक्षण भी करे तथा किसी अनुपस्थित शिक्षक की कक्षा को व्यस्त भी रख सके। सर्वप्रथम तो इस प्रकार के बहुमुखी आकस्मिक कार्य निभाने वाले उपबोधक को अपना निजी तकनीकी कार्य करने हेतु समय व शक्ति की सदैव कमी रहती है। दूसरे अपने स्वयं के कार्य की यह मूक शालीय उपेक्षा शनैः शनैः उसके मन में भी अपने उत्तरदायित्व के प्रति निष्ठा में कमी करती जाती है। और अन्त में ऐसा उपबोधक छात्रों का विश्वास भी प्राप्त करने में असमर्थ रहता है। फलस्वरूप यह सेवा केवल नाममात्र की रहकर शिक्षक तथा अभिभावक दोनों की हँसी तथा उपेक्षा का विषय बन जाती है। इस तकनीकी सेवा के प्रति इस प्रकार की प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न करने से तो अधिक अच्छा यही होगा कि इस सेवा के नाम पर कोई ढोंग न रचा जाय।

(घ) नियोजन सेवा—उपर्युक्त सूचनाओं के आधार पर छात्र को यथोचित रूप से अपने स्वतन्त्र निश्चय से चयन के लिए सहायता दे चुकने के पश्चात् निर्देशन कार्यकर्ताओं के सम्मुख जो अत्यन्त व्यावहारिक चुनौती प्रस्तुत होती है वह है उन निश्चयों को एक प्रारम्भिक स्वरूप देने में व्यक्ति को वास्तविक सहायता देने की। निर्देशन कार्यक्रम की नियोजन सेवाओं का मूलतः इसी चुनौती से सीधा सम्बन्ध होता है।

(ङ) प्रकृति—जिन धारणाओं तथा आधारभूत मान्यताओं को लेकर निर्देशन सेवाओं के आधुनिक स्वरूप का प्रस्तुतिकरण कर रहे हैं उसके परिप्रेक्ष्य में इस सेवा के लिए 'नियोजन' नामकरण अब उपयुक्त नहीं प्रतीत होता। नियोजन शब्द का साधारण तात्पर्य होता है किसी व्यक्ति को किसी व्यवसाय अथवा काम में नियुक्त करने से। निर्देशन कार्य के पुरातन सीमित-आशय के परिप्रेक्ष्य में तो नियोजन शब्द का यह प्रयोग स्वीकार किया जा सकता था। जब निर्देशन कार्य का विस्तार ही व्यक्ति के व्यावसायिक जीवन तक सीमित रहता था तो नियोजन सेवा की परिधि भी व्यवसाय प्रवेश सम्बन्धी विविध प्रकार की सहायता तक मान्य हो सकती थी। अब निर्देशन के विस्तृत आशय के अनुसार नियोजन शब्द की प्रचलित मान्यता को स्वीकार करते हुए भी इसके आशय को अधिक स्पष्ट करने की आवश्यकता है। अपनी बात को अर्थपूर्ण करने हेतु नियोजन सेवा की प्रकृति की व्याख्या निम्न लक्षणों के माध्यम से की जा सकती है।

समाहारी—नियोजन सेवा व्यक्ति जीवन के विविध पक्षों में विभिन्न अवसरों पर उसके आवश्यक पद-स्थापन से सम्बन्धित होती है। वस्तुतः किसी भी समस्या परिस्थिति उत्तरदायित्व आदि में से किसी प्रथम व्यावहारिक चरण उस सबसे से लगे हुए समायोजन को नियोजन सेवाओं के अन्तर्गत जोड़ा जा सकता है। इस सेवा के आशय-स्पष्टीकरण के सम्बन्ध में ही हमने इसके समाहारी लक्षण द्वारा इसकी व्यापक प्रकृति पर बल देना उचित समझा। व्यक्ति के जीवन में इसकी व्यावहारिक उपादेयता के पक्ष में कई तर्क दिये जा सकते हैं। कई बार युक्तियुक्त ढंग से सन्तोषप्रद निश्चय ले चुकने पर भी प्रत्यक्ष परिस्थिति में क्रियाशील हो सकने हेतु न केवल कुछ और वास्तविक तथ्यों का सामना करना पड़ता है अपितु सैद्धान्तिक स्तर के अमूर्त चिन्तन से नीचे उतर कर "व्यावहारिकता" की ठोस भूमि पर भी कदम जमाने पड़ते हैं। कुछ व्यक्ति इस समय कदाचित संवेगात्मक दुर्बलता अथवा मानसिक परावलम्बन के प्रभाव से बाह्य सहारे की अपेक्षा करते हैं। किन्हीं दशाओं में तो इस प्रकार के आश्रय बिना बनी बनाई योजनाओं के सैद्धान्तिक-स्तर तक ही सीमित रह जाने की आशंका हो सकती है। उक्त सभी दृष्टिकोणों से व्यक्ति जीवन की सम्पूर्णता के सन्दर्भ में हमने इसकी समाहारी प्रकृति की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है।

पूरक सेवाओं का परिणाम—उक्त विवेचन के अनुक्रम में ही कहा जा सकता है कि इस सेवा का जन्म ही निर्देशन कार्यक्रम की प्रथम तीन सेवाओं के किए गए

कार्य के परिणामस्वरूप होता है। यह एक व्यावहारिक सत्य है कि जबतक प्रथम तीन सेवाओं की क्रियाएं समुचित रूप से सम्पन्न नहीं हो जाती तबतक नियोजन सम्बन्धी कार्यों का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। जबतक छात्र सही निश्चय न कर ले कि उसे कौनसी विशिष्ट शाखा का अध्ययन करना है तबतक उसे प्रवेश सम्बन्धी औपचारिकताओं की क्या चिन्ता हो सकती है? इसी प्रकार व्यवसाय स्वरूप के सम्बन्ध में सैद्धान्तिक रूप से आश्वस्त होने के उपरान्त ही व्यक्ति उसमें प्रविष्ट होने की प्रकार्यात्मक आवश्यकताओं में सहायता प्राप्त करने पर विचार करेगा। इसी प्रकार आर्थिक सामाजिक पक्षों के कतिपय निश्चयों के सम्बन्ध में पूर्ण स्पष्टता प्राप्त कर चुकने के पश्चात् व्यक्ति इन निश्चयों के व्यावहारीकरण से सम्बन्धित समस्या के विषय में अग्रसर होगा। जैसाकि कहा जा चुका है कुछ व्यक्ति तो इन निर्णायक परिस्थितियों में प्रत्यक्ष रूप से सहायता चाहते हैं। कौन व्यक्ति कितनी अधिक सहायता की नियोजन की राह में अपेक्षा करता है यह तो बहुत कुछ व्यक्ति की प्रकृति तथा परिस्थिति के स्वरूप पर निर्भर करता है। किन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि यदि वैयक्तिक-सूचना सेवा पर्यावरणीय सूचना सेवा तथा उपबोधन सेवा के कार्यों के तर्कसंगत परिणाम का नियोजन सेवाओं के रूप में अनुवर्तन नहीं किया जाता तो व्यक्ति को अपने बहुपक्षीय जीवन में व्यावहारिक सहायता देने के निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति निर्देशन कार्यक्रम द्वारा नहीं हो सकती।

सहयोगी यह प्रारम्भ में ही कहा जा चुका है कि नियोजन सेवा द्वारा व्यक्ति के बहुपक्षीय जीवन में सहायता प्रदान की जाती है। स्पष्ट है कि यह बहुआयामी सहायता एक ही व्यक्ति द्वारा व्यक्तिगत रूप से नहीं दी जा सकती। सैद्धान्तिक तथा तकनीकी रूप से प्रशिक्षित उपबोधक विविध पक्षों द्वारा प्राप्त हो सकने वाली सहायता के स्रोतों से व्यक्ति का न केवल परिचय कराता है अपितु उनके सम्बन्ध में समुचित मार्ग-दर्शन भी करता है। वस्तुतः मार्ग-दर्शक सेवाओं का तो पश्चिमीय साहित्य में कई स्थानों पर एक स्वतन्त्र निर्देशन-सेवा का स्थान दिया गया है। उक्त विवेचन का एक तर्कसंगत उपसिद्धान्त यह होता है कि नियोजन सेवा का कार्य समुचित सहयोग के बिना आगे नहीं बढ़ सकता। एक उपबोधक से यह अपेक्षा करना न्यायसंगत नहीं होगा कि वह प्रत्येक पाठ्यक्रम व्यवसाय अथवा जीवन परिस्थिति के सम्बन्ध में सभी कुछ जानता हो। किन्तु हां उससे यह अपेक्षा की जाती है कि समस्या के स्वरूप के अनुकूल विविध क्षेत्रों के विशेषज्ञों के सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी रखता हो। यही नहीं उससे यह भी अपेक्षा की जाती है कि विविध अभिकरणों से उसका इस प्रकार का समरस सम्बन्ध हो कि वह विश्वासपूर्वक उपबोध्य को उनके पास मार्गदर्शन कर सके। ऐसे सम्बन्ध-स्थापन तथा अनुरक्षण के लिए आवश्यक है कि उपबोधन सम्बन्धी विविध अभिकरणों में समुचित सहयोग हो।

इस प्रकार के सहयोग के अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि विविध अभि

करता द्वारा किए गए काम तथा व्यक्ति का व्यावसायिक प्रबंध में समुचित रूप से समायोजन हो सके। प्रकार्यात्मक दृष्टि से यह समायोजन नियोजन सेवा में एक बहुत बड़ी सीमा तक फलित होता है। इसकी आवश्यकता यह है कि सहयोगी कार्य किसी भी सफल समायोजन की पूर्वापेक्षा होती है। इसीलिए हमने सहयोगी तत्त्वों को नियोजन सेवा के प्रमुख लक्षणों में स्थान दिया है।

विकासात्मक—प्रस्तुत पुस्तक में स्थान स्थान पर व्यक्ति तथा उसके पर्यावरण के सतत विकासात्मक स्वरूप पर बल दिया गया है। वस्तुतः निर्देशन की मूल आवश्यकता भी एक बहुत बड़ी सीमा तक इन दोनों सह-घटकों की आयामों की विकासात्मक प्रकृति के कारण अनुभूत की जाती है। यदि व्यक्ति में गतिशीलता का अभाव होता तथा उसके पर्यावरण में स्थिरता होती तो कदाचित न तो उसका समायोजन ही विचार का प्रश्न उपस्थित करता और न ही निर्देशन सेवाओं की कोई आवश्यकता होती। इस मौलिक कारण के परिप्रेक्ष्य में ही व्यक्तिगत सूचना सेवा तथा पर्यावरणीय सूचना सेवा में भी विकासात्मकता पर बल दिया गया है।

नियोजन की विकासात्मकता का स्वरूप व्यक्ति विकास के विविध स्तर तथा उसके साथ आयामों की विभिन्न परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में भी देखा जा सकता है। उदाहरणार्थ माध्यमिक शिक्षा स्तर पर नियोजन वास्तव में प्राथमिक स्तर की शिक्षा का अग्रिम रूप होता है और माध्यमिक स्तर के बाद का उच्चतर माध्यमिक नियोजन में विस्तार होता है। पुनः आगामी शिक्षा के स्वरूप का विशिष्ट प्रशिक्षणात्मक व्यावसायिक शिक्षा धाराओं अथवा विभिन्न व्यवसाय-क्षेत्रों में विकास होता है। इन सभी में समुचित नियोजन की आवश्यकता होती है और अपनी विकासात्मक प्रकृति के अनुरूप निरन्तर क्रमबद्ध की नियोजन-सेवा अपनी कार्यशीलता बनाए रखते हुए व्यक्ति को उसके जीवन के विभिन्न बिन्दुओं पर निर्देशक सहायता प्रदान करती रहती है।

(आ) प्रकार—नियोजन सेवाओं के माध्यम से दी जा सकने वाली सहायता के कुछ प्रकार तो इस सेवा की प्रकृति के विवेचन से ही प्रतिबिम्बित हो चुके हैं। कुछ शीर्षकों के अन्तर्गत उनका और विशिष्ट स्पष्टीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है—

शैक्षिक पाठ्यक्रम—माध्यमिक, उच्च माध्यमिक तथा विश्वविद्यालयी पाठ्यक्रमों के प्रवेश में सहायता।

शैक्षिक कठिनाइयाँ—इन पाठ्यक्रमों के सन्दर्भ में अधिगम, अध्ययन प्रविधि, गृहकार्य, परीक्षा, भाषा दोष आदि सम्बन्धी कठिनाइयों के परिहार हेतु उचित मार्गदर्शन।

शैक्षिक विशेषताएँ—शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर विभिन्न विशिष्टीकरणों की आवश्यकताओं के अनुकूल प्रवेश-प्राप्ति की औपचारिकताओं की पूर्ति में नियोजन।

प्रशिक्षण—किसी विशिष्ट व्यावसायिक औद्योगिक अथवा तकनीकी पाठ्यचर्या के प्रशिक्षण का लाभ उठा सकने हेतु व्यावहारिक भाग स्थान-निरीक्षण कार्मिकों से प्रत्यक्ष परिचय आवेदन पत्र तथा अन्य प्रपत्रों की पूर्ति तथा प्राथमिक अभिविन्यास भी सम्मिलित रहता है।

पाठ्येत्तर क्रियाएं—शाला की विविध पाठ्यसहगामी क्रियाओं में भाग ले सकने हेतु सहायता एवं सहारा। विशेषकर अन्तर्मुखी छात्रों के लिए इस प्रकार के अवलम्ब की बहुत आवश्यकता होती है।

व्यवसाय प्रवेश—नवयुवक के जीवन का यह एक अत्यन्त ही निर्णायक क्षण होता है। हमारे देश में तो इस निश्चय के पूर्व भी कई नियोजनों रिक्तियों की पूर्ति में नवयुवकों को नानाप्रकार की सहायता की आवश्यकता होती है। यह सहायता नियोजन सेवा के माध्यम से दी जा सकती है।

साक्षात्कार की तैयारी—शैक्षिक तथा व्यावसायिक क्षेत्रों में प्रवेश प्राप्ति हेतु साक्षात्कार प्रायः एक अनिवार्य पूर्वावश्यकता रहती है। किन्तु आश्चर्य की बात है कि सामान्यतः इस साक्षात्कार की कला में हमारे किशोरों तथा नवयुवकों को तनिक भी तकनीकी सहायता नहीं दी जाती। हमारे उच्चस्तरीय विश्वविद्यालयों में भी जहां सैद्धान्तिक परीक्षा की शिक्षा का तो नियमित व्यवस्थाओं का विधान की समय सारिणी में प्रावधान होता है वहां पाठ्य में सम्मिलित हो सकने वाली साक्षात्कार परीक्षा की योग्यता विद्यार्थी में पूर्वानुमानित करके उन्हें इस दिशा में कोई व्यावहारिक प्रशिक्षण नहीं दिया जाता। फलस्वरूप कई नवीन एवं अन्तर्मुखी छात्र इस दिशा में अपनी दुर्बलता के कारण अकारण ही वंचित हो जाते हैं। यही तथ्य दूसरे ढंग से व्यवसाय प्रवेश सम्बन्धी साक्षात्कार पर लागू होता है जहां कई व्यक्तियों की अन्तर्मुखी प्रकृति साक्षात्कार के समय उनके कई गुप्त गुणों को प्रकट नहीं होने देती। इसके विपरीत कुछ कम योग्य व वाचाल व्यक्ति अपने युक्त व्यवहार द्वारा साक्षात्कार करने वालों को प्रभावित करके बाजी मार ले जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि नियोजन सेवा द्वारा नाना प्रकार तथा विभिन्न उद्देश्यों से लिए जाने वाले साक्षात्कार हेतु व्यक्तियों को तकनीकी सहायता दी जा सकती है।

(इ) **व्यापक तथा आवश्यक सेवा**—नियोजन सेवाओं के स्वरूप के सम्बन्ध में एक विचारणीय तथ्य यह है कि भारत में हमारे वर्तमान नियोजन केन्द्रों की तुलना में इनमें कितनी समानता हो?—कितनी भिन्नता हो? एम्प्लायमेन्ट ब्यूरो के नाम से अभी हमारे देश में पृथक् नियोजन केन्द्र सरकारी स्तर पर पाए जाते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इन केन्द्रों का भी अपना एक महत्व होता है। किन्तु निर्देशन-सेवाओं के प्रस्तुत विवेचन में तो नियोजन सेवा को शाला-निर्देशन-कार्यक्रम की एक अन्तरंग सेवा के रूप में विचारा जा रहा है। सर्वप्रथम तो सरकारी नियोजन केन्द्रों का उद्देश्य व्यक्ति को केवल व्यावसायिक नियोजन देने तक ही सीमित रहता है। दूसरे इस नियोजन प्रयास में व्यक्ति के अन्य वैयक्तिक-मनोवैज्ञानिक

घटना से कोई सम्बन्ध स्थापन नहीं होता। ऐसी परिस्थिति में इस नियोजन को वर्तमान दृष्टिकोण से बहुत अधिक नहीं कहा जा सकता।

निर्देशन कार्यक्रम के नियोजन के पूर्व तो व्यक्ति के समस्त मानसिक शारीरिक शक्ति-सामाजिक आदि पक्षों का परीक्षण शैक्षिक अथवा व्यावसायिक अवसरों के सन्दर्भ में समुचित रूप से कर लिया जाता है। दूसरे यह नियोजन शाला के शक्षिक तथा निर्देशन कार्यक्रम के साथ साथ चलता रहता है।

इसके सफल संचालन हेतु कतिपय आवश्यक तत्वों का विवेचन निम्नांकित बिन्दुओं के सन्दर्भ में किया जा सकता है।

शालेय उपागम सर्वप्रथम तो हमारी शालीय परिस्थितियों को इस अपेक्षाकृत नवनाविष्ट सेवा हेतु कार्यकलापों की इसमें समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। शक्षिक व्यावसायिक अथवा वैयक्तिक नियोजन को सामान्यतः हम शालीय कार्यों की परिधि से परे की वस्तु मानते हैं। अतः प्राथमिक आवश्यकता तो इस बात की है कि शाला-कर्मिक छात्र नियोजन को अपने एक उत्तरदायित्व के रूप में स्वीकारें। *तभी इस सेवा के आयोजन तथा इसकी क्रियाशीलता की बात कुछ आगे बढ़ सकती है।*

कर्मचारीय सहायता एवं न्यूनतम आर्थिक प्रावधान हम कह चुके हैं कि इस सहायता के आयोजन-संचालन हेतु विविध सामाजिक औद्योगिक अभिकरणों का सहयोग प्राप्त करना पड़ता है। स्पष्ट है कि इस सम्पर्क के लिए अभिकरण अधिकारियों तथा कार्यकर्ताओं से सम्पर्क स्थापित करने की आवश्यकता होती है। यह सम्पर्क लिखित तथा व्यक्तिगत दोनों ही प्रकार से करना अपेक्षित होता है और किसी भी प्रकार के *सहयोग में स्टेशनरी स्टैम्प्स अथवा यातायात हेतु न्यूनतम व्यय की आवश्यकता होती है।* केवल सैद्धान्तिक स्तर पर योजना बना करके ही यह सम्पर्क सम्भव नहीं हो सकता। अत्यन्त आवश्यक है कि इन शालीय योजनाओं को व्यावहारिक स्वरूप देने के लिए शाला के बजट में प्रत्यक्ष प्रावधान हो।

इस प्रावधान के अतिरिक्त इस सेवा में निहित कई सामान्य नेमी क्रियाओं को सम्पन्न करने हेतु कुछ कर्मचारीय सहायता का होना भी अत्यन्त उपादेय सिद्ध होगा। इसमें उपबोधक की शक्ति अधिक महत्वपूर्ण एवं तकनीकी उपबोधन उत्तरदायित्वों हेतु प्रारक्षित की जा सकती है।

अंशकालीन कार्य-व्यवस्था छात्रों के सक्षम आर्थिक-व्यावसायिक नियोजन के सकने की एक महत्वपूर्ण पूर्वावश्यकता होती है अंशकालीन कार्यों की शाला-परिधि में व्यवस्था। अभी हमारे देश में यह एक नूतन विचारधारा है। किन्तु पश्चिम के प्रगतिशील देशों में विद्यालय के अन्तर्गत ही इतने अंशकालीन कार्यों का प्रावधान रहता है कि किसी निर्धन छात्र को अर्थाभाव से उद्भूत अभावों का शिकार नहीं होना पड़ता। विद्यालय परिधि के अतिरिक्त इन देशों के समुदायों समाजों में भी नाना प्रकार के

अल्पकालीन नियुक्ति की सुविधा होती है जिनके द्वारा निर्धन छात्रों को अपनी शैक्षिक गतिविधियों में बहुत राहत मिल सकती है। यहां के विद्यालय नियोजन केन्द्र इस प्रकार के अवसरों की व्यवस्थित सूची अनुरक्षित करते हैं तथा छात्र इस दिशा में यथोचित सहायता प्राप्त कर सकते हैं।

यद्यपि हमारे देश में अभी इस प्रकार की सुविधाओं का प्रायः अभाव सा ही है फिर भी इनकी स्वीकृत उपयोगिता तथा अनुभूति सिद्ध लाभदायिता के परिप्रेक्ष्य में हमारा सशक्त सुझाव है कि हमारी सरकार शिक्षा-कर्मचारी तथा अन्य सम्बन्धित कार्मिक इस दिशा में गम्भीर चिन्तन तथा सक्रिय प्रयास करें।

इस प्रसंग से सम्बन्धित एक महत्त्वपूर्ण तथ्य की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करके हम नियोजन सेवा-सम्बन्धी चर्चा का समाहार करेंगे।

इस प्रकार के अल्पकालीन व्यवसायों में अन्तरंग रूपेण मिला जुला प्रश्न उपस्थित होता है-मनोवृत्तियों का। हमारे देश में कई व्यवसायों के साथ हमारे समाज के मन में कुछ हीन भावनाएं संयुक्त हो चुकी हैं। अब यदि हमारे छात्र आवश्यकतावश इस प्रकार के व्यवसायों को आंशिक रूप से करने को किसी प्रकार तत्पर हो भी जायें तो उनके अभिभावकगण उनके इन कार्य-कारण में अपनी मानहानि ही समझेंगे। ऐसी परिस्थिति में हम यही कह सकते हैं कि यहां पर तो प्रश्न अभिवृत्तियों को पुनर्व्यवस्थित करने का है।

(ड) अनुवर्ती सेवाएं — जो इन सेवाओं के नामानुरूप तो सामान्यतः इनका कार्य उक्त चार सेवाओं के अन्तर्गत आयोजित क्रियाओं के सम्पन्न हो जाने के पश्चात् ही प्रारम्भ होना चाहिए। शैक्षिक निर्देशन के विशिष्ट में अनुवर्ती कार्य का एक और विशेष गुणार्थ होता है— शाला छोड़कर जाने वाले छात्रों का अध्ययन। प्रस्तुत सन्दर्भ में अनुवर्ती कार्य का अर्थ उक्त दोनों ही प्रकार की गतिविधियों का प्रतिस्मरण करते हुए प्रयुक्त किया जा रहा है। वस्तुतः अनुवर्ती का यही तात्पर्य है मूल्यांकन प्रक्रिया की समग्रता में। कार्य को सम्पन्न करने पर बुद्धिजीवी मानव के मन में एक सहज प्रश्न उठता है— मेरा कार्य कितना अच्छा हुआ? परिणाम की जिज्ञासा से सम्बन्धित इस सहज प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने हेतु व्यक्ति को अपने कार्य का प्रत्यवलोकन करना होता है—पुनरावलोकन के रूप में। निर्देशन के मनन कार्यक्षेत्र की बहुआयामी सेवाएं भी इस प्रकार की जिज्ञासाओं से—अछूती रह कर विकसित नहीं हो सकतीं। इसीलिए अन्तिम किन्तु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सेवाओं के रूप में निर्देशन कार्मिक इनका आयोजन निर्देशन कार्यक्रम में करते हैं।

(अ) प्रकृति — अनुवर्ती सेवाओं के स्वरूप को संक्षेप में सतत सामयिक परीक्षण या एक सुव्यवस्थित शृंखला के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। इसकी प्रकृति के कुछ प्रमुख लक्षण निम्न प्रकार से वर्णित किए जा सकते हैं—

—सातत्य — केवल शाब्दिक अर्थ की दृष्टि से चाहे अनुवलन और

सातत्य मे एक विरोधाभास पाया जाता [redacted] । किन्तु निर्देशन कार्य में तो ये दोनो लक्षण अनुवर्ती सेवाओ की प्रकृति में अन्तरंग रूप से घुल मिले रहते हैं । वस्तुत मूल्यांकन के रूप में अनुवर्तन का कार्य निर्देशन के उद्देश्यो के निर्धारण के समय से ही प्रारम्भ हो जाता है । तत्पश्चात् निर्देशन कार्यक्रम के प्रत्येक सोपान पर एक क्रिया के स्वरूप विधि तथा परिणाम के सम्बन्ध मे वस्तुनिष्ठ प्रश्न पूछता हुआ यह कार्य प्रत्येक बिन्दु पर निर्देशन के स्वरूप मे वाछनीय सुधार लाने हेतु उन्मुख रहता है । कार्य अन्त मे या यो कहे कि चारो सेवाओ के माध्यम से विभिन्न उत्तरदायित्व पूर्ण हो जाने पर एक समाहारी परीक्षण का दृष्टिकोण लिए हुए अनुवर्ती सेवाओ द्वारा सम्पूर्ण कार्यक्रम की विविध भांति जाच की जाती है ।

अनुवर्तन के सातत्य को एक और दृष्टिकोण से देखा जा सकता है । हम कई बार इस बात पर बल दे चुके हैं कि निर्देशन कार्यक्रम का केन्द्रबिन्दु व्यक्ति होता है । अब यह भी एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि व्यक्ति प्रकृति से ही एक विकासमान एवं गत्यात्मक इकाई होता है । तदनुसार विशेष रूप से इस व्यक्ति के विकास एवं समजन से सम्बन्धित कार्य के स्वरूप मे सातत्य का होना अनिवार्य है । यहाँ पर यह कहा जा सकता है कि इस तर्क से तो सातत्य का लक्षण निर्देशन की प्रत्येक सेवा में पाया जाना चाहिए । हमे इस तर्क से कोई आपत्ति नही । बल्कि हमारी तो यह मान्यता है कि विकासमान व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन में ही उसके बहुमुखी समजन हेतु निर्देशन कार्य मे एक सहज सातत्य की आवश्यकता होती है ।

—सहयोगी अनुवर्तन कार्य की प्रकृति का द्वितीय वांछनीय लक्षण है सहयोगिता का । इस सहयोगिता का विवेचन दो दृष्टिकोणों से किया जा सकता है । प्रथम तो विविध सेवाओ के बीच में सहयोग तथा दूसरा विभिन्न कार्मिकों के मध्य सहकारिता की भावना । जैसाकि निर्देशन सेवाओ के प्रारम्भिक परिचय के समय ही स्पष्ट कर दिया गया था—हम इन सेवाओ का सर्वथा अलग विभाजन के रूप में नहीं कर सकते । सम्प्रत्ययीय स्पष्टीकरण की सुविधा को देखते हुए हमने इनका वर्णन स्वतन्त्र शीर्षकों के अन्तर्गत अवश्य किया है । किन्तु इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं कि इनका अस्तित्व अथवा आयोजन एक दूसरे की शून्यता में हो सकता है । वैयक्तिक सूचना के माध्यम से छात्र विषयक समाहारी सूचना एकत्र करने के साथ ही उससे सम्बन्धित पर्यावरणीय सूचनाओ का भी संकलन किया जाता है । वस्तुत दोनो सूचनाओ द्वारा यह संकलन एक दूसरे की सापेक्षता में ही वैध रूप से किया जा सकता है । तत्पश्चात् उपबोधन सेवा द्वारा दी गई तकनीकी सहायता में पुन वैयक्तिक सूचना, पर्यावरणीय तथ्य तथा नियोजन की सम्भावनाओ को ध्यान में रखा जाता है । साथ ही प्रत्येक स्तर पर प्रस्तुत तथा पूर्व तथ्यो का अनुवर्तन के रूप में सतत मूल्यांकन चलता रहता है ।

अनुवर्तन की सहकारी प्रकृति का द्वितीय स्वरूप निर्देशन के विविध कार्मिकों

निर्देशन सेवाओं की भारत में सम्भावनाएँ

गत पृष्ठों में निर्देशन-सेवाओं के जिस स्वरूप का विस्तृत विवेचन किया गया है वह वास्तव में एक आदर्श प्रारूप का प्रक्षेपित चित्र है। प्रश्न उठता है कि भारत में वर्तमान परिस्थितियों में इस रूप में कितना अंश व्यावहारिक रूप से सम्भव हो सकता है। यों तो प्रत्येक सेवा के विवेचन में हमने स्थान-स्थान पर प्रकार्यात्मक इंगित दिए हैं। साथ ही सम्पूर्ण प्रस्तुतिकरण में भी हमने सतत भारतीय पृष्ठभूमि का ध्यान में रखा है। फिर भी पाठकों का ध्यान हम यहाँ पर कुछ वास्तविक तथ्यों की ओर आकर्षित करना चाहते हैं।

सर्वप्रथम तो हमारा शिक्षा व्यवस्था में निर्देशन कार्यक्रम की स्वीकृति अपेक्षित है। यह सत्य है कि हमारे शैक्षिक साहित्य में यह स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। किन्तु हमारा तात्पर्य यहाँ पर दो बातों से है—और वे हैं मौलिक आस्था तथा व्यावहारिक प्रावधान। इस समय निर्देशन सम्बन्धी ये दोनों ही मौलिक आवश्यकताएँ हमारी शिक्षा-व्यवस्था में उपस्थित नहीं हैं। हम इस स्थान पर इस अनास्था तथा प्रावधान हीनता के कारणों में जाना नहीं चाहते। ऐसा प्रयास न केवल विषय का अतिक्रमण होगा अपितु प्रस्तुत विषय के प्रति भी एक नकारात्मक उपागम होगा। हम तो यहाँ पर एक सकारात्मक दृष्टिकोण से ही कतिपय प्रकार्यात्मक सुझाव देना चाहते हैं।

(१) प्रशासकीय अभिविन्यास चूँकि किसी भी वाञ्छनीय विकास के लिए सर्वप्रथम तथा सतत प्रशासकीय नेतृत्व की आवश्यकता पड़ती है इसलिए हमारा सुझाव है कि भारतीय शिक्षा क्षेत्र में विभिन्न स्तरों पर प्रशासकों को निर्देशन के दर्शन तथा इसकी क्रिया विधियों के सम्बन्ध में अभिविन्यासित किया जाय। तभी वे आस्था पूर्वक निर्देशन कार्यक्रम की स्थापना संगठन तथा विकास में अपेक्षित नेतृत्व दे सकते हैं। उनकी इस विशिष्ट भूमिकाओं के सम्बन्ध में अगले अध्याय में विस्तार से प्रकाश डाला जाएगा।

(२) कार्मिकों का प्रशिक्षण प्रशासकों के सामान्य अभिविन्यास के पश्चात् प्रश्न उठता है कार्य-क्षेत्र में वास्तविक कार्मिकों का विधिवत् प्रशिक्षण। यह प्रशिक्षण किन्हीं स्तरों पर कितने प्रकार से कितने अभिकरणों द्वारा किस प्रकार आयोजित किया जा सकता है, इसकी विशद चर्चा आठवें अध्याय में प्रस्तुत की जावेगी। अतः यहाँ केवल भारतीय शालाओं में निर्देशन कार्यक्रम की एक पूर्वावश्यकता के रूप में पाठकों का ध्यान इस बिंदु की ओर आकर्षित किया जा रहा है।

(३) अर्थ-व्यवस्था बारम्बार हमने जिस पूर्वावश्यकता को प्रत्येक सेवा के प्रस्तुतिकरण में बल दिया है उसे यहाँ पर निर्देशन कार्यक्रम की एक मूलभूत समस्या के रूप में हमारी अनिवार्यता के रूप में पुनः दोहरा रहे हैं। कई बार यह प्रश्न पूछा जाता है कि जब अर्थाभाव के कारण हम अभी तक प्राथमिक स्तर पर—अनिवार्य निःशुल्क शिक्षा का ही प्रावधान नहीं कर पाए हैं तो निर्देशन कार्यक्रम की बातें करना अलिफ

त्था के हिस्सों के समान होगा।

इस सम्बन्ध में हमारा यही आग्रह है कि प्रस्तुत पुस्तक में निर्देशन का जो मौलिक सम्प्रत्यय प्रस्तुत किया गया है वह किसी भी प्रकार सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था से भिन्न करके नहीं देखा जा सकता। हमारे विचार से तो समूची शिक्षा व्यवस्था ही निर्देशन अभिविन्यासित होना चाहिए। शिक्षा की योजना बनाने में हर प्रत्येक चरण पर शिक्षाविदों तथा निर्देशन विशेषज्ञों का सहयोग होना चाहिए। तभी शिक्षा अपने वास्तविक उद्देश्यों की पूर्ति कर सकती है।

(४) इसलिए स्वरूप अंतिम तथा सबसे महत्त्वपूर्ण व्यावहारिक सुझाव हमारा इस विषय में यह है कि कोई भी नवीन योजना प्रारम्भ करते समय उसे छोटे पैमाने पर आयोजित करने से उसकी कई प्रकार्यात्मक सीमितताओं के सम्बन्ध में स्पष्टता प्राप्त हो जाती है। इससे मानवी शक्ति तथा आर्थिक साधन दोनों का ही अपव्यय नहीं होता। अतः हमारा आग्रह है कि निर्देशन-सेवाओं की प्रारम्भिक परीक्षा भी सीमित रूप में करके फिर इसकी विस्तृत योजना बनाना अधिक उपादेय रहेगा।

शालाओं में मात्र प्रारम्भिक दो सेवाओं से शनैः शनैः प्रारम्भ किया जा सकता है। सभी सेवाओं की योजनाएं पारित करने की महत्त्वाकांक्षा में निराशा वहन करने की अपेक्षा कुछ ही कार्यों में उपलब्ध का संतोष प्राप्त करना उन्नति के लिए एक सकारात्मक कदम होता है। फिर प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण से भी वैयक्तिक सूचना हेतु साधन निर्माण तथा पर्यावरणीय सूचना हेतु पाठ्यक्रम एवं व्यवसाय विश्लेषण इसके प्राथमिक एवं अनिवार्य चरण हैं कि इन्हें सम्पन्न किए बिना निर्देशन कार्यक्रम के प्रारम्भ करने की कल्पना करना युक्तिसंगत नहीं होगा।

चूँकि हमने प्रारम्भ से ही निर्देशन कार्यक्रम की प्रकार्यात्मक प्रकृति को महत्त्वपूर्ण समझा है इसलिए वर्तमान भारत में इसके सम्भावित स्वरूप पर एक स्वतन्त्र अध्याय इस पुस्तक में लिखा गया है। वहीं पर उसको आयोजित करने के व्यावहारिक चरणों का सविस्तार उल्लेख पाया जाएगा।

उपसंहारात्मक कथन

प्रस्तुत अध्याय इस पुस्तक का केन्द्र बिन्दु है जहाँ से हमने निर्देशन के प्रकार्यात्मक पक्ष पर व्यावहारिक विवेचन प्रारम्भ किया है। निर्देशन के दर्शन को साकार स्वरूप प्रदान करने वाले कार्यक्रम की महत्त्वपूर्ण सेवाओं के स्वरूप का विशद चित्रण यहाँ पर प्रस्तुत किया गया है। अध्याय के प्रारम्भ में विवेचित मूलभूत अभ्युपगम समग्र कार्यक्रम को एक सैद्धान्तिक अवलम्ब एवं आस्था प्रदान करने के आशय से लिखे गए थे। अध्ययन के अन्त में दिए गए कुछ प्रकार्यात्मक इंगितों का विस्तृत विवेचन अधिक व्यावहारिक रूप से आगे के अध्यायों में प्रस्तुत किया जाएगा।

निर्देशन कार्यक्रम का संगठन

(विषय-प्रवेश संगठन के मूलभूत सिद्धान्त शालीय कार्यक्रम का अन्तरंग भाग शाला की नीति के अनुरूप धारणा न्यूनतम आर्थिक व्यवस्था उद्देश्य सहयोग की सम्भावना उपलब्ध मानव स्रोतों के आधार पर अपनत्व उपकरण तकनीकी दृष्टिकोण कार्मिकों की तत्परता-स्तर मानसिक तत्परता बौद्धिक-तकनीकी तत्परता उद्देश्यों की स्पष्ट व्याख्या आदर्श-व्यावहारिक अन्तिम तात्कालिक स्पष्ट योजना कार्मिकों की भूमिकाएं प्रधानाध्यापक स्पष्ट स्वीकृति कार्मिकों की अनुकूल अभिवृत्तियां प्रशासनीय प्रावधान वित्तीय प्रावधान—कक्षा का विवरण—भौतिक कार्य व्यवस्था-समय सारणी में प्रावधान निर्देशन समिति का गठन उपबोधक छात्रों का उपबोधन औसत छात्र की सामान्य समस्याएं-असामान्य छात्र की विशिष्ट समस्याएं-अतिरिक्त निर्देशन तथा शिक्षकों की सहायता वैयक्तिक विभिन्नताओं का निदान—वैयक्तिक अनुसूची दत्त संग्रह—निर्देशन अभिविन्यासित अध्यापन-पाठ्यसहगामी कार्यक्रम की समुचित व्यवस्था—पर्यावरणीय सूचना प्रसारण निर्देशन कार्यक्रम में अभिविन्यास शाला समुदाय संयोजन शाला-शिक्षक मनोवैज्ञानिक जलवायु का सृजन निर्देशन नीतियों के अवबोधन में सहायता वैयक्तिक दत्त संग्रह पर्यावरणीय सूचना-प्रसार विषय अध्यापन के माध्यम से-पाठ्य सहगामी क्रियाओं में छात्रों को उपबोधन हेतु निर्देशन अभिनायक गण वैयक्तिक सूचना सेवा पर्यावरणीय सूचना सेवा उपबोधन सेवा नियोजन सेवा अनुवर्ती सेवा समुदाय अतिरिक्त निर्देशन सेवा पर्यावरणीय सूचना प्रसारण छात्र निर्देशन कार्यक्रम के आयोजन के विविध सोपान निर्देशन आवश्यकताओं का सर्वेक्षण प्रमाणीकृत उपकरणों द्वारा प्रश्नावलियाँ चेक लिस्ट-वाक्यपूर्ति सूची शिक्षक निर्मित साधनों का उपयोग स्थानीय साधनों का सर्वेक्षण एवं उपयोग सज्जा कक्ष केन्द्र दल-व्यवस्था अनिवार्य सभाएं प्रातः प्रार्थना सभा शिक्षक-अभिभावक सम्मेलन व्यवसाय-जीवनवृत्तीय नक्श सामाजिक विनाद के विषय कार्मिकों की तत्परता-स्तर का निर्माण समितियों का निर्माण उपसंहारात्मक कथन)

सम्भावित निर्देशन- सेवाओं का विस्तृत परिचय प्राप्त कर चुकने पर प्रश्न उपस्थित होता है वास्तविक संगठन कार्य का। वस्तुतः यही वह स्थल [illegible] जो कि कार्मिकों के सम्मुख कई प्रकार की चुनौतियां उपस्थित करता है। प्रस्तुत लेखकों का

इस विषय का सैद्धांतिक अध्ययन करने के अतिरिक्त वास्तविक परिस्थितियों में निर्देशन कार्य सम्बन्धी गोष्ठियों प्रयोगात्मक आयोजनाएं तथा स्थानीय आयोजन करने के कई अवसर प्राप्त हुए हैं। प्रस्तुत अध्याय में इन्हीं प्रत्यक्ष अनुभवों के आधार पर निर्देशन कार्यक्रम के संगठन सम्बन्धी विवेचन प्रस्तुत किये जावेंगे।

सर्वप्रथम तो हमारा आशय यह मात्र है कि इस अध्याय में दिए गए हमारे विचारों सुझावों निर्देशों को केवल एक प्रयत्न नवीन ढांचे के रूप में ग्रहण किया जावे। चूंकि निर्देशन कार्यक्रम का संगठन किसी सैद्धांतिक विषय की चर्चा मात्र न होकर एक व्यावहारिक कार्य योजना का व्यावहारिक विवरण है इसलिए विविध परिस्थितियों में इसके स्वरूप में भी विभिन्नता आने की सम्भावना हो सकती है। अतएव हमारे प्रस्तुतिकरण एक रूपरेखा मात्र हैं। चित्र की विशेषताओं की पूर्ति करने का उत्तरदायित्व विभिन्न कार्मिक व्यक्तिगत रूप में निभा सकते हैं। द्वितीय महत्वपूर्ण सम्बन्धित बिन्दु है निर्देशन सेवाओं के प्रशासन का। यों तो संगठन तथा प्रशासन के प्रक्रमों के बीच कोई जन-रोक विभाजन रेखा नहीं खींची जा सकती। ये दोनों ही प्रक्रम एक दूसरे से घनिष्ठ रूपेण सम्बन्धित हैं। फिर भी विशुद्ध कार्य सीमाओं की दृष्टि से कहा जा सकता है कि प्रशासन का उत्तरदायित्व सामान्यतः संगठन के अनुवर्तन में आता है। चूंकि भारतवर्ष में तो अभी निर्देशन कार्यक्रम के संपन्न सम्बन्धी कई प्रश्न ही अनवधानित पड़े हुए हैं— इसलिए प्रस्तुत लेखकों ने संगठन तथा प्रशासन के कार्यों को दो विभिन्न भागों में विभाजित करना उपयुक्त नहीं समझा। यह भी सत्य है कि इस अध्याय में इसके नामानुकूल अधिक बल संगठन सम्बन्धी पक्षों को ही दिया गया है। साथ ही प्रशासन के कतिपय तथ्य भी मिले जुले रूप से कई स्थानों पर ले लिये गए हैं। हमारे विचार में निर्देशन के क्षेत्र में वर्तमान भारतीय परिस्थितियों के संदर्भ में इसी प्रकार की सामग्री की अधिक आवश्यकता है।

विवेचन की सुविधा की दृष्टि से अध्याय की सामग्री को निम्न भागों में विभाजित किया गया है —

(१) संगठन के मूलभूत सिद्धांत

(२) कार्मिकों की भूमिकाएं

(३) कार्यक्रम आयोजन के विविध सोपान

संगठन के मूलभूत सिद्धांत

(१) शालेय कार्यक्रम का अंतरंग भाग

निर्देशन कार्य के संगठन के वर्तमान भारतीय प्रारूप के संदर्भ में ही इस सिद्धान्त को यहां प्राथमिक महत्त्व दिया जा रहा है। यदि यह कहा जाय तो अनुपयुक्त नहीं होगा कि भारत में निर्देशन कार्यक्रमों के प्रति एक सामान्य उदासीनता अथवा अनास्था के मूल में एक प्रमुख कारण यह रहा है कि हमारे देश में निर्देशन सेवा की व्यवस्था तथा सुविधा शालेतर स्थितियों में की गई है। शालाओं में छात्रों

को निर्देशन सेवाएं प्रदान करने का उत्तरदायित्व उन प्रान्तीय निर्देशन केन्द्रों पर है जिन्हें हम गाइडेंस ब्यूरो अथवा मनोवैज्ञानिक ब्यूरो के नाम से पुकारते हैं। इन अभिकरणों का शाला के उद्देश्य संगठन प्रशासन कार्यक्रम आदि से तनिक भी सम्बन्ध नहीं रहता। वस्तुतः इनके कार्मिक—शाला में अपरिचितों की भांति ही वर्ष में दो तीन बार प्रवेश करते हैं। स्पष्ट है कि निर्देशन ग्रहण कर सकने की मूलभूत मानसिक परिस्थिति समानुभूति या सामंजस्य छात्रों में स्थापित हो सकने का तो प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। बल्कि ये मौसमी आगन्तुक तो छात्रों तथा शाला-अधिकारियों द्वारा ऐसे अवांछनीय व्यक्तियों के रूप में देखे जाते हैं जो कि मानो अपने स्वयं के स्वार्थ हेतु शाला के कार्य में व्यवधान डालने आ टपकते हैं। इनके द्वारा शासित अपने परीक्षण प्रश्नावलियां आदि एक अनिच्छित औपचारिकता के रूप में भरवा दी जाती हैं। और वास्तविकता तो यह है कि शाला के सामान्य शिक्षक भी अपने छात्रों को इन विशेषज्ञों से अधिक अच्छी तरह जानते हैं। एवं बाह्य अभिकरण होने के कारण ये न तो छात्रों का विश्वास प्राप्त कर सकते हैं न शाला-अधिकारियों का सहयोग।

हम सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दोनों ही दृष्टिकोणों से इस मूलभूत सिद्धान्त पर बल देना चाहते हैं कि निर्देशन का कार्य शाला के दैनंदिन कार्यक्रम का एक अविच्छिन्न अंग होना चाहिये। इसका आयोजन संचालन मूल्यांकन न केवल शाला के कार्यक्रम के संदर्भ में होना चाहिये अपितु उससे मिले जुले रूप में चलना चाहिये। हम तो इसे पाठ्येतर प्रवृत्ति के रूप में भी देखना नहीं चाहते। यह तो वह पाठ्य सहगामी प्रवृत्ति है जिसकी झलक शाला की प्रत्येक गतिविधि में दिखाई देनी चाहिये। शाला पाठ्यचर्या की वह वह चमकती झालर मात्र नहीं है जिसे केवल शोभा के लिये टांक लिया गया हो और जिसे चमक-दमक पूरी होने पर फाड़ कर फेंक दिया जा सकता हो। निर्देशन का दर्शन शाला रूपी वस्त्र के प्रत्येक ताने-बाने में अविच्छिन्न ढंग से बुना हुआ होना अपेक्षित है। शाला के अधिकारी शिक्षक तथा छात्र—सभी को यह भावना होनी चाहिये कि यह कार्यक्रम उनका अपना है इसके बिना उनका शालीय जीवन विच्छिन्न हो जायगा।

वास्तव में शाला के साथ सुसंगठित निर्देशन कार्यक्रम द्वारा शाला की विविध आयामी प्रवृत्तियों की कई मात्रा में पुष्टि ही होती है। निर्देशन अभिविन्यासित पाठ्यचर्या सदैव छात्रों की अनुभूत आवश्यकताओं पर आधारित रहती है। कतिपय सामान्य मूलभूत आवश्यकताओं के सन्दर्भ में उसे आयोजित करने पर भी उसमें वैयक्तिक विभिन्नता से उद्भूत व्यक्तिगत विशिष्टताओं के लिये भी समुचित समादर एवं प्रावधान रहता है।

निर्देशन सेवाओं के शालीय कार्यक्रम का अन्तरंग भाग होने की वांछनीयता का एक और प्रमुख कारण छात्रों के अतिरिक्त जनता से सम्बन्धित है। निर्देशन सेवाओं के एक आदर्श कार्यक्रम का उत्तरदायित्व केवल छात्र हित एवं समायोजन तक

ही सीमित नहीं रहता। सर्वप्रथम तो शाला के शिक्षक इस संगठन द्वारा कई तरह की सेवाएं प्राप्त कर सकते हैं। शाला के प्रारम्भ तथा अन्त में निर्देशन सेवाओं का सामूहिक रूप से आयोजन एवं अनुवर्तन करने में उन्हें जिस तकनीकी-ज्ञानानित अभिविन्यास की आवश्यकता होती है वह उन्हें शाला निर्देशन केन्द्र से ही प्राप्त होना चाहिये। इसका यह तात्पर्य नहीं कि शाला का प्रशिक्षित उपबोधक उन्हें यह अभिविन्यास स्वयं ही प्रत्यक्षरूपेण प्रदान करे। किन्तु इस प्रकार के अभिविन्यास कार्यक्रमों के आयोजन का उत्तरदायित्व उपबोधक का ही होना चाहिये।

एक दूसरे उपबोधक का छात्र के सर्वाङ्गीण समायोजन हेतु यह भी आवश्यक हो जाता है कि वह छात्र के अभिभावक तथा उनकी घरेलू पृष्ठभूमि से सम्पर्क बनाए रखे। इस उत्तरदायित्व को निभाने में अनायास ही शाला के दर्शन उद्देश्य कार्यक्रम आदि की व्याख्या अभिभावकों तक प्रेषित करता रहता है। इस प्रकार से शाला अभिभावक के आत्मीय सहयोग को सहज प्रेरणा प्राप्त होती है।

शाला के छात्रों को महत्वपूर्ण शैक्षिक-व्यावसायिक सूचनाएं प्रसारित कर सकने हेतु उपबोधक के लिये यह भी आवश्यक हो जाता है कि वह विविध समुदाय अभिकरणों से सतत सम्पर्क बनाए रखकर अपना ज्ञान भण्डार अद्यतन बनाए रहे। साथ ही छात्रों का कार्य जीवन अवसरों के सम्बन्ध में अधिक प्रत्यक्षरूपेण प्रबुद्ध करने हेतु कई बार या तो विविध क्षेत्रों से विशेषज्ञों को वार्ता हेतु आमंत्रित करना होता है अथवा छात्रों को प्रत्यक्ष निरीक्षण हेतु कार्यस्थलों पर ले जाना होता है। दोनों ही प्रकार की उक्त प्रक्रिया में उपबोधक के लिए समुदाय से सतत सम्पर्क बनाए रखना अनिवार्य हो जाता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि शाला कार्यक्रम का अन्तरंग भाग होने से निर्देशन सेवाओं का लाभ केवल छात्रों तक ही सीमित न रह कर शिक्षक अभिभावक समाज एवं समुदाय तक प्रसारित होता रहता है।

(२) शाला की नीति के अनुरूप

यदि उपरोक्त सिद्धान्त को मान्यता देकर हम निर्देशन सेवाओं को समूचे शालीय कार्यक्रम के एक अन्तरंग भाग के रूप में संगठित करते हैं तो द्वितीय निहित सिद्धान्त की व्याख्या हम यह कह कर सकते हैं कि एक वृहद निर्देशन कार्यक्रम को शाला की नीति के अनुरूप ही आयोजित विकसित किया जाना चाहिये। यदि निर्देशन कार्यक्रम शालाचर्या का अविच्छिन्न भाग है तो तर्कसंगत ही है कि शाला की सामान्य रीति-नीति उस पर भी लागू होगी। इस महत्वपूर्ण सिद्धान्त के व्यावहारिक अभिप्रेत अर्थ निम्न प्रकार से प्रस्तुत किए जा सकते हैं —

(क) आस्था

किसी भी शैक्षिक प्रक्रिया के लिये शाला की स्वीकृत नीति के अन्तर्गत स्थान प्राप्त कर सकने हेतु सर्वप्रथम शाला अधिकारियों की उस प्रक्रिया में मौलिक आस्था होना अनिवार्य होता है। वस्तुतः अधिकारियों के स्रोत से ही यह आस्था

उद्भूत होकर तब शाला कार्मिका तथा छात्रों तक विस्तृत हो पाती है। हम प्रारम्भ में ही कह चुके हैं कि किसी भी कार्यक्रम के सफल संचालन हेतु कार्यकर्ताओं की उसमें आस्था होना एक अनिवार्य पूर्वावश्यकता होती है। इस कथन का तात्पर्य यह कि आस्था होने पर ही कोई प्रक्रम शाला की निर्धारित नीति में समाहित किया जा सकता है और इस प्रकार सैद्धान्तिक रूप से समाहित हो चुकने पर ही उसके लिये शाला की नीति में प्रशासनिक प्रावधान किए जाते हैं।

(ख) न्यूनतम आर्थिक व्यवस्था

प्रशासनिक प्रावधान का प्रथम महत्वपूर्ण बिंदु है आर्थिक व्यवस्था। सैद्धान्तिक रूप से कितनी भी मान्यता दन पर भी यदि किसी कार्यक्रम के लिये आर्थिक प्रावधान नहीं किया जाता तो उसके क्रियान्वयन की स्थिति आने की सम्भावना बहुत कम रहती है। किसी भी शालीय क्रिया के लिये आर्थिक व्यवस्था तभी हो सकती है जबकि वह शाला की स्वीकृत नीति के अनुरूप हो। सामान्यतः यह पाया जाता है कि शाला की कार्यकारिणी के सदस्य—जो कि नगर के भिन्न भिन्न क्षेत्रों से भी आमन्त्रित किए जाते हैं—सभी शिक्षाविद् ही हों यह आवश्यक नहीं। कई बार इनमें से कुछ व्यक्ति वित्त व्यवसाय एवं उद्योग के क्षेत्रों में दक्षता प्राप्त किए होते हैं। शाला के वित्त आयकों को निर्धारित करते में तथा इन आयकों के अन्तर्गत मिली राशि वितरित करते समय वे सामान्यतः शाला आवश्यकता की पूर्ववर्तिताएं निर्धारित कर लेना उपयुक्त समझते हैं। स्पष्ट है कि पूर्ववर्तिताओं के निर्धारण का एक प्रमुख निर्देश तन्त्र शाला की स्वीकृत नीति में पाया जाता है। इसलिये यह आवश्यक है कि शाला का निर्देशन कार्यक्रम उसकी नीति के अनुसार ही हो।

(ग) उद्देश्य

निर्देशन कार्यक्रम का समाहार उद्देश्य हमने छात्रों का उनके समुचित विकास तथा सर्वांगीण समायोजन में सहायता के रूप में स्वीकार किया है। अब यह शाला की नीति के ऊपर अवलम्बित है कि वह विकास तथा समायोजन को किस रूप में देखती है। यों सामान्यतः तो किसी भी गणतंत्र में व्यक्तित्व के कुछ लक्षण एवं नागरिकता के कुछ गुण सर्वस्वीकृत से होते हैं। फिर भी प्रत्येक संस्था के अपने कुछ विशिष्ट नैतिक सामाजिक सांस्कृतिक-धार्मिक मूल्य होते हैं जिन्हें वह सतत अचेतन रूप से अपने छात्रों तक प्रेषित करती है। यह सामान्य अनुभव की बात है कि किसी व्यक्ति की बोली-चाली आचार विचार चाल-ढाल आदि देख कर हम अनायास ही कह उठते हैं कि यह व्यक्ति उस संस्था का प्राडक्ट होगा। व्यक्ति पर संस्था विशेष की छाप सी लग जाती है। अर्थात् व्यक्ति के निर्माण में शाला के स्वीकृत मूल्यों का निर्देशन-हस्त काम करता है।

उक्त तथ्य के सन्दर्भ में स्पष्ट है कि शाला के निर्देशन-कार्यक्रम के विशिष्ट उद्देश्य शाला के इन स्वीकृत मूल्यों के प्रकाश में ही निर्धारित किये जाने चाहिए।

(घ) सहयोग की सम्भावना

कई स्थानों पर हम यह स्पष्ट कर चुके हैं कि शाला का निर्देशन कार्यक्रम एक सहयोगी प्रयत्न है जोकि उपबोधक के तकनीकी नेतृत्व तथा प्रशासक के समाचारी निदेश में संचालित होते हुए शाला एवं समुदाय के कई व्यक्तियों से सक्रिय सहयोग की अपेक्षा करता है। विद्यालय तथा समाज के इन विविध कार्मिकों में यह वांछनीय सहयोग प्राप्त करने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि निर्देशन कार्यक्रम का आयोजन—सम्पन्न शालीय नीति के अनुसार ही हो। इस बिंदु पर हम तो यहां तक बल देना चाहेंगे कि विद्यालय के छात्र—जिनको प्रमुख केन्द्र मान कर निर्देशन कार्यक्रम संचालित किया जाता है—भी इस कार्यक्रम में अपना वांछनीय सहयोग तब तक न दे सकेंगे जबतक कि वे इन सेवाओं को शाला के सम्पूर्ण कार्यक्रम के आवश्यक अंग के रूप में न देख सकें तथा इन्हें शाला की नीति के अन्तर्गत न परख सकें।

(३) उपलब्ध साधन स्रोतों के आधार पर

सामान्यतः तो उपरोक्त सिद्धान्त के अनुवर्तन में ही इस तथ्य पर तर्कसंगत बल दिया जा सकता है कि शाला की नीति के अनुसार आयोजित तथा विद्यालय के संगठन के अविच्छिन्न भाग के रूप में विकसित निर्देशन कार्यक्रम के निर्माण एवं प्रशासन हेतु स्थानीय साधनों का अधिकतम उपयोग वांछनीय होता है। इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं कि आवश्यकतानुसार सरलता से प्राप्त होने वाले बाह्य उपकरणों का बहिष्कार किया जावे। स्थानीय साधनों पर विशेष बल देने के हमारे कुछ विशिष्ट कारण हैं जिन्हें निम्न अनुच्छेदों में प्रस्तुत किया जा रहा है।

(क) अपनत्व

सर्वप्रथम तो कोई भी नवीन कार्यक्रम प्रारम्भ करते में प्रश्न उपस्थित होता है अपनत्व का। नव विकासमान निर्देशन कार्यक्रम में स्थानीय शाला के कार्मिक स्वयं अपने आपको जितना अधिक अन्तर्ग्रस्त कर सकेंगे उतना ही वे इस कार्यक्रम को अपना समझेंगे अपने निजी उत्तरदायित्व परास के अन्तर्गत परख सकेंगे तथा अपनी ही कृति समझ कर इस पर अभिमान कर सकेंगे। वस्तुतः इस प्रकार की भावनाएं कार्मिकों में उत्पन्न हुए बिना निर्देशन कार्यक्रम शाला का अविच्छिन्न अंग बन भी नहीं सकता। यह एक अद्भुत वास्तविकता है कि बाहर से विशेषज्ञ कार्मिकों का आयात करके भी किसी कार्यक्रम के लिये वह आत्मीयता की भावना उत्पन्न नहीं हो सकती जो कि सामान्य स्थानीय कार्यकर्ताओं के कदाचित् कम तकनीकी किन्तु उत्साहपूर्ण प्रयासों द्वारा अनायास ही सृजित हो जाती है। यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि व्यक्ति के किसी कार्य में अन्तर्ग्रस्त होने का सरल सा हार्दिक उपाय है उसे उसके लिये उत्तरदायी बना देना।

(ख) उपकरणों के दृष्टिकोण से

यह तो हुई व्यक्तियों के रूप में साधन स्रोतों की बात। किन्तु व्यक्ति के

पश्चात् अथवा उसके साथ ही साथ प्रश्न उठता है कार्य करने के उपकरणों के रूप में साधन सुविधा की समस्या का। यह एक कटु वास्तविकता है कि कार्य करने के लिये तत्पर होने के उपरान्त यदि न्यूनतम उपकरणों की सुविधा प्राप्त न हो सके तो कार्यकर्ता को एक स्वाभाविक भग्नाशा होने की आशंका रहती है। उसे यह भास होने लगता है कि उसकी मूल्यवान ऊर्जा व शक्ति का उसके नियोजक द्वारा मानो अनुचित लाभ मात्र उठाया जा रहा है। तब वह अपने को सौंपे गए कर्त्तव्यों को केवल आज्ञा-पालन के रूप में ही सम्पन्न कर देता है और शाला निर्देशन कार्यक्रम में जो आत्मीयता का अंश आना चाहिये वह नहीं आ पाता।

अब कई बार तो और विशेष कर भारतवर्ष में उपकरण साधन के साथ ही मिली जुली समस्या रहती है आर्थिक प्रावधानों की। और यह समस्या हमारे देश में एक सर्वाव जटिलता लिए हुए हमारी कई शैक्षिक आयोजनाओं को अवरुद्ध किए हुए है। प्रश्न यह उठता है कि आवश्यक साधन उपकरण आयात करने हेतु अर्थ-व्यवस्था न होने की स्थिति में क्या किया जावे। इस प्रकार की स्थिति में दो ही विकल्प हो सकते हैं। या तो साधन-हीनता की स्थिति के सम्मुख धराशायी होकर कोई नवीन प्रगतिगामी कार्यक्रम हाथ में लेने का विचार ही त्याग दिया जावे। दूसरा आशावादी दृष्टिकोण यह भी हो सकता है कि तात्कालिक परिस्थिति में जो कुछ भी सामान्य सुविधा उपकरण उपलब्ध हैं उनके बहुमुखी उपयोग तथा इष्टतम अनुकूलन के सम्बन्ध में अग्रदर्शी प्रयास किए जावें। किसी भी विकासोन्मुख देश के लिये द्वितीय विकल्प अधिक लाभकारी है। इस तथ्य की पुष्टि विकसित देशों के इतिहास से कई उदाहरण प्रस्तुत करके की जा सकती है। प्रस्तुत सन्दर्भ में सबसे अधिक संगत उद्धरण अमेरिका के निर्देशन-इतिहास का ही हो सकता है जहाँ पर न्यूनतम उपलब्ध साधनों से विश्वासपूर्वक उद्यमी होकर आज वहाँ के निर्देशन कार्यक्रम उस स्थिति पर पहुँच चुके हैं जहाँ पर कदाचित् साधनों के आधिक्य का समुचित उपयोग भी कहीं-कहीं पर विचारणीय प्रश्न बन जाता है।

इस स्थल पर हम पाठकों का ध्यान एक और सम्बन्धित मनोवैज्ञानिक मनोवृत्ति की ओर आकर्षित करना चाहते हैं। कई बार जब व्यक्ति कोई नवीन काम में अन्तरंग रूप से निहित सावधानी को अपनाने में असमर्थ होता है तब इस दुर्बलता की स्थिति को स्पष्टरूपेण स्वीकार कर लेने की अपेक्षा साधनहीनता के सदृश कोई वास्तविक बहाने की ओट में पलायन कर जाना उसके लिए बहुत अधिक सरल हो जाता है। दुर्भाग्यवश इस प्रकार की कर्मण्यहीनता के कई उदाहरण हमारे देश के विविध क्षेत्रीय जीवन से प्रस्तुत किए जा सकते हैं। इस असंगत विवेचन में न उलझ कर हम यहाँ पर तो इसी बात पर अधिकतम बल देना चाहेंगे कि भारतवर्ष जैसे विकासमान देश में उपलब्ध साधनों का इष्टतम उपयोग करने से ही हम प्रगति की राह पर अग्रसर हो सकते हैं। और फिर एक अत्यन्त आशापूर्ण

सत्य इस सम्बन्ध में यह है कि सामान्यतः तो जीवन के विविध क्षेत्रों में भारतवर्ष एक प्राकृतिक साधन सम्पन्न देश है। यहाँ पर अधिक महती समस्या प्रायः इन साधनों के श्रेष्ठतम उपयोग की हो रही है। इस श्रेष्ठतम उपयोग के लिये आवश्यक है साधन सम्पन्नता का गुण—जिसका विकास निर्देशन कार्यक्रम के प्रत्येक आंगिक के रूप में साथ साथ चलते रहना चाहिए।

(ग) तकनीकी दृष्टिकोण

उपलब्ध साधनों के उपयोग के सम्बन्ध में एक कारण हम शुद्ध तकनीकी दृष्टिकोण से भी प्रस्तुत करना चाहेंगे। यह एक वैज्ञानिक सत्य है कि बाहर से आयात किया गया अत्यन्त उच्चकोटि का तकनीकी उपकरण भी कई बार स्थानीय परिस्थितियों में अप्रमाणीकृत होने के कारण उन परिस्थितियों में न तो अनुकूल हो पाता है न प्रभावोत्पादक ही। भारतवर्ष में मनोवैज्ञानिक परीक्षण का इतिहास इस तथ्य को सिद्ध करता है कि ये परीक्षण प्रारम्भ करने के समय हमने कई विदेशी उपकरणों का शुद्ध आयात मात्र करके इस प्रकार की बहुत त्रुटियाँ कीं। बाह्य उपकरणों का शुद्ध आयात मात्र न करके यदि उनका स्थानीय जनता के आधार पर अनुकूलन कर लिया जाये तब तो वे उपकरण वैज्ञानिक कार्य में लाभदायक सिद्ध हो सकते हैं, अन्यथा अपने मूलस्वरूप में उपयोग किए जाने पर तो इनसे लाभ प्राप्त करने के स्थान पर उनसे हानि के होने की अधिक आशंका रहती है। उपकरणों का अनुकूलन करने में भी पुनः स्थानीय साधन सुविधा एवं स्थितियों का ध्यान रखना पड़ता है—और इसीलिए हमने उपलब्ध साधनों के उपयोग को हमारे सामान्य सिद्धान्तों में एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है।

(४) कार्मिकों का तत्परता स्तर

हमारे पूर्व विवेचन में कई स्थलों पर शाला कार्मिकों के सहयोग की महत्ता पर बल दिया गया है। सहयोग तथा तत्परता का अत्यन्त निकट सम्बन्ध होता है। वस्तुतः यदि यह कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि व्यावहारिक सहयोग एक बहुत बड़ी सीमा तक तो व्यक्ति की मानसिक तत्परता पर निर्भर रहता है।

(क) मानसिक तत्परता

इस मानसिक तत्परता को प्रभावित करने वाले कई घटक हो सकते हैं। प्रशासकीय दृष्टिकोण से तो सबसे सीधा सम्बन्ध इस स्थिति का होता है नायक-नेतृत्व के सामान्य उपागम से। कार्य अधिकारी की मनोवृत्ति का कार्मिक की कार्य तत्परता पर गहरा प्रभाव पड़ता है। केवल वेतन के बल पर आदेश पालन करवाने की प्रवृत्ति रखने वाला प्रशासक अपने सहकर्मियों को सही माने में कार्यतत्पर कर सकने में बहुत अधिक सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। एक कुशल प्रशासक तो सामान्यतः यह भावना प्रसारित करने की क्षमता रखता है कि उसके कर्मचारी ही उसकी समस्त कार्य योजनाएं बना रहे हैं और इसलिये उन्हें पारित करने में भी

उन्हीं की व्यक्तिगत रुचि है। इस प्रकार की भावना से कार्मिक कार्य सफलता को अपनी उपलब्धि मान कर सन्तोष ग्रहण कर सकते हैं—और अनायास ही सदैव कार्य-तत्पर रहते हैं।

उपबोधक के तकनीकी नेतृत्व के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। शाला के अपेक्षाकृत कम प्रशिक्षित कार्मिकों को कार्य तत्पर कर सकने के लिए यदि वह अपनी तकनीकी क्षमता का अत्यधिक प्रयोग में लेता है तो उसे न केवल अपने इस तात्कालिक उद्देश्य में असफलता मिलेगी अपितु अपने अंतिम लक्ष्य-निर्देशन कार्यक्रम के इच्छित सञ्चालन-में भी उसे केवल असहयोग का ही सामना करना पड़ेगा। अतएव सर्वप्रथम तो कार्य अधिकारियों को सही नेतृत्व उपागम द्वारा कार्मिकों में कार्यतत्परता उत्पन्न करनी चाहिए।

(ख) बौद्धिक तकनीकी तत्परता

मानसिक तत्परता के पश्चात् प्रश्न उठता है बौद्धिक-तकनीकी तत्परता का जो कुछ अधिक वैज्ञानिक होते हुए अधिक व्यावहारिक भी है। अपने नेतृत्व उपागमों से कार्मिकों को कार्य के लिए प्रोत्साहित एवं तत्पर करने के उपरान्त भी जो अत्यन्त व्यावहारिक समस्या उपस्थित होती है वह है वास्तविक कार्य कौशल्य की। मानसिक रूप से पूर्णतः कार्य-तत्पर हो चुकने पर भी यदि कार्मिक में कोई वैज्ञानिक कुशलता नहीं है तो असफलता जन्य स्वाभाविक भग्नाशाएं उसकी कार्यतत्परता को विपरीत ढंग में प्रभावित कर सकती है। इसके लिए अत्यन्त आवश्यक है कि शाला-कार्मिकों को किसी नवीन कार्यक्रम में संलग्न करने के पूर्व उन्हें उपयुक्त रूप से वैज्ञानिक अभिविन्यास प्रदान किया जाय। इसके सम्बन्ध में अध्याय के अन्तिम अंश में कुछ व्यावहारिक सुझाव दिए जावेंगे।

(५) उद्देश्यों की स्पष्ट व्याख्या

यह तो किसी कार्यक्रम के सम्बन्ध में सामान्यतः स्वीकृत सत्य है कि उद्देश्यों की स्पष्ट व्याख्या किए बिना कार्मिकों के समय शक्ति धन व ऊर्जा के निरुद्देश्य नष्ट होने की आशंका बनी रहती है। विशेष कर जब कोई अपेक्षाकृत नूतन प्रयास हाथ में लिया जाता है तब तो उसके उद्देश्यों के सम्बन्ध में पूर्णरूपेण स्पष्ट हो जाने की आवश्यकता सर्वोपरि रहती है। यह स्पष्टता केवल अधिकारियों तक ही सीमित न रहकर प्रत्येक कार्मिक तक प्रसारित होनी चाहिए।

उद्देश्यों का वर्गीकरण दो प्रकार से किया जा सकता है—

आदर्श—व्यावहारिक

अन्तिम—तात्कालिक

दोनों ही वर्गीकरणों के सम्बन्ध में निम्न प्रकार से अधिक स्पष्टता प्राप्त की जा सकती है।

(क) आदर्श-व्यावहारिक

यों तो सभी उद्देश्य एक प्रकार से एक आदर्श के रूप में ही परिभाषित होकर

कार्य-योजना एवं वास्तविक क्रियाओं का निम्न प्रकार अन्तर करते हैं किन्तु यहाँ पर इस वर्गीकरण से हमारा तात्पर्य प्रकार्यात्मकता के सन्दर्भ में है। एक आदर्श दृष्टिकोण से तो कोई बात अत्यन्त वाञ्छनीय हो सकती है किन्तु कई बार उन्हें सैद्धान्तिक स्वीकृति प्रदान करते हुए भी वास्तविक परिस्थितियों की सीमितताएं उनके क्रियान्वयन को अवरुद्ध कर सकती हैं। ऐसी परिस्थिति में वास्तविकता को ध्यान में रखकर कुछ व्यावहारिक उद्देश्यों की व्यवस्था बनानी पड़ती है। वस्तुतः उपादेय कार्य-योजना की दृष्टि में तो यह अत्यन्त वांछनीय होगा कि आदर्श की ही कल्पना में न उलझे रहकर व्यावहारिकता के मार्ग को भी आवश्यक रूप से अपनाया जाय। कई बार बहुत अच्छे लगने वाले आदर्श उद्देश्य अव्यावहारिक होने के कारण या तो सुन्दर नारों के रूप में ही प्रस्तावित होकर भी अक्रियान्वित बने रहते हैं अथवा अपनी अनुपयुक्तता के कारण कार्यकर्ताओं को सामान्य निष्फल करके उन्हें सन्तोष से दूर ले जाते रहते हैं।

विशेष कर निर्देशन कार्यक्रम तो प्रकृति से ही केवल सैद्धान्तिक नीति मात्र न होकर एक प्रकार्यात्मक वास्तविकता है। जैसा कि पुस्तक के आरम्भ में ही हम कह चुके हैं शिक्षा के क्षितिज पर इस नूतन क्षेत्र का उदय ही इसलिए हुआ कि कई अनिवार्य आवश्यकताओं का सफल क्रियान्वयन किया जा सके। अतएव यह आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य है कि किसी भी शाला के प्रस्तावित निर्देशन कार्यक्रम में उद्देश्य एक स्वीकृत आदर्श की पृष्ठभूमि में विचार करके भी स्थानीय परिस्थितियों की व्यावहारिकता को अवश्य ध्यान में रखें।

(ग) अन्तिम तात्कालिक

आदर्श तथा अन्तिम एक बहुत बड़ी सीमा तक अन्तःसम्बन्धित तथ्य हैं। किसी भी प्रस्तावित कार्यक्रम के अन्तिम उद्देश्य एक प्रारम्भ ध्रुव तारे के सदृश सुदूर से भी सतत प्रकाश की रश्मियाँ प्रसारित करते रहते हैं। इन रश्मियों के निर्देशन आलोक में व्यक्ति शनैः शनैः किन्तु विश्वासपूर्वक अपने चरम एवं वांछनीय आदर्श की दिशा में अग्रसर करता रहता है। किन्तु इस दिशा के मार्ग में कई कठिनाइयाँ-बाधाएँ रहती हैं और धैर्यपूर्वक उन्हें पार करने पर ही व्यक्ति अपने अन्तिम लक्ष्य की ओर जा सकता है। इस यात्रा को अधिक सरल एवं स्वीकार्य बनाने के लिए यह अत्यन्त वांछनीय होगा कि इस लम्बी राह पर कुछ उपयोगी विश्राम-स्थल निर्धारित कर लिए जाय। कतिपय तात्कालिक ध्येयों के रूप में इस प्रकार के विश्राम स्थल निश्चित किए जा सकते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं है कि ये तात्कालिक ध्येय उस अन्तिम आदर्श के आधार में ही आयोजित होना चाहिए।

अन्तिम के साथ साथ ही कुछ तात्कालिक ध्येय भी निर्धारित करने का एक और महत्त्वपूर्ण कारण इस बात के मनोवैज्ञानिक पक्ष से सम्बन्धित है। सामान्यतः प्रत्येक व्यक्ति अपने कार्य में उपलब्धि की सन्तुष्टि प्राप्त करना चाहता है किसी

नवीन प्रायोजना में तो इस प्रकार की प्रारम्भिक सन्तुष्टियाँ अत्यन्त आवश्यक हैं। वस्तुतः ये सन्तुष्टियाँ ही व्यक्ति को किसी नवीन मार्ग पर अग्रसर हो सकने हेतु सकारात्मक प्रेरणा का कार्य करती हैं। इसलिए अत्यन्त आवश्यक है कि अंतिम आदर्श की पृष्ठभूमि में कतिपय तात्कालिक ध्येयों की व्याख्या कर दी जावे जिनकी उत्तरोत्तर सफल साधना के रूप में कार्मिकों को सतत प्रेरणा प्राप्त कर सके।

कई बार कुछ तात्कालिक ध्येयों के निर्धारण के पीछे आर्थिक कारण भी रहते हैं। किसी भी नवीन कार्यक्रम की उसकी सम्पूर्णता में ही वांछनीयता स्वीकार करते हुए भी अर्थाभाव की वास्तविक सीमितता के कारण कार्यक्रम के सभी पक्षों का सहगामी आयोजन सम्भव नहीं हो सकता। ऐसी परिस्थिति में कार्यक्रम को बिल्कुल ही त्याग देने की अपेक्षा अधिक वांछनीय यह होगा कि उसका उपयुक्त प्रवस्थीकरण कर लिया जाय। प्रारम्भ में उसके न्यूनतम महत्वपूर्ण पक्षों से प्रारम्भ करके साधन सुविधाओं की उपलब्धि के अनुकूल शनैः शनैः उसका अन्य आयामों में विस्तार किया जा सकता है।

भारतवर्ष में निर्देशन—कार्यक्रम को प्रारम्भ करने के लिये तो इस प्रकार के प्रवस्थीकरण की अत्यन्त आवश्यकता है। इस सम्बन्ध में अधिक प्रकाश्य सुझाव तथा व्यावहारिक उदाहरण पुस्तक के अंतिम अध्याय में दिए गए हैं।

(६) स्पष्ट योजना

स्पष्ट उद्देश्यों के तार्किक अनुक्रम में आती है स्पष्ट योजना। कहने का तात्पर्य यह कि सामान्यतः कार्य-योजना का स्वरूप निर्धारित उद्देश्यों के अनुरूप ही आयोजित होता है। यदि उद्देश्यों में कुछ भी भ्रान्ति हुई तो कार्य-योजना के स्वरूप को धुंधला तथा उसे संचालित करने—वालों में ही कार्यकर्ताओं के भटक जाने की आशंका रहती है। किन्तु निश्चित उद्देश्यों द्वारा निर्देशित योजना का स्वरूप तथा उसके कार्य चरण भी उन्हीं के अनुरूप सुस्पष्ट होते हैं।

यहाँ पर स्पष्ट योजना का एक सिद्धान्त के रूप में प्रस्तुतिकरण एक और दृष्टिकोण से किया जा रहा है। किसी भी योजना के सुचारु क्रियान्वयन के लिए आवश्यक है कि उस योजना के अन्तर्गत कार्य करने वाले कार्मिकों के विशिष्ट उत्तरदायित्व उनकी विशेष भूमिकाएं तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धों का अत्यन्त ही निश्चित शब्दों में स्पष्टीकरण कर दिया जावे। इस स्पष्टता के अभाव में कई बार शुभाशंसी होते हुए भी कार्मिक अपना कार्य प्रभावशाली ढंग से नहीं कर सकते। उनके मन में अपने स्वयं के सम्बन्ध में भ्रान्ति हो सकती है दूसरे के कार्य क्षेत्र में अतिक्रमण कर बैठने की अनावश्यक आशंका हो सकती है अथवा आदेश लेने या देने के सम्बन्ध में प्रशासनीय संकोच हो सकता है। ये सभी तत्व सफल कार्य संचालन में अवरोधक ही सिद्ध होते हैं।

चूंकि इस सिद्धान्त को हम निर्देशन कार्यक्रम के संगठन एवं प्रशासन के संचालन का एक प्रमुख आधारशिला मानते हैं इसलिये अध्याय में एक स्थान

खण्ड में ही इसका विशद् विवेचन करना उपयुक्त समझा गया।

कार्मिकों की भूमिकाएं एवं अन्तर्सम्बन्ध

यों तो निदेशन-संबंधी कार्यक्रम का आयोजन, संगठन, संचालन, प्रशासन एवं मूल्यांकन शाला के समस्त कार्मिकों का एक सहयोगी प्रयास होता है। यह सत्य है कि इस प्रक्रम का कतिपय प्रमुख गुरु एवं वजनदारी प्रक्रियाओं का विशिष्ट उत्तरदायित्व उपबोधक तथा प्रशासक के ऊपर पड़ सकता है। किन्तु वास्तविकता के बावजूद भी निदेशन कार्यक्रम की सफलता के लिये यह अनिवार्य है कि समस्त शालाय तथा कर्मचारी व कर्मचारियों की भी समय यथायोग्य साझेदारी हो। सामान्यतः प्रशासक तथा उपबोधक का उत्तरदायित्व तो मुख्यतः कार्यक्रम के प्रशासकीय अथवा तकनीकि पक्षों से हो सकता है। किन्तु इन केन्द्रीय पक्षों के अतिरिक्त भी कार्यक्रम का अन्य अन्तरंग प्रक्रियाएं होती हैं। जिन्हें सम्पन्न करने में विविध भांति के कार्मिकों का सहयोग अपेक्षित होता है। यह कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि समग्र कार्यक्रम की प्रभाविता एकाकी व्यक्ति के स्वतन्त्र निष्पादन में सम्बन्धित होती है।

इसके अतिरिक्त एक और अन्तरंग समस्या है जिसमें प्रक्रियाओं का जोकि समस्त कार्मिकों के समुचित सन्याय की अनिवार्यता को वर्जित हो करता है। स्वतन्त्र रूप से विभिन्न प्रकार की प्रकृति को लिए हुए भी विविध निदेशन प्रक्रियाएं एक दूसरे से इतनी घनिष्ठता में सम्बन्धित रहती हैं कि एक प्रक्रिया की दुर्बलता का अन्य प्रक्रियाओं के स्वरूप पर हानिप्रद प्रभाव पड़े बिना रह नहीं सकता। इस तथ्य की समता मानवीय शरीर रचना की समग्रता से की जा सकती है जहाँ पर विविध अन्तरंगवर्ती अवयव भिन्न-भिन्न प्रक्रियाएं करते हुए भी एक दूसरे के कार्यों को अनिवार्य रूप से प्रभावित करते रहते हैं। मानव को स्वस्थ एवं प्रसन्नचित्त बनाया रखने के लिए आवश्यक है कि उसका प्रत्येक अंग हृष्टपुष्ट हो तथा उसकी विशिष्ट कार्यक्षमता से सम्पन्न हो। तभी वह व्यक्तिगत रूप क्रियाशीलता के साथ ही अन्य अंगों के कार्य को भी परिपुष्ट करते हुए समस्त शरीर के संचालन को एक स्वस्थ परिपूर्णता प्रदान कर सकेगा।

इस प्रकार के आन्तरिक समन्वय को सम्भव कर सकने के लिये आवश्यक है कि पहले तो प्रत्येक अंग के स्वतन्त्र कार्य को अच्छी तरह समझ लिया जाय ताकि उसमें व्यक्तिगत रूप से कोई कमी न रहने पावे। तत्पश्चात् विविध अंगों के अन्तर्सम्बन्धों का भी अध्ययन कर लिया जावे जिससे उनके पारस्परिक आदान प्रदान का भी इष्टतम स्वरूप निर्धारित किया जा सके। अध्याय के इस अंश में इसी उद्देश्य को लेकर निदेशन कार्यक्रम के विविध कार्मिकों की विशिष्ट भूमिकाओं का स्वतन्त्र विवेचन तथा अन्तर्सम्बन्धी स्वरूप दोनों ही का विशद् रूप में प्रस्तुतिकरण किया जा रहा है। प्रत्येक कार्मिक की भूमिका के स्वतन्त्र वर्णन में ही अन्य कार्मिकों के साथ उसके अन्तर्सम्बन्धों का भी स्पष्टीकरण करने का प्रयास किया जावेगा।

(१) प्रधानाध्यापक

शाला के समस्त कार्यकलापों में प्रधानाध्यापक की महत्वपूर्ण भूमिका को एक ही कुंजी-पद में सारांकित किया जा सकता है—और वह पद है "प्रत्यक्ष नेतृत्व"। चूंकि भारतवर्ष की माध्यमिक शालाओं में तो एक अन्तरंग भाग के रूप में निर्देशन कार्यक्रमों की आयोजना एक अपेक्षाकृत नूतन विचार है इसलिये इस क्षेत्र में प्रधानाध्यापक के नेतृत्व को "प्रत्यक्ष" के साथ साथ अत्यन्त "सबल" भी होने की आवश्यकता है। एक लम्बे समय से चली आती हुई स्कूल-प्रेक्टिस से तो शाला कार्मिक इतने अभ्यस्त हो जाते हैं कि वह प्रक्रिया एक स्वाभाविक ढंग से शाला के समूचे कार्य-ढांचे में गुंथी हुई अनायास ही चलती जाती है। इस प्रचलित ढांचे के परिचित ढर्रे में किसी नूतन तत्व का प्रविष्ट करने का अर्थ होता है-समूचे ढांचे के स्वरूप एवं उसकी गतिविधि में परिवर्तन। चूंकि इस प्रकार के परिवर्तन से कई स्थलों पर कई व्यक्ति कई प्रकार से प्रभावित होते हैं—इसलिये इस सम्बन्ध में कोई भी प्रतिक्रियावादी चरण उठाना साहस की अपेक्षा करता है और इसीलिये हमने कहा है कि प्रधानाध्यापक के नेतृत्व को प्रत्यक्ष के साथ साथ इस सन्दर्भ में सबल भी होना अपेक्षित है।

नूतन कार्यक्रम का अर्थ होता है अधिक कार्य। और यह भी सामान्यतः हमारी प्रचलित परिस्थितियों में सत्य है कि अपेक्षित परिवर्धित कार्य की तुलना में कार्मिकों को समानुपाती आर्थिकोन्नति प्रदान करना प्रधानाध्यापक के लिए सम्भव नहीं है। इस प्रकार की परिस्थितियों के सन्दर्भ में उसके कुछ विशिष्ट उत्तरदायित्वों का निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत अधिक स्पष्ट विवेचन किया जा सकता है।

(क) स्पष्ट स्वीकृति किसी भी शालीय सेवा के प्रारम्भ, संचालन अथवा समाप्ति के लिए भी शाला प्रशासक की स्पष्ट स्वीकृति एक प्राथमिक अनिवार्यता होता है। वित्तीय प्रावधान, भौतिक व्यवस्था तथा कार्यकारी प्रबन्ध हेतु तो यह स्वीकृति निश्चित रूप से कई प्रशासकीय कार्यवाहियों में प्रतिबिम्बित होती ही है। किन्तु यहां पर हमारा तात्पर्य विशिष्ट रूप से प्रशासक की मानसिक-संवेगात्मक स्वीकृति से है। यों तो उच्चाधिकारियों से आए हुए कई अन्य कार्यक्रमों से असहमत होते हुए भी उसे उन्हें न केवल व्यावहारिक रूप से स्पष्ट स्वीकृति देनी पड़ती है अपितु उनकी प्रशासनिक व्यवस्था में न चाहते हुए भी कई सक्रिय कदम उठाने पड़ते हैं। यहां पर उसकी स्थिति होती है आदेश के पालनकर्ता की न कि आदेश के आलोचक की। इस प्रकार की स्थिति में इन कार्यक्रमों को पूर्ण रूपेण से सम्पन्न कर सकने पर भी वह इनमें अपनत्व का अनुभव नहीं कर सकता। जहां शाला निर्देशन कार्यक्रम का प्रश्न है वहां हमें इसे एक बहुत बड़ी सीमा तक शाला शासक की निजी पहल के सृजन के रूप में देखना चाहिए। इससे हमारा यह तात्पर्य नहीं कि उच्चाधिकारियों का इसमें कोई सम्बन्ध न रहे। वस्तुतः हम तो यह चाहते हैं कि वे भी इसमें सक्रिय रूप से अन्तर्ग्रस्त किए जा सकें। यह किस प्रकार हो सकता है इसका

विवेचन हम स्वतन्त्र शीर्षक के अन्तर्गत करेंगे। यहाँ पर तो इतना ही कहना संगत होगा कि निर्देशन कार्यक्रम के लिए शाला प्रशासक की स्पष्ट स्वीकृति उच्चाधिकारियों के आदेश द्वारा अन्तर्प्रेरित न होकर उनके निजी प्रेरणा से प्रसूत होनी वाञ्छनीय है। तभी उसमें वह आत्मीयता का पुट आ सकेगा जो कि किसी शालीय कार्यक्रम में जीवन-स्पन्दन उत्पन्न कर सकता है। मानसिक बौद्धिक रूप से इसे स्वीकार करने पर उसकी मनोवृत्ति निर्देशन कार्यक्रम सम्बन्धी उसकी विविध व्यवस्थाओं में झलकती रहेगी। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह होगी कि वह व्यक्तिगत रुचि लेता हुआ इसमें सम्बन्धित सभी क्रिया कलापों में अधिकाधिक रूप से उपस्थित रहने का प्रयास करेगा।

(ख) कार्मिकों की अनुकूल अभिवृत्तियाँ—प्रधानाध्यापक की ऐसी स्पष्ट मानसिक स्वीकृति तथा उससे उत्पन्न निर्देशन कार्यक्रम सम्बन्धी उसके अनुकूल मनोभाव का शाला-कार्मिकों पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ेगा। यह तो एक अनुभूत वास्तविकता है कि शाला कार्यक्रमों की पूर्वसंगतता शाला प्रशासक की निजी रुचियों पर एक बहुत बड़ी सीमा तक निर्भर रहती है। शाला का प्रधान जिस कार्यकलाप को महत्त्वपूर्ण समझता है उसमें शाला कार्मिक भी अनायास ही रुचि लेने लगते हैं और यह भी एक सिद्ध सत्य है कि कार्मिकों की रुचि के बिना कोई भी कार्यक्रम सफलता प्राप्त नहीं कर सकता।

इस सम्बन्ध में जो बात हमने शाला प्रधानाध्यापक तथा उच्च प्रशासकीय अधिकारियों के लिए कही थी उसे ही पुनः शाला-कार्मिक तथा शाला प्रधान के सन्दर्भ में दोहरा सकते हैं। हमने कहा था कि केवल एक उच्चादेश के पालन मात्र के रूप में यदि प्रधानाध्यापक किसी शालीय कार्यक्रम को सम्पन्न करता है तो उसमें वह प्रयत्न का प्राण नहीं फूँक सकता। इसी सामान्यानुमान को अन्य स्तर पर चरितार्थ करते हुए हम कह सकते हैं कि यदि शाला-कार्मिक अपने निर्देशन विषयक उत्तरदायित्वों को केवल शाला प्रधान के आदेश-पालन के रूप में ही पालित करते हैं तो वे उस कार्यक्रम को आत्मीयता से नहीं सजो सकेंगे। इस कार्यक्रम की प्रकार्यात्मक सफलता के लिए तो आवश्यक है कि शाला का प्रत्येक कार्मिक इस स्तर की आत्मीयता से इसे-परख कि वह इसमें अनायास ही अनुरक्त हो सके। शाला के प्रधानाध्यापक का यह प्रधान उत्तरदायित्व हो जाता है कि वह इस प्रकार की अनुकूल मनोवृत्तियों का अपने सहकर्मियों में सृजन कर सके।

इस प्रकार की मनोवृत्तियों से प्रशासक शिक्षक सम्बन्धों में भी एक आनन्ददायी समरसता उत्पन्न हो जाती है। प्रशासन सम्बन्धी साहित्य में एक शाला प्रशासक की तुलना प्रायः चाक की धुरी से की जाती है तथा उसके सहकर्मियों की समता धुरी से संयुक्त कई शलाकाओं से। स्पष्ट है कि इन शलाकाओं की गति शाला रूपी संचालन के पिये धुरी की गतिविधियों द्वारा पूर्णरूपेण अनुशासित होती है। शाला प्रशासक की मनोवृत्तियाँ, रुचियाँ एवं अभिवृत्तियाँ ही मूलतः शाला-कर्मचारियों के कार्य व्यापारों तथा क्रिया पूर्ववर्तिताओं को निर्धारित

करती है और यह एक तर्कसंगत तथ्य है कि किसी भी कार्यक्रम की सफलता में कार्यकर्ताओं की मनोवृत्तियों का एक बहुत बड़ा अंश रहता है। तो हम यह समझ हैं कि इस अंश का अप्रत्यक्ष आधार शाला प्रधानाध्यापक ही होता है तथा उसे यह भूमिका कुशलतापूर्वक निभा सकनी चाहिए।

(ग) प्रशासकीय प्रावधान उक्त अनुच्छेद में विवेचित प्रशासक की मानसिक मनोवृत्तियों की एक प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति होती है शाला कार्यक्रम हेतु प्रस्तुत किए गए प्रशासनिक प्रावधानों में। चूंकि व्यावहारिक क्रियान्वयन की दृष्टि से यह प्रावधान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है इसलिए निम्न स्पष्ट शीर्षकों के अन्तर्गत इनका स्पष्टीकरण एवं संक्षिप्त व्याख्या का प्रस्तुतिकरण किया जाएगा।

(अ) वित्तीय प्रावधान

माध्यमिक शाला के बजट की मोटी रूपरेखा का निर्धारण तो प्रायः उच्च स्तरीय शिक्षा विभागों से ही होता है किन्तु उस बजट में शालोपयोगी नूतन एवं प्रगतिगामी प्रस्तावों को समाहित करने का उत्तरदायित्व शाला प्रधान का ही होता है। इसलिए सर्वप्रथम तो प्रधानाध्यापक को शालीय निर्देशन सेवाओं के नवीन शाक्षिक कार्यक्रम हेतु एक न्यूनतम धनराशि अनुमोदित करवा लेनी चाहिए। यह सक्रिय भूमिका केवल शाला प्रधान ही अदा कर सकता है।

इस प्रारम्भिक अनुमोदन के पश्चात् निर्देशन सेवाओं की प्राथमिक स्थापना एवं संचालन में नई-नई छोटी मोटी मदों हेतु प्रधानाध्यापक की अनुमति अपेक्षित होती है। कई बार कुछ सामान्य से प्रोत्साहन प्रदान करके विविध स्तरीय कर्मिकों को इस नूतन कार्यक्रम में प्रवृत्त करना पड़ता है। कभी निर्देशन सम्बन्धी सभाओं को आकर्षक बनाने हेतु कुछ नाश्ता आदि की भी व्यवस्था करनी पड़ती है। इस प्रकार के विविध कार्य-कलापों के लिए छोटी-मोटी धनराशि की आवश्यकता पड़ती ही रहती है। अतः ऐसे अवसरों पर उसका प्रावधान कर सकना एक कुशल प्रशासक की सूझ बूझ पर एक बहुत बड़ी सीमा तक निर्भर रहता है।

(आ) कर्त्तव्यों का वितरण

निर्देशन-कार्यक्रम के स्वरूप का विवेचन करते समय ही इस तथ्य पर बल दिया जा चुका है कि वह एक सहयोगी प्रक्रम है। किन्तु प्रभावात्मक रूप से इस सहयोग को निष्कंटक बनाने के लिए अत्यन्त आवश्यक है कि विविधस्तरीय कर्मिकों की विभिन्न सहयोगी भूमिकाओं में अनावश्यक द्वन्द्व उत्पन्न न होने पावें। ऐसी सुरक्षा निश्चित सम्भव करने की पूर्वावश्यकता है विभिन्न कार्यकर्ताओं के दायित्वों एवं उत्तरदायित्वों के सम्बन्ध में अधिकतम स्पष्टता।

सामान्यतः एक प्रशासक के कौशल की प्राथमिक पहचान इस तथ्य से होती है कि उसके द्वारा दी गई कर्त्तव्य दत्तता में कितना औचित्य सगति एवं स्पष्टता है। इस भूमिका को सफलतापूर्वक निभाने हेतु जहाँ उसे एक ओर शाला की आवश्य

क्रियाओं का एक सर्वांग मानचित्र सतत सम्मुख रखना पड़ता है वहाँ दूसरी ओर अपने विद्यालय के प्रत्येक कार्मिक की एकक रुचि, अभिक्षमता, योग्यता आदि का समुचित अवबोध प्राप्त करना होता है। तभी वह क्रिया की प्रकृति तथा कार्यकर्ता के स्वभाव के मध्य समुचित संगति स्थापित करके श्रेष्ठतम कार्य-सम्पादन करवा सकेगा।

क्रिया-चयन तथा कार्मिक स्वभाव की संगतता के अतिरिक्त एक और समस्या का प्रशासक को वर्गीय वितरण के समय ध्यान रखना पड़ता है और वह है किसी क्रिया के उत्तरदायित्व से संयुक्त कार्यकर्ताओं की प्रकृति में समरसता। उदाहरणार्थ यदि पर्यावरणीय सूचना सेवा के आयोजन का उत्तरदायित्व कुछ अध्यापकों को एक साथ दिया जा रहा है तो प्रशासक को पहले आश्वस्त हो जाना चाहिए कि इन व्यक्तियों में एक टीम का सामरस्य है। विरोधी स्वभाव वाले अथवा पारस्परिक पूर्वाग्रह वाले कार्यकर्ताओं के एक साथ किसी कार्य का उत्तरदायित्व देने से उस कार्य की गति अवरुद्ध हो जाने की ही आशंका अधिक रहती है।

एक समूह में किसी कार्य हेतु कार्यकर्ताओं के स्वभाव की समरसता से मिलता-जुलता एक और नाजुक प्रश्न है और वह है उनकी वरिष्ठता एवं योग्यता-स्तरों का। सामूहिक रूप से किसी कार्य का उत्तरदायित्व व्यक्तियों को देते समय उस समूह के संयोजक को निश्चित करना आवश्यक हो जाता है। संयोजक को पुनः एक प्रशासक की भूमिका निभाते हुए अपने समूह का कार्य आयोजन करना पड़ता है क्योंकि उत्तरदायित्वों का विभाजन करना होता है तथा समय-समय पर कार्य सम्बन्धी विविध नियम भी निर्देश के रूप में प्रसारित करने पड़ते हैं। ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक ही है कि कोई वरिष्ठ अथवा सुयोग्य व्यक्ति अपने से निम्न स्तरीय व्यक्ति से किसी प्रकार का निर्देश आदेश ग्रहण करना पसन्द नहीं करता और यदि दुर्भाग्यवश इस प्रकार की परिस्थिति उत्पन्न कर दी गई तो कार्यकर्ताओं के पारस्परिक सम्बन्धों में मनमुटाव आ जाने की आशंका रहती है जो कि समूचे कार्य के स्तर को विपरीत रूप में प्रभावित कर सकता है।

(द) भौतिक कार्य-व्यवस्था

चूँकि निर्देशन सेवाओं का संचालन एक शुद्धरूपेण प्रकार्यात्मक कार्यक्रम है इसलिए उसके प्रशासन हेतु कतिपय न्यूनतम भौतिक आवश्यकताओं का होना स्वाभाविक है। उपबोधन कार्य के लिए एक स्वतंत्र एवं एकान्त कक्ष, वैयक्तिक अनुसूचियों के व्यवस्थित अनुरक्षण हेतु स्थान एवं साधन, पर्यावरणीय सूचनाओं के प्रदर्शन प्रसारण हेतु बुलेटिन बोर्ड आदि उक्त आवश्यकताओं के कुछ सामान्य उदाहरण हैं। इन आवश्यकताओं की संवेदना तथा उनकी सहज भाव से पूर्ति एक प्रशासक की ही भूमिका के अन्तर्गत आता है। निर्देशन के कार्यक्रम में सामान्यतः [illegible] दत्त विश्लेषण एवं सूचना प्रेषण की आवश्यकता पड़ती रहती है। इस प्रकार के कार्यों के लिए तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणी के कार्मिकों की सहायता भी अपेक्षित होती

है। स्पष्ट है कि यह सहायता बिना प्रशासक के स्पष्ट आदेश के प्राप्त नहीं हो सकती।

(इ) समय सारणी मे प्रावधान

हमने बारम्बार इस मौलिक तथ्य पर बल दिया है कि निर्देशन सेवाए समस्त शाला कार्यक्रम की एक सुन्दर आभरण मात्र न होकर उसके अन्दर तान बान म गुथी हुई अन्तरंग नियामक होनी चाहिए। इस तथ्य के सफल क्रियान्वयन की व्यावहारिक पूर्वावश्यकता यह होगी कि शाला की नियमित समय सारणी म इसके लिए नियमित प्रावधान हो। यह एक सामान्य मनोवृत्तिगत प्रश्न होता है कि समय विभाग चक्र म जिस क्रिया का निश्चित समयानुसार उल्लेख नही किया जाता वह कार्यकर्ताओं द्वारा एक उपेक्षा के भाव से ही देखा जाती है—और इस प्रकार की मनोवृत्ति लेकर एक अनावश्यक एव अतिरिक्त कार्यभार के रूप म ही सम्पन्न होकर अपनी प्रभाविता घटाती जाती है।

भारतीय माध्यमिक शालाओ की वर्तमान निर्देशन-व्यवस्था म कही-कही पर शिक्षक उपबोधक — टीचर काउन्सलर-अथवा करियर मास्टर्स की नियुक्ति होने लगी है। किन्तु यदि समय सारणी म उन्हे नियमित रूप से अपने कर्त्तव्यो के लिए प्रावधान नही मिलता तो प्रशिक्षित होने पर भी वे निर्देशन के लिए अपनी निष्ठा एव उत्साह को खो बैठते जाते है। अधिक शोचनीय स्थिति तो वह हो जाती है जब इन करियर मास्टर अथवा शिक्षक उपबोधक जैसे तकनीकी उपाधियां धारण करने वाले व्यक्ति न तो पूर्णतया सामान्य शिक्षक के सहज कर्त्तव्य सम्पन्न करने से मुक्ति पाते रहते है न ही किसी तकनीकी कार्मिक के विशेषाधिकारो का लाभ उठा पाते हैं। शाला-कार्यक्रम म उनकी स्थिति एक त्रिशकु के समान हो जाती है। और यह स्थिति अधिक दुखदायी तब हो उठती है जब सतत उपलब्ध एक्स्ट्रा के समान वे शाला के समूचे ढांचे म किसी भी दिन किसी भी समय किसी भी सामयिक रिक्त स्थान पर अस्थायी फिट कर दिए जाते हैं। दोपहर के विश्राम के अनन्तर छात्र उपस्थिति लेना, खेल अध्यापक की अनुपस्थिति म शारीरिक प्रशिक्षण अथवा कार्यालय सचिव की बीमारी म उसके कुछ उत्तरदायित्व—जैसे विराम इत्यादि पूरा करने के लिए ये विशेषज्ञ चलती गाड़ी के कुछ छूटे हुए पैयों के समान उस गाडी को धक्का देने के साधन बन अपना वयक्तिक अभिमान भी खोते जाते हैं।

निर्देशन कार्यक्रम के लिए यह स्थिति अत्यन्त ही अवरोधजनक है। इसलिए प्रशासक को चाहिए कि शाला के नियमित समय चक्र विभाग म निर्देशन प्रक्रिया दिन में उसका निश्चित समय तथा उस क्रिया का उत्तरदायी व्यक्ति सबका उल्लेख स्पष्टता से करवा दे।

(उ) निर्देशन समिति का अध्यक्ष

शाला में एक नूतन निर्देशन कार्यक्रम को प्रारम्भ करने तथा उसके सतत संचालन हेतु यदि एक कार्यकारिणी का निर्माण कर लिया जावे तो कार्य बड़े सुचारु रूप से चल सकता है। इस समिति के निर्माण संचालन आदि सम्बन्धी बातों का विवेचन तो अध्याय के अंतिम भाग में ही किया जावेगा। यहाँ पर तो इस प्रकार की समिति में प्रधानाध्यापक की भूमिका के सम्बन्ध में विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है। यद्यपि यह सत्य है कि निर्देशन सेवाओं जैसे तकनीकि कार्यक्रम का विशेषज्ञ तो प्रशिक्षित उपबोधक ही होता है तथा शास्त्रीय दृष्टिकोण से उसमें ही इस कार्य में सर्वाधिक पथ प्रदर्शन की अध्यक्षता करने की योग्यता होती है। किन्तु शुद्ध व्यावहारिक एवं प्रशासनीय दृष्टिकोण से यह वांछनीय ही नहीं अपितु अनिवार्य होना चाहिए कि इस प्रकार की बैठकों की अध्यक्षता स्वयं शाला का प्रधान ही करे। हमारी इस मान्यता के कई कारण हैं जिनमें से कुछ निम्नांकित किए जा रहे हैं।

किसी भी शालीय कार्यक्रम के आयोजन में प्रशासक की उपस्थिति मात्र उस कार्य को अनायास ही एक गुरुता एवं महत्त्व प्रदान कर देता है। अब यदि उसकी उपस्थिति वहाँ पर नाममात्र समझी जाती है तो वह उसके स्तरानुकूल हो ऐसा समुचित होगा। सम्पूर्ण शाला के नेता को किसी भी समिति में अध्यक्ष पद से निम्नतर स्तर प्रदान करना न उसके लिए ही शोभनीय है न समिति सदस्यों के लिए लाभदायक। सभी दृष्टिकोणों से उसे अध्यक्षीय आसन पर ही बिठाना समीचीन होगा।

हमारी मान्यता का द्वितीय कारण व्यावहारिक है। इस प्रकार की बैठकों में सम्बन्धित कार्य के विषय में कई नीति निश्चय लिए जाते हैं। इन निश्चयों को गुरुता प्रदान करने तथा इनका पालन सम्भव कर सकने के लिये आवश्यक है कि अध्यक्ष के स्थान पर प्रधानाध्यापक के ही हस्ताक्षर हों। अधीनों या किसी भी नीति निश्चय को क्रियान्वित करने का अधिकार तो शाला में प्रशासक के ही पास रहता है। शाला की किसी भी समिति के कोई भी निश्चय को व्यावहारिक रूप देने के लिए कागजात पुनः प्रधानाध्यापक की टेबल पर प्रेषित किए जाते हैं। स्वयं प्रधानाध्यापक की अध्यक्षता में पारित किए गए निश्चयों को पुनः यह द्वितीय सोपान नहीं चढ़ना पड़ता।

फिर यह तो एक सामान्य तथ्य है कि स्वयं के हस्ताक्षर कर चुकने पर व्यक्ति उस निश्चय के लिये बाध्य हो जाता है। अतएव नूतन निर्देशन कार्यक्रम के अविलम्ब क्रियान्वयन के लिये यही व्यावहारिक होगा कि प्रधानाध्यापक ही निर्देशन समिति के अध्यक्ष की भूमिका निभावें।

(२) उपबोधक

शाला के निर्देशन कार्यक्रम में उपबोधक के स्थान को भी प्रशासक की

भूमिका के सदृश न एक कुशल भूमिका के रूप में वर्णित किया जा सकता है। किन्तु इन दोनों केन्द्रीय भूमिकाओं में एक मौलिक अन्तर है। जहां आचार्य प्रधान का केन्द्रीय नेतृत्व मुख्यरूपेण प्रशासकीय स्तर पर रहता है वहां उपबोधक का उतना ही केन्द्रीय महत्व प्रमुखरूपेण तकनीकी स्तर का होता है। किसी बिन्दु के विवेचन अथवा उसमें सम्बन्धित निश्चय करने में प्रशासक का भी उपबोधक का राय लेना अभीप्सित होता है। किन्तु समिति का अध्यक्ष अध्यक्षता सम्बन्धी इसके जो साधारण एवं वरिष्ठ से अभि प्राय की तरह यहां पर पुन कानूनन लेनदारी हो जाएगी। अर्थात यहां पर यह न ना समीचीन होता कि निर्देशन समिति की अध्यक्षता उपबोधक को नहीं करना चाहिए। हां—अध्यक्षता न करने पर भी अपनी तकनीकी दक्षता के कारण उसका समस्त सदस्यों में इस प्रकार का अप्रत्यक्ष प्रभाव होना चाहिए कि वह समस्त समस्या का प्रतापात ही अपने विचारों व दृष्टिकोण के सम्बन्ध में विश्वस्त कर सके तथा समिति में लिए गए निश्चय स्वाभाविक रूप से हों उस का तकनीकी प्रायो जना के अनुकूल उतरें। इस तथ्य को इस प्रकार कहा जाय तो कदाचित अधिक स्पष्ट हो जायगा कि रंगमंच के पर्दे के पीछे रह कर भी एक कुशल सूत्रधार की भांति उपबोधक निर्देशन की समस्त क्रिया व क्रिया विधियों को निर्देशित—संचालित करता रहता है।

अपनी भूमिका के इस सामान्य परिचय की पृष्ठभूमि में उपबोधक के विशिष्ट उत्तरदायित्वों का स्पष्टीकरण कतिपय विशिष्ट शीर्षकों के अन्तर्गत सुस्पष्ट रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

(क) छात्रों को उपबोधन

शाला के छात्रों को उपबोधन देना एवं उपबोधन की समूची कार्य भूमिका का सर्वप्रधान सर्वोच्च तथा सर्वोत्तम पक्ष है। वस्तुतः एक प्रशिक्षित वैज्ञानिक के रूप में उसका विशिष्ट ही इसी तकनीकी सेवा के लिए किया जाता है। निर्देशन कार्यक्रम की अन्य सभी सेवाओं में विभिन्न कार्मिकों का विविध भांति सहयोग लेना अपेक्षित होता है। किन्तु यही वह केन्द्रीय महत्व की विशिष्ट सेवा है जिसमें उप बोधक के अतिरिक्त और कोई कार्मिक न्यायसंगत कार्य नहीं कर पाता। हम गत अध्याय में निर्देशन सेवाओं के परिचय के समय इस सेवा की तकनीकी प्रकृति पर पर्याप्त प्रकाश डाल चुके हैं। उपबोधन एक ऐसी वैज्ञानिक कला अथवा कलात्मक विज्ञान है जिसमें वैज्ञानिक कार्यविधियों द्वारा संकलित दत्त सामग्री लिए हुए वस्तु निष्ठ विधियों द्वारा मानवीय व्यक्तित्व के साथ सत्यात्मक व्यवहार के साथ कलापूर्ण कार्य किया जाता है। अतएव छात्रों के उपबोधन के रूप में हम शाला उपबोधक की प्रमुख भूमिका का महत्व देना चाहते हैं। इस उपबोधन कार्य का परीक्षण मोटे रूप में निम्न दृष्टिकोणों से किया जा सकता है।

(अ) औसत छात्र की सामान्य समस्याएं

एक औसत व्यक्ति के दैनन्दिन जीवन में जो साधारण समस्याओं का अस्ति

— एक सहज वास्तविकता है। साथ ही यह भी सत्य है कि व्यक्ति इस प्रकार की समस्याओं की अनुभूति के समय किसी प्रकार की सहायता की अपेक्षा करता है। कई बार यह सहायता उसे उचित व वांछित रूप में नहीं मिल पाती। फलस्वरूप वह अपेक्षाकृत अवांछित स्रोतों से इसे प्राप्त करता है और ऐसी परिस्थिति में लाभान्वित होने की अपेक्षा कई बार हानि का भी शिकार बन जाता है। कई बार वह संकोचवश किसी भी व्यक्ति के पास न जाकर या तो मन ही मन घुटता रहता है अथवा अपने ही स्तर के अपरिपक्व सहपाठियों से अपनी निजी समस्याओं का निवारण करने का असफल प्रयास करता है।

उक्त सभी प्रकार की वैकल्पिक स्थितियाँ उसके विकास तथा समायोजन में बाधक ही सिद्ध हो सकती हैं। शाला के नियमित ढाँचे में ही एक प्रशिक्षित उपबोधक का होना इस प्रकार की बाधाओं का अवरोधन करके छात्र के सम्यक् विकास एवं समायोजन में सतत सहायक सिद्ध हो सकता है। छात्रों के लिए भी यह बात अत्यन्त ही सन्तोषप्रद रहती है कि उनकी व्यक्तिगत चिन्ताएं दूर करने हेतु ही कोई व्यक्ति शाला में विशेष रूप से नियुक्त है तथा वे उसके पास जाकर निस्संकोच बात कर सकते हैं।

सामान्य छात्र की सामान्य समस्याओं के निवारण के अतिरिक्त इन विद्यार्थियों के सन्दर्भ में एक और महत्त्वपूर्ण कार्य है जो कि उपबोधक का विशेष उत्तरदायित्व बनता है।

यह एक सामान्य अनुभव की बात है कि व्यक्ति प्रायः अपने गुणों एवं क्षमताओं का अधिकतम उपयोग नहीं कर पाता। इसके कई कारण हो सकते हैं। या तो अपनी वास्तविक क्षमताओं से परिचय न होने के कारण वह अपना अतिमूल्यन अथवा अवमूल्यन करता है या अपनी क्षमताओं को जानते हुए भी उसके व्यक्तित्व में एक स्वाभाविक अकर्मण्यता है जिसके कारण वह सामान्य से अधिक उत्पादन शक्ति रखते हुए भी अपने औसत स्तर में ही सन्तुष्ट रहता है या यह भी हो सकता है कि स्वयं की क्षमताओं की पहिचान एवं उच्चाकांक्षा की महत्त्वाकांक्षा होते हुए भी न तो उनके पास समुचित साधन सुविधाएं हैं न ही इन्हें प्राप्त करने के स्रोतों के विषय में ज्ञान। उपबोधक का सबसे महत्त्वपूर्ण उद्देश्य भी यह है कि व्यक्ति को उसकी क्षमताओं का अभिज्ञान कराये तथा उसे इष्टतम उपयोग की राहों से अवगत करके उसे अनुकूलतम विकास की दिशा में निर्देशित करे। अतः शाला उपबोधक की सबसे प्रमुख भूमिका भी यही होती है कि वह शाला के प्रत्येक छात्र को उसकी अनन्य क्षमताओं के सम्बन्ध में प्रबुद्ध करे, उनके अधिकतम उपयोग हेतु उन्हें सचेतनशील बनाए तथा अपने वैयक्तिक लक्षणों (क्षमता तथा सीमितता दोनों ही) के अनुकूल अवसर प्राप्ति में सहायता करे।

(आ) असामान्य छात्रों की विशिष्ट समस्याएं — यह तो हुई औसत छात्रों

के साथ उनके दैनन्दिन जीवन सम्बन्धी सम्बन्धी प्रश्नों की बात। किन्तु यह एक सांख्यिकी सत्य है कि प्रत्येक औसत जनता समूह में कतिपय विचलित व्यक्ति अवश्य रहते हैं। यों प्राय: औसत छात्र की कई सामान्य कठिनाइयों के निवारण में तो शाला शिक्षक भी समुचित योगदान करता है। किन्तु इन विचलित व्यक्तित्वों की विशिष्ट समस्याओं को समझने एवं उनके साथ कार्य करने हेतु सामान्य शिक्षक के पास न तो पर्याप्त समय रहता है न अनुकूल प्रशिक्षण के अभाव में उसकी इस कार्य में आवश्यक गति विधि ही रहती है। इन छात्रों की समस्याओं के साथ कार्य करना उपबोधक के विशिष्ट उत्तरदायित्वों में से एक है। आज के प्रगतिगामी मनोवैज्ञानिक युग में यह सिद्धान्त सामान्यत: मान्य होता जा रहा है कि जहाँ पिछड़े हुए अथवा असन्तुलित छात्रों की उपेक्षा उनके व्यक्तित्व को असीम हानि पहुँचाती है वहाँ प्रतिभावान एवं अत्यन्त सुयोग्य विद्यार्थियों के सक्षम लक्षणों की ओर उदासीनता उनके व्यक्तित्व को कुण्ठित करने के साथ-साथ समाज की प्रगति में अपरिसीम अवरोधन उत्पन्न करता है। दोनों ही प्रकार के विशिष्ट छात्रों का निदान एवं उनके अनन्य लक्षणों के अनुरूप उनकी शैक्षिक योजना बनाना बिना इस क्षेत्र में प्रशिक्षित व्यक्ति के सम्भव नहीं।

यों तो सामान्यत: उपबोधक को अपना अधिकांश समय शाला की अधिकांश जनता औसत छात्रों के अनुकूलतम विकास एवं इष्टतम समंजन के प्रयासों में व्यय करना चाहिए-तथा इस कार्य के सम्बन्ध में हम उपरोक्त शीर्षक के अन्तर्गत विस्तृत विवेचन कर भी चुके हैं। किन्तु अपेक्षाकृत कम संख्या वाले विचलित व्यक्तियों के साथ कार्य करने के लिए विचलन के अनुपात में ही अधिक कौशल योग्यता समय शक्ति एवं ऊर्जा की आवश्यकता होती है। अपने विशिष्ट प्रशिक्षण के कारण शाला उपबोधक इस कार्य को समुचित रूप से कर सकता है। वह इन छात्रों की विविध पक्षीय समस्याओं का समुचित अवबोध विकसित करता हुआ उन्हें उनका सामना करने में आवश्यक सहायता प्रदान कर सकता है।

(इ) अतिरिक्त निर्देश सेवा

निर्देशन कार्मिकों के सोपानिक क्रम में उपबोधक का स्तर अधिक व्यावसायिक तकनीकी सोपान पर निश्चित होता है। किन्तु यह भी सत्य है कि वह इतना बहुपक्षी विशेषज्ञ भी नहीं कि व्यक्तित्व की बहुआयामी विभिन्न समस्याओं को पूर्णरूपेण हल कर सके। ऐसा प्रकार का विशेषज्ञ तो किसी भी विकसित विज्ञान में उपलब्ध नहीं हो सकता। मानव विकास एवं समंजन को प्रभावित करने वाले इतने अधिक कारक इतने अधिक जीवन-क्षेत्रों में उपस्थित अथवा उत्पन्न हो सकते हैं कि उन सभी का सम्यक् बोध किसी भी एक विज्ञान में स्वतन्त्र रूप से उपलब्ध नहीं हो सकता। उदाहरणार्थ यदि किसी छात्र का भावनात्मक असन्तुलन उसके वाचा-दोष के कारण है और यह वाचा-दोष किसी आंगिक कुरचना या अवप्रकार्य में निहित है तो छात्र को किसी चिकित्सक के पास प्रेषित करके उसका समुचित उपचार करवाना उपयुक्त रहेगा।

सामान्य अवरोधों से कई बार छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि विपरीत ढंग से प्रभावित होती रहती है। इसके फलस्वरूप उनके व्यक्तित्व में कई संवेगात्मक ग्रन्थियों का सृजन हो जाता है और यह सृजन उनके समायोजन को निरंतर कुंठित करता रहता है। कई बार वे संकोचवश इस दुःख का अभिव्यक्तन करने से भी झिझकते हैं। अपने सम वयस्कों की स्थितियों से भिन्न स्थितियाँ हैं और इस असंगतता के कारण वे शिकार बन कर कुसमायोजन की ढेरी पर धीरे-धीरे खिसकते जाते हैं। ऐसे विशिष्ट शारीरिक, मानसिक एवं संवेगात्मक उपाधियों से पीड़ित व्यक्तियों के उपचार हेतु कुछ विशिष्ट मनोचिकित्सात्मक उपचार की आवश्यकता होती है जो कि सम्बन्धित क्षेत्रों के विशेषज्ञों द्वारा ही उपलब्ध हो सकती है।

अध्यापक का इसी परिस्थितियों में यह उत्तरदायित्व हो जाता है कि ऐसे व्यक्तियों को अतिरिक्त निर्देशन सेवा एवं सम्बन्धित विशेषज्ञों के पास निर्दिष्ट कर सके। इस कर्तव्य का समुचित रूप से निर्वहन करने के लिए अध्यापक को न केवल इस प्रकार की उपाधियों का अभिज्ञान होना आवश्यक है अपितु सम्बन्धित सेवा तथा उनके विशेषज्ञों का परिचय प्राप्त करना भी अनिवार्य है। वस्तुतः यदि यह कार्य तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि इस प्रकार की अतिरिक्त निर्देशन सेवाएँ एक प्रकार से निर्देशन कार्यक्रम के अन्तरंग भाग के रूप में ही उसके साथ सम्बन्धित होनी रहनी चाहिए।

(ख) शिक्षकों की भूमिका

छात्रों के समायोजन में अध्यापक की महत्त्वपूर्ण भूमिका है शाला शिक्षकों के विश्वासपात्र सहायक के रूप में। यह सहायता उनके विविध कार्य क्षेत्रों में निम्न प्रकार से दी जा सकती है।

(घ) वैयक्तिक विभिन्नताओं के निर्धारण में

प्रभावशाली शिक्षण कार्य सम्पन्न कर सकने हेतु शिक्षक के लिए यह प्रायः नित आवश्यकता होती है कि वह छात्रों की वैयक्तिक क्षमताओं, योग्यताओं, अभिरुचियों का समुचित ज्ञान रखे। जिससे वह विषय अध्यापन के सामान्य उद्देश्यों का पालन करते हुए भी अपने अध्यापन को प्रत्येक छात्र की रुचि के अनुकूल भी बना सके। हमारी वर्तमान भारतीय परिस्थितियों में तो कदाचित इस आवश्यकता के प्रति संवेदना की जागृति ही शिक्षकों में कराना आवश्यक होता है। और यह सब दशाएँ अध्यापकों में इन विभिन्नताओं के निर्धारण तथा इनके अनुरूप कार्य करने की योग्यता में वृद्धि किये जाने की आवश्यकता देता है। क्योंकि विभिन्नताओं के ज्ञान के आधार पर ही सृजनात्मक उपचारात्मक कार्य में प्रशिक्षित अध्यापक शाला के छात्रों को इस महत्त्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक स्तर के अन्त में अपना कार्य प्रारम्भ करने में सम्बन्धित निर्देशन प्रदान कर सकता है।

वैयक्तिक विभिन्नताओं का सर्वमान्य मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त आत्मसात करने पर शिक्षक इसे छात्रों के स्तर से आगे न जाकर अपने व्यावसायिक कार्य के अन्य

आयामों में भी लागू कर सकता है। सर्वप्रथम तो उसके निजी शिक्षक सम्बन्धों से इस तथ्य की स्पष्टता कई प्रकार से झलक सकती है। यह सम्भव है कि कभी-कभी उसे ऐसे व्यक्तियों के साथ शाला-कक्षों का भार मिले जिनके उपागमों विचारों कार्यविधियों से उसका तनिक भी साम्य न हो। ऐसी परिस्थिति में उसे कई बार मनोभावों व असन्तोष की दुःखद भावनाओं का सामना करना पड़ता है। इसी प्रकार सम्भव है कि वह शाला प्रधान के साथ ही एक भी आँखों से कोई बात नहीं देख पाता हो। ऐसे अवसरों पर उसे कभी-कभी मान हानि होना आदि की दुःखद अनुभूतियाँ सहन करनी पड़ें। ऐसी परिस्थितियों में व्यक्ति व्यक्ति के बीच सहज ही वर्तमान रहने वाली कई विभिन्नताओं का वैज्ञानिक अवबोध मानव का इस प्रकार की मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों के कारणों का अधिक वस्तु निष्ठतापूर्ण विश्लेषण अध्ययन अवबोध करने में सहायक होता है तथा व्यक्ति को एक प्रबुद्ध मानसिकता प्रदान करता है।

(आ) वैयक्तिक अनुसूची दत्त संग्रह

निर्देशन कार्यक्रम की प्राथमिक सेवा—वैयक्तिक सूचना-हेतु जो छात्र-सूचनाएं संकलित करनी होती हैं उन्हें शिक्षक की सहायता के बिना अकेला उपबोधक नहीं कर सकता। किन्तु इन्हें विधिवत संकलित कर रखने में पुनः शिक्षकों को उपबोधक के वैज्ञानिक नेतृत्व की अपेक्षा रहती है। व्यवस्थित विवरणात्मक तथा मितव्ययी ढंग से इन्हें एकत्रित कर सकने हेतु कई प्रपत्र आयोजित करने पड़ते हैं जिन्हें विकसित करने तथा जिनका उपयोग करने में उपबोधक समस्त शाला-परिवार को समुचित नेतृत्व देता है। इनका विश्लेषण करने में भी यह अपेक्षित है कि शिक्षक उसकी समुचित सहायता कर सकें। किन्तु वस्तुतः यह सहायता देने में स्वयं उनका भी दत्त विश्लेषण विधियों में अनायास ही प्रशिक्षण होता है। इसके साथ ही एक और सहज लाभ उन्हें यह भी होता है कि वे अपने विद्यार्थियों को अधिक अच्छी तरह जान पहिचान सकते हैं। उपबोधक की भूमिका इस सन्दर्भ में यह है कि वह अध्यापकों को छात्र सम्बन्धी वैयक्तिक दत्त-सामग्री विधिवत संकलित विश्लेषण करने में दक्षता प्रदान करते हुए छात्रों के सर्वांगीण अवबोध में उनकी रुचि को उत्तरोत्तर विकसित परिपक्व करता रहे।

(इ) निर्देशन अभिविन्यासित अध्यापन

वस्तुतः गत दो बिन्दुओं में किए गए विवेचन का समाहार इस बिन्दु के शीर्षक में समुचित रूप से हो जाता है। निर्देशन अभिविन्यासित अध्यापन का मूल तात्पर्य होता है प्रत्येक छात्र की विशिष्ट वैयक्तिक आवश्यकताओं के अनुकूल अध्यापन को सम्पन्न करना। अधिक स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि अध्यापन के उद्देश्य निर्धारण विषय वस्तु चयन विधि निरूपण एवम् मूल्यांकन प्रक्रम प्रत्येक स्तर पर प्रत्येक छात्र के व्यक्तित्व के अनुकूल इन सोपानों के धारण में आवश्यक हेर फेर कर सकना चाहिए।

निर्देशन प्रभिविन्यासित अध्यापन का तात्पर्य यह भी होता है कि छात्र का विषय चयन उसकी क्षमतानुकूल है तथा उसके जीवन की भविष्य सम्भावनाओं से भी तारतम्य रखता है। या मत से तो छात्रों की विषय-योजनाएं निर्धारित करने में सामान्यतः उपबोधक की ही प्रमुख भूमिका रहती है। किन्तु यह भूमिका वह बिना शिक्षकों के अवलम्ब के सम्पन्न नहीं कर सकता। किन्तु शिक्षकों को इस ओर रुचिवान बनाने तथा इस कार्य में हाथ बटा सकने की उनमें योग्यता उत्पन्न करने का उत्तरदायित्व पुनः स्वाभाविक उपबोधक का ही हो जाता है। इसलिये यह कहा सकते हैं कि निर्देशन प्रभिविन्यासित अध्यापन सम्पन्न कर सकने में उपबोधक शिक्षकों को समुचित दिशा प्रदान करता है।

(ई) पाठ्य सहगामी कार्यक्रम की समुचित व्यवस्था

एक छात्र की रुचि क्षमता एवं योग्यता के विषय जो बात नियमित पाठ्यक्रम के विषय में कही गई है वही उसकी पाठ्यसहगामी अथवा पाठ्येत्तर प्रवृत्तियों के आयोजन के सम्बन्ध में भी लागू होती है। वस्तुतः अधिक अनौपचारिक वातावरण में आयोजित तथा परीक्षा की अनिवार्यता से मुक्त इन कार्यक्रमों में तो यह और भी अधिक आवश्यक हो जाता है कि इसके अन्तर्गत आयोजित प्रवृत्तियों में एक छात्र की वैयक्तिक विशिष्टता एवम् विशिष्ट आवश्यकता के अनुरूप उसे अवसर प्रदान किए जावें। पाठ्येत्तर प्रवृत्तियों का क्षेत्र शाला जीवन का वह विस्तृत आयाम है जहां विद्यार्थी का व्यक्तित्व कक्षा की चारदीवारी से उन्मुक्त होकर उसके विविध प्राकृतिक रंगों में निखर उठता है। इन रंगों को विकसित होने देना तथा इनके समुचित सम्मिश्रण से छात्र का व्यक्तित्व चित्र विकसित करने का विशाल उपक्रम की स्वाभाविक कला में निहित रहता है। और एक कुशल उपबोधक शाला के शिक्षकों का प्रयत्न ही सहज रूप से इस दिशा में अभिविन्यासित कर सकता है।

( ) पर्यावरणीय सूचना प्रसारण

निर्देशन कार्यक्रम की द्वितीय महत्त्वपूर्ण सेवा है पर्यावरणीय सूचनाओं का व्यवस्थित संग्रह विश्लेषण एवं प्रसार। विद्यार्थियों तक इसके सहज प्रसार की दिशाओं में शिक्षकों को अभिविन्यासित करने का उत्तरदायित्व पुनः उपबोधक का ही होता है। शिक्षक इस प्रसार को किस प्रकार कर सकते हैं यह तो आगे के अध्याय में—तथा अधिक विस्तार पूर्वक सप्तम अध्याय में बताया जावेगा। यहां तो केवल शिक्षकों के इस कार्य में सहायक के रूप में उपबोधक की भूमिका स्वरूप इस बिंदु का उल्लेख मात्र किया जा रहा है।

(ग) निर्देशन कार्यक्रम में अभिविन्यास

निर्देशन कार्यक्रम के संगठन—सिद्धान्तों का विवेचन करते समय हम कार्मिकों के तत्परता-स्तर को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान दे चुके हैं। इस सन्दर्भ में जिस मनोवैज्ञानिक तथ्य पर पुनः बल देना चाहते हैं वह यह है कि किसी भी कार्यक्रम के सम्बन्ध

में समुचित अवसर न होने पर कार्मिकों को तलाशना स्वयं में एक कठिन कार्य है।

अब निर्देशन के नूतन कार्यक्रम सम्बन्धी यह अवधारणा—और तदनुरूप आस्था कार्मिकों में उत्पन्न करना प्रशिक्षित उपबोधक का ही महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व है।

वह यह अवबोध किस प्रकार उत्पन्न करे—यह उसकी योग्यता, प्रशासकीय नीतियों, प्रधानाध्यापक उदारता तथा उसकी निजी सूझ-बूझ पर निर्भर रहता है। महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि कार्यक्रम प्रारम्भ करने के पूर्व तथा कार्यक्रम विकास के विभिन्न स्तरों पर भी यह आवश्यक है कि शाला-कार्मिकों को उस कार्यक्रम के नियोजन में समुचित प्रतिनिधित्व हो। तभी वे इसमें अपने आपको पूर्णरूपेण समन्वित कर सकेंगे।

इन कार्मिकों में केवल शाला शिक्षकों को ही गिनना हो यह आवश्यक नहीं। निर्देशन कार्यक्रम में विभिन्न कार्मिक विभिन्न स्तरों पर भिन्न-भिन्न प्रकार के काम करते हैं। और इसलिए हम सामाजिक कार्यालय-कर्मचारी, कम्पाउण्डर, छात्रों के अभिभावक-सभा के लिए भिन्न-भिन्न अभिविन्यास कार्यक्रमों का आयोजन वांछनीय समझते हैं। इस व्यवस्थित अभिविन्यास से उत्पन्न अवबोध आस्था के आधार पर ही वे शाला निर्देशन कार्यक्रम में अपना समन्वित सहयोग दे सकेंगे।

(घ) शाला-समुदाय संयोजक

शाला उपबोधक की एक और महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है शाला समुदाय संयोजक की। सर्वप्रथम तो छात्रों की वैयक्तिक आवश्यकताओं के एक महत्त्वपूर्ण अंग की पूर्ति हेतु उपबोधक को अभिभावकों से निकट सम्पर्क स्थापित करना पड़ता है। छात्र की अभिरुचि, क्षमता तथा भावी अभिलाषाएँ जानने व समझने में यह सम्पर्क दिन-प्रतिदिन अनिवार्य होता जाता है। इस प्रकार शाला अभिभावक सम्बन्ध का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आवश्यकता को उपबोधक अपने व्यवसाय के एक नवीन कर्त्तव्य को पूर्ण करने में अनायास ही सम्पन्न करता रहता है। छात्रों की वैयक्तिक रुचियों की पूर्ति के साथ-साथ ही उपबोधक का कर्त्तव्य होता है व्यावसायिक सूचनाओं का संकलन, वर्गीकरण तथा व्यवस्थित प्रसारण। सूचना संकलन हेतु उसे विभिन्न स्थानीय संस्थाओं, औद्योगिक इकाइयों एवं व्यावसायिक विशेषज्ञों आदि से निकट सम्पर्क बनाए रखना पड़ता है। समय-समय पर इन विशेषज्ञों को शाला में व्यावसायिक सूचना प्रसारण हेतु आमन्त्रित भी करना होता है। कभी-कभी स्वयं छात्रों को भी इन संस्थाओं के स्थल पर ले जाना पड़ता है जिससे छात्र कार्य व व्यवसाय की परिस्थितियों का स्वयं प्रत्यक्ष रूप से देख सकें तथा व्यावसायिक निश्चय इस सबल आधार पर अधिक दृढ़ रूप से निश्चित हो सकें।

स्पष्ट है कि इस प्रकार के आयोजन एक दो दिन के परिचय के आधार पर नहीं हो सकते। इनको सम्भव कर सकने के लिए शाला उपबोधक को स्थानीय समुदाय से सतत सम्पर्क बनाए रखना होता है। वस्तुतः इस प्रकार के सम्पर्क के आधार

पर वह शाला में समन्वय को भी प्रत्यक्ष रूप से एक दूसरे के निकट लाता है तथा उनमें पारस्परिक सम्बन्धों आदि आमृत करता है—अनुशीलन रखता है।

हमारे विचार में शाला उपबोधक की यह भूमिका न केवल उसके निजी उत्तरदायित्व के लिए केवल ही महत्वपूर्ण है अपितु सम्पूर्ण शालीय विकास की दृष्टि से भी अत्यन्त ही मूल्यवान है।

(3) शाला शिक्षक

उपबोधक की भूमिका का विशद विवेचन करते हुए उसके द्वारा शिक्षकों को दिए हुए नेतृत्व के सन्दर्भ में शिक्षकों की निर्देशन भूमिकाओं के सम्बन्ध में कई प्रसंग में इंगित पाठकों को मिल ही चुके हैं। अब इस शीर्षक के अन्तर्गत शिक्षक के विशिष्ट निर्देशन उत्तरदायित्वों व भूमिकाओं का अधिक प्रत्यक्ष विवेचन प्रस्तुत किया जायगा।

अभी तक पाठकों को यह तो स्पष्ट हो ही चुका होगा कि शाला निर्देशन कार्यक्रम में शिक्षकों की भूमिका अत्यन्त ही महत्वपूर्ण होती है। बल्कि यह कहना भी अतिशयोक्ति नहीं होगा कि शाला अध्यापकों के पूर्ण सहयोग के बिना निर्देशन कार्यक्रम का सर्वोत्तम आयोजन भी समुचित रूप से क्रियान्वित नहीं हो सकता।

शिक्षक की निर्देशन में भूमिका के विषय में विशद विवेचन प्रस्तुत करने के पूर्व इस स्थान पर एक सम्बन्धित भ्रान्ति का स्पष्टीकरण कर देना लाभदायक होगा।

निर्देशन कार्यक्रम के सफल संचालन में शिक्षक के महत्वपूर्ण स्थान को अत्यधिक बल देते हुए कभी-कभी यह विचार अभिव्यक्त किया जाता है कि छात्र के साथ निकटतम सम्पर्क तथा सर्वाधिक कार्य करने वाले अध्यापकों को ही उनके निर्देशन का भी कार्य करना चाहिए। दूसरे शब्दों में इस मान्यता का यह तात्पर्य हुआ कि शाला निर्देशन कार्य के लिए कक्षाध्यापक ही पर्याप्त कार्मिक हैं। इनके अतिरिक्त इस कार्य हेतु कोई विशेषज्ञ व्यक्ति के नियोजन की कोई आवश्यकता नहीं है।

हम लोग उक्त प्रकार की विचारधारा से सहमत नहीं हैं। हमारी इस सम्बन्ध में स्पष्ट मान्यताएं यह हैं कि प्रत्येक शिक्षक एक सीमा तक निर्देशन कार्मिक है, बिना शिक्षकों के सक्रिय सहयोग के शाला निर्देशन कार्यक्रम केवल एक सैद्धान्तिक आयोजना के स्तर तक ही अवरुद्ध हो जायगा। किन्तु यह एक तकनीकी वास्तविकता है कि शाला शिक्षक एक प्रशिक्षित उपबोधक को स्थानापन्न नहीं कर सकता। शिक्षक के द्वारा सम्पन्न सामान्य निर्देशन कर्तव्यों के अतिरिक्त कतिपय विशिष्ट उपबोधन उत्तरदायित्वों को निभाने हेतु तकनीकि उपबोधक का होना एक अनिवार्य आवश्यकता है। उपबोधक के इन विशिष्ट उत्तरदायित्वों पर पूर्व शीर्षक के अन्तर्गत पर्याप्त प्रकाश भी डाला जा चुका है। अतः अब विशेष रूप से अध्यापकीय निर्देशन दायित्वों का प्रस्तुतिकरण कतिपय शीर्षकों के अन्तर्गत किया जायगा।

(क) **मनोवैज्ञानिक जलवायु का सृजन**—अत्यंत वास्तविक प्रवृत्ति के भी शाला छात्रों द्वारा ग्राह्य एवं स्वीकृत हो सकने हेतु एक महत्वपूर्ण पूर्वावश्यकता होती है उस प्रवृत्ति के विषय में छात्रों का एक सकारात्मक मनोवैज्ञानिक उपागम। सामान्यतः इस प्रकार के उपागम का सृजन करने में शाला शिक्षकों का बहुत बड़ा हाथ रहता है। यदि कोई नवीन शाला कार्यक्रम उनके मनानुकूल नहीं है तो वे कई प्रयत्न अप्रत्यक्ष व्यवहार क्रियाओं द्वारा अपनी प्रतिकूलता से छात्रों को अनायास ही अनुप्रेरित कर सकते हैं। और यदि उन छात्रों का—जिनके लिए ही मूलतः निर्देशन कार्यक्रम की आयोजना होती है—ही इस कार्यक्रम के लिए नकारात्मक उपागम बन जाता है तो उसके मूल के ही नष्ट होने की आशंका रहती है।

वस्तुतः छात्र हेतु आयोजित किसी भी नूतन शैक्षिक कार्यक्रम का सफल बनाने की एक महती पूर्वावश्यकता यह होती है कि छात्रों के मन में उसके लिए आस्था उत्पन्न की जावे। उनके मस्तिष्क में यह धारणा स्पष्ट हो कि कार्यक्रम उनके हित के लिए है। शाला के एक नवीन कार्मिक के सम्बन्ध में उनके मन में यह विश्वास स्थापित हो कि यह उनका शुभचिन्तक सहायक है। चूँकि विशेषकर भारतीय परिस्थितियों में शाला के अविभाज्य अंग के रूप में निर्देशन कार्यक्रम की स्थापना छात्रों के लिए एक नवीन बात होगी इसके लिए और भी अधिक आवश्यक है कि इस प्रवृत्ति के अभिप्रेत अर्थों तथा उपबोधक की आवश्यकताओं के विषय में उनके मन में एक सम्यक् प्रत्यभिज्ञता हो। छात्रों के साथ सर्वाधिक कार्य करने वाले शिक्षकों द्वारा यह स्पष्टता सरलता से उत्पन्न की जा सकती है। निर्देशन के नूतन बीज को वे एक सकारात्मक मनोवैज्ञानिक वातावरण की अनुकूल जलवायु प्रदान करके स्वयं अपने सहयोगी हाथों भी खाद देकर एक नव पल्लवित पौधे के रूप में विकसित होने में प्रेरणा देते हैं।

(ख) **निर्देशन-नीतियों के अवबोध में सहायता**—उक्त कर्तव्य के अनुकथन में ही प्रस्तुत भूमिका के निभाने की बात आती है। निर्देशन कार्यक्रम के लिये अनुकूल मनोवैज्ञानिक वातावरण के सृजन के उपरान्त प्रश्न उपस्थित होता है निर्धारित निर्देशन नीतियों के स्पष्टीकरण का। प्रायः ये नीतियाँ निर्देशन-समिति की उन बैठकों में निश्चित होती हैं जिनमें कुछ निर्वाचित शाला शिक्षक भी सदस्य रहते हैं। नीति निश्चय होने के पश्चात् भी उनके क्रियान्वयन के पूर्व प्रश्न उठता है छात्रों तक उन्हें प्रसारित करने का या यों कहें कि उनके अवबोध हेतु उनकी समुचित व्याख्या का। पुनः इस बात का उत्तरदायित्व छात्रों के निकटवर्ती शिक्षकों पर ही पड़ता है। यों सामान्यतः निर्देशन कार्यक्रम सम्बन्धी प्राथमिक अभिविन्यास तो छात्रों को शाला उपबोधक अथवा शाला प्रधान द्वारा ही प्राप्त होकर समुचित होगा जिसमें छात्रों के मन में कार्यक्रम सम्बन्धी मनोवैज्ञानिक पक्ष तथा प्रशासकीय अवलम्बन की बातें मूल ग्रहण कर लें। किन्तु इस मूल को दृढ़ करने इसको पनपाने तथा विकसित करने हेतु

शिक्षकों के दत्तचित्त पोषण की आवश्यकता है क्योंकि इस कार्यक्रम की विविध प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में उनके विचारों, अभिव्यक्तियों, भावों तथा कार्य-व्यापारों द्वारा होता है। छात्रों के साथ मनोनीत किये गए कई औपचारिक तथा अनौपचारिक अवसरों पर वे निर्देशन सम्बन्धी नीतियों का समुचित स्पष्टीकरण उनके सम्मुख कर सकते हैं— तथा उन्हें निर्देशन कार्यक्रम से अधिकाधिक लाभ उठा सकने हेतु तत्पर कर सकते हैं।

(ग) वैयक्तिक दत्त संग्रह— व्यवस्थित रूप से निर्देशन कार्य संचालित कर सकने की एक प्राथमिक आवश्यकता है छात्र विषयक वैयक्तिक सूचनाओं का विधिवत संकलन। इस प्राथमिक सेवा में शिक्षक का योगदान सर्वाधिक होता है।

सर्वप्रथम तो छात्रों के बहुमुखी व्यक्तित्व का सामान्य परिचय कई परिस्थितियों में शिक्षक को ही सबसे अधिक होता है। फिर शाला का प्राथमिक उत्तरदायित्व होता है छात्रोपकार्य यथा जिसमें छात्र, अभिभावक, प्रधानाध्यापक, समुदाय तथा स्वयं अध्यापक समान रूप से रुचि रखते हैं। शाला के इस महत् पक्ष से सीधा सम्बन्ध अध्यापकों का ही होता है। छात्रों की उपलब्धि के साथ ही शाला के मान सम्मान का प्रश्न भी संयुक्त रहता है—और इस प्रकार शिक्षक का इस विषय में महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व रहता है।

अब शिक्षक ही वह कुंजी व्यक्ति है जिसके पास छात्रोपयोगी विषयक सूचना-सामग्री रहती है। सर्वप्रथम तो शाला की नमी आवश्यकता के अनुसार ही उसे इस सामग्री का व्यवस्थित रूप से अनुरक्षण करना होता है। फिर उपयोग के वैज्ञानिक तरीकों से लाभ उठाकर वह विश्लेषणात्मक रूप में अधिक वैज्ञानिक ढंग से इस महत्त्वपूर्ण सामग्री का प्रयोग कर सकता है।

यह तो हुई सूचना-सामग्री के प्रबन्ध की बात। किन्तु इससे भी अधिक मूल तथ्य है सामग्री संकलन के उपकरणों का। जो सामान्यतः जो शिक्षक के पास शाला के नेमी शिक्षण उपकरण तथा उसका स्वयं का अनुभवगत निरीक्षण ही वे उपकरण होते हैं जिनके माध्यम से वह अपने छात्रों के विषय में सूचनाएं एकत्रित कर के निर्देशन कार्यक्रम की वर्तमान सूचना सेवा की परिपूर्ति कर सकता है।

किन्तु उक्त नैमित्तिक साधनों के अतिरिक्त भी कई ऐसे शिक्षक निर्मित उपकरण हो सकते हैं जो तुलनात्मक दृष्टि से अधिक वस्तुनिष्ठ होते हैं तथा जिनके माध्यम से संकलित सामग्री अधिक विश्वसनीय व वैध होती है। उपचारक के निर्देशन में शिक्षक ऐसे कई उपकरण—यथा चिह्नांकन सूचियां, मूल्य-निर्धारण मापनियां, प्रश्नावलियां, समाजमितिक विधियां— स्वयं निर्मित करके उनके माध्यम से छात्रों के विषय में मूल्यवान सूचनाएं संकलित कर सकते हैं। इनके अतिरिक्त कई अन्य विधियां भी हो सकती हैं जिनके द्वारा शिक्षक कक्षा में अथवा अधिक अनौपचारिक परिस्थितियों में छात्रों के सम्बन्ध में बहुमुखी सूचनाएं संकलित करके न केवल उनका अधिक सम्पूर्ण चित्र शाला के लिये प्रस्तुत करते हैं, अपितु इस प्रकार के

जन की सम्पूर्णता के परिप्रेक्ष्य में अधिक सर्वांगीण सहायता दे सकने की अनुकूल परिस्थितियां उत्पन्न करते हैं। शिक्षक द्वारा निर्मित तथा प्रयुक्त हो सकने योग्य इस प्रकार की विधाओं के सम्बन्ध में विशद विवेचन तो अगले अध्याय में प्रस्तुत किया जायगा। यहां तो केवल शिक्षक की निर्देशन भूमिकाओं के स्पष्टीकरण के अन्तर्गत केवल इनकी ओर इंगित मात्र कर दिया गया है।

(घ) **पर्यावरणीय सूचना प्रसार**—निर्देशन कार्यक्रम की द्वितीय सेवा पर्यावरणीय सूचना सेवा के संचालन में भी शाला अध्यापकों की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। इस भूमिका को वे दो प्रकार से निभा सकते हैं विषय अध्यापन के माध्यम से तथा पाठ्यसहगामी प्रवृत्तियों से। दोनों ही विधाओं का संक्षिप्त विवेचन अनुच्छेद में प्रस्तुत किया जा रहा है। विशद रूप से इनका वर्णन अध्याय सात में मिलेगा।

(अ) **विषय अध्यापन के माध्यम से**—प्रत्येक शिक्षक का यह कर्तव्य है—जिस विभाग का वह सामान्यतः आवश्यकता न हो तथापि—कि वह छात्रों को विषय ज्ञान के पूर्व तथा विषय अध्यापन के साथ साथ ही विषय के शैक्षिक मूल्य उसकी व्यावसायिक सम्भावनाएं उससे सम्बन्धित विषय शाखाएं उससे उद्भूत शैक्षिक-व्यावसायिक धाराओं के सामाजिक-आर्थिक स्तर आदि संगत तथ्यों से छात्रों को प्रबुद्ध करते रहें। तभी उनका विषय अध्यापन छात्रों के लिये सही मानें में अर्थपूर्ण हो सकेगा। किन्तु वस्तुस्थिति तो यह है कि हमारे शिक्षकों से सामान्यतः इस प्रकार की अपेक्षा भी नहीं की जाती कि वे ये सूचनाएं छात्रों तक प्रेषित करें। फलस्वरूप कई शिक्षक स्वयं भी इन तथ्यों के बारे में अनभिज्ञ से रहते हैं। अपनी विषय वस्तु और वह भी केवल परीक्षा पाठ्यक्रम में निर्धारित के अतिरिक्त इस प्रकार की जानकारियां उपलब्ध करना उनके लिये किसी भी प्रकार युक्तिसंगत नहीं होता। निर्देशन के दर्शन में अभिदीक्षित होने पर ही वे विषय-सम्बन्धी इन तथ्यों का व्यावहारिक मूल्य समझ सकते हैं तथा स्वयं छात्रों को भी इस प्रकार संवेदनशील तथा प्रबुद्ध बना कर उनके शैक्षिक चयनों को एक सबल यथार्थिक आधार प्रदान कर सकते हैं।

(आ) **पाठ्य सहगामी क्रियाओं से**—कक्षा परिस्थितियों के अतिरिक्त भी कई इस प्रकार की प्रवृत्तियां हो सकती हैं जिनके द्वारा शिक्षकगण निर्देशन कार्यक्रम की पर्यावरणीय सूचना सेवा को परिपुष्ट कर सकते हैं। कुछ इस प्रकार की विधाएं निम्न अनुच्छेदों में प्रस्तावित की जा रही हैं।

सर्वप्रथम तो एक प्रबुद्ध रुचि के रूप में विद्यार्थियों को वैयक्तिक डायरियाँ अनुरक्षित करने के लिये प्रेरित किया जा सकता है जिसमें वे अपने को अच्छे लगने वाले व्यवसायों अथवा विषयों के सम्बन्ध में अद्यतन सूचनाएं नोट करते जाएं। एक प्रोत्साहक के रूप में इनका प्रस्तुतिकरण भी शाला की अनिवार्य सभाओं में वाचन अथवा अनुपूरक पठन के रूप में करवाया जा सकता है।

छात्रों में विविध व्यवसायों की ओर आवश्यकताओं सम्बन्धी रुचि उत्पन्न की जा सकती है। प्रवचन, प्रदर्शनियों या समाचारपत्रों से सम्बन्धित करके ये बताई जा सकती है। इस प्रकार की हॉबी से न केवल छात्रों का व्यवसाय संसार सम्बन्धी अभिज्ञान परिवर्धित होगा अपितु समाचार-वाचन से उनके सामान्य ज्ञान में भी वर्धन होगा। व्यवसाय-सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ आदि बुलेटिन बोर्ड पर प्रदर्शित करने का उत्तरदायित्व भी कुछ रुचिवान छात्रों को सौंपा जा सकता है।

ये तो कुछ विधाएँ हैं जिन्हें शिक्षक स्वतन्त्र रूप से अपना कर छात्रों को पर्यावरणीय सूचनाएँ प्रदान कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त निर्देशन कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रायः स्कूल में आयोजित पर्यावरणीय सूचना तथा सम्बन्धी विविध प्रवृत्तियों में भी शिक्षकों का सहयोग न केवल वांछनीय है अपितु अनिवार्य है। इनमें से कुछ प्रवृत्तियों के उदाहरण हैं—विषय तथा व्यवसाय सम्बन्धी भाषणों का आयोजन, व्यवसाय, उद्योग, व्यापारिक संस्थाओं व औद्योगिक केन्द्रों का भ्रमण, पुस्तकालय में निर्देशन कक्ष की स्थापना, जिसमें व्यावसायिक सूचनाओं सम्बन्धी चित्रों, चार्टों, सारणियों, आलेखों, पोस्टरों आदि का विधिवत् प्रदर्शन हो।

(ङ) छात्रों को उपबोधन हेतु निर्देशित करना— कक्षा-परिस्थितियों की सीमित समस्याओं के अतिरिक्त यदि छात्रों की कुछ विशिष्ट कठिनाइयाँ हों तो उन्हें शाला उपबोधक के विषय में प्रबुद्ध करके उन्हें उसके पास निर्देशित करने की महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करने में उस स्तर पर व्यक्तिगत विवेक की आवश्यकता है कि वह किस प्रकार की समस्या वाले छात्र को निर्देशित करेगा तथा किसका उत्तरदायित्व स्वयं लेगा। अब इस बात के सम्बन्ध में इन दो प्रकार की समस्याओं के बीच कोई निश्चित विभाजन रेखा नहीं खींची जा सकती। यह निश्चय शिक्षक की क्षमता, छात्र की परिस्थिति, समस्या के स्वरूप आदि कई तथ्यों पर निर्भर रहता है। कई बार शिक्षक एवं उपबोधक को सम्मिलित रूप से भी किसी छात्र के साथ कार्य करना पड़ता है। अतः इस विषय के विवेचन के प्रारम्भ में ही हमने इस सम्बन्ध में केवल एक प्रमुख बात पर स्पष्ट रूप से बल दे दिया है। अर्थात् सामान्य छात्र की कक्षा परिस्थितियों सम्बन्धी सीमित समस्याओं के साथ शिक्षक को कार्य करना प्रायः अधिक समुचित होगा। उदाहरणार्थ किसी छात्र का कक्षा में देर से आना, गृहकार्य करके न लाना, अन्य छात्रों से झगड़ा आदि सामान्य कक्षा की समस्याएँ हैं जिन्हें लेकर प्रत्येक को उपबोधक के पास इनको निर्देशित कर देना कदाचित् उचित न हो। किन्तु यह भी सम्भव है कि इन सामान्य व्यावहारिक समस्याओं के मूल में कुछ गहन ग्रन्थियाँ हों जिनके सुलझाने में प्रशिक्षित उपबोधक के विशिष्ट तकनीकों ज्ञान की आवश्यकता पड़े। इसलिए शिक्षक का इस भूमिका को निभाने के लिए कोई निश्चित नियम निर्धारित नहीं किए जा सकते। परिस्थिति के अनुसार इसे अपने विवेक सापेक्ष रूप से ही लेने होंगे।

(४) अभिभावकगण

निर्देशन के मुख्य ध्येय या तो व्यक्ति के बहुमुखी समन्जन से सम्बन्धित होते हैं अथवा उसके स्थायीय विकास के परिप्रेक्ष्य में निर्धारित होते हैं। निर्देशन सेवाओं का कार्यक्रम भी व्यक्ति के बहुमुखी समन्जन को ध्यान में रखकर ही सचालित होता है। सामान्यत छात्र अपने जीवन के एक तृतीयांश से अधिक समय शाला में व्यतीत नहीं करता। चूंकि व्यक्ति का समन्जन एवं विकास ऐसी सगठित प्रक्रियाए हैं जिन पर शाला के अतिरिक्त कई कारकों का भी प्रभाव पड़ता है इसलिए निर्देशन को अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए इन सभी कारकों से सहयोग की अपेक्षा करनी पड़ती है। इन सभी शालेत्तर कारकों में से हम सर्वाधिक महत्व छात्र के घरेलू पक्ष को देना समुचित समझते हैं। छात्र के जीवन का प्रारम्भ घर की सांस्कृतिक सामाजिक पृष्ठभूमि में होता है। अपने जीवन के सबसे अधिक निर्माणात्मक समय में वह घर के ही मूल्यों की छाप अपने कोमल व्यक्तित्व पर सदा के लिए धारण कर लेता है। उसके जीवन-उपागम मानसिक विश्वास सवेगात्मक सप्रत्यक्षण – सभी का मूल इसी समय घर के रहन-सहन बोल चाल आचार विचार व्यवहारों की भूमि में गहराई से प्रविष्ट हो जाता है— और उसके जीवन वृक्ष की धमनियों में सदा सर्वदा के लिए प्रवाहित होता हुआ उसके—पल्लव पुष्प फलों के रगरूप स्वाद को प्रभावित करता रहता है। अत स्पष्ट है कि उसके सर्वांगीण विकास में उसके अभिभावकगणों का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान रहता है। उनके समन्जन के स्तर स्वरूप एवं सम्पन्नता को भी उनके बाल्यकालीन प्राथमिक जीवन-अनुभव एक बहुत बड़ी सीमा तक अनुबन्धित करते हैं। अत यह युक्तिसंगत ही होगा कि निर्देशन कार्यक्रम का सतत सम्पर्क छात्रों के अभिभावकों से बना रहे।

इस साधारण मान्यता की पृष्ठभूमि में निर्देशन सेवाओं के कार्यक्रम में अभिभावकों की विशिष्ट भूमिकाओं का विवेचन निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है—

(क) वैयक्तिक सूचना सेवा— वैयक्तिक सूचना की प्रकृति के विवेचन के समय हमने उसके विकासात्मक तथा समाहारी लक्षणों पर बल दिया था। इन दोनों ही लक्षणों का अस्तित्व बिना घरेलू सहयोग प्राप्त किए नहीं हो सकता। व्यक्तिसम्बन्धी विकासात्मक सूचनाओं का मूल प्रारम्भ घर में ही होता है तथा सबसे सही रूप में अभिभावकों से ही प्राप्त किया जा सकता है। निर्देशन कार्यक्रम के सचालन में अभिभावकों का एक महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व यह हो सकता है कि वे उपबोधक द्वारा निर्मित प्रपत्रों में वाञ्छनीय सूचनाए विधिवत भर दें।

प्रपत्रों में मांगी हुई तात्त्विक सूचनाओं के अतिरिक्त भी व्यक्ति सम्बन्धी कई प्रश्न इस प्रकार के होते हैं जिनका उत्तर प्रपत्रों की खानापूर्ति मात्र करवा के उपलब्ध नहीं किया जा सकता। ऐसे अपेक्षाकृत गहन नाजुक अथवा सजटिल बिन्दुओं के सम्बन्ध में जब उपबोधक को सूचनाओं की अपेक्षा होती है तब उसे स्वत ही

अभिभावकों से सम्पर्क स्थापित करके व्यक्तिगत रूप से तथ्य एकत्रित करना होता है। ऐसे अवसरों पर अभिभावकों की अपेक्षित भूमिका यह होती है कि वे पूर्ण निष्ठा एवं वफादारी के साथ उपबोधक को अपना समय दें तथा आवश्यक सामग्री उसे देने में संकोच न करें। उनके द्वारा प्रदत्त सूचनाओं की गोपनीयता का आश्वासन तो उन्हें एक कुशल उपबोधक से मिलना अनिवार्य है ही— यद्यपि उचित यह है कि उन्हें ऐसे आश्वासन की आवश्यकता न हो।

(ख) पर्यावरणीय सूचना सेवा— व्यक्ति की पर्यावरणीय सूचनाओं का प्रारम्भिक अभिविन्यास भी उसके कुटुम्ब में ही होता है। सर्वप्रथम वह अपने अभिभावकों के व्यवसायों से अनायास ही परिचित होता हुआ उन व्यवसायों के प्रति परिस्थिति के अनुसार मनोवृत्तियाँ भी बना लेता है। किसी व्यवसाय विशेष में यदि वह अपने माता पिता को प्रसन्न, सफल, सन्तुष्ट तथा सम्मानित पाता है तो अनजाने ही वह भी उनका पदानुगामी बनने की योजनाएं बनाने लगता है। इसके विपरीत अपने व्यवसाय के संसार में असन्तुष्ट अभिभावकों के बालकों के अचेतन में उस व्यवसाय के प्रति भी नकारात्मक अभिवृत्तियाँ बन जाती हैं।

अपनी व्यावसायिक रुचियों पर अभिभावकों के इस अप्रत्यक्ष एवं सहज स्वाभाविक प्रभाव के अतिरिक्त व्यक्ति की अभिवृत्तियों एवं भावी योजनाओं को अभिभावकगण प्रत्यक्ष रूप से भी प्रभावित करते हैं। कई महत्त्वाकांक्षी अभिभावक अपने बालकों को वह बनाना चाहते हैं जो कि वे स्वयं न बन सके। उनकी अपूर्ण अभिलाषाओं का साकार स्वरूप वे अपने बच्चों की उपलब्धियों में ही देखकर इस प्रकार अपने अहम् की अप्रत्यक्ष तुष्टियाँ प्राप्त करते हैं। इस प्रकार की परिस्थितियों में एक आशंका यह रहती है कि अपनी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति की कामना में वे अपने नवकिशोर पुत्र पुत्रियों के मनोवैज्ञानिक लक्षणों का ध्यान नहीं रखते। वस्तुतः अधिकांश अभिभावकों को तो इनके स्वरूप तथा महत्त्व के सम्बन्ध में अभिज्ञता भी नहीं रहती। ऐसी स्थिति में हम उनकी सहयोगी भूमिका के विषय में यही कहेंगे कि उन्हें उपबोधक से अपने पुत्र-पुत्री के मनोवैज्ञानिक लक्षणों तथा इन लक्षणों से सम्बन्धित शैक्षिक-व्यावसायिक अवसरों सम्बन्धी सूचनाओं की प्राप्ति करनी चाहिए। इन दोनों वर्गों की सूचनाओं की समरसता के आधार पर छात्र को उचित शैक्षिक-व्यावसायिक-निर्देशन देने में उन्हें उपबोधक की वस्तुनिष्ठ सहायता करनी चाहिए।

शाला के निर्देशन-कार्यक्रम के अन्तर्गत आयोजित पर्यावरणीय सूचना प्रसारण में भी अभिभावकों को समुचित एवं सक्रिय रुचि लेना अपेक्षित है। इससे वे न केवल इन निर्देशन विधियों के प्रति छात्र की आस्था तथा अपने समुचित समञ्जन में उनकी वास्तविक रुचि को पुष्ट करेंगे अपितु इस सम्बन्ध में स्वयं अपने आपको अधिक प्रबुद्ध कर सकेंगे।

(ग) उपबोधन सेवा— यदि यह कहा जाय कि व्यक्ति के माता पिता उसके प्रथम मन एवं महत्त्वपूर्ण उपबोधक हैं तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। आवश्यकता इस बात की है कि अपने अपेक्षाकृत व्यक्तिनिष्ठ अथवा आनुषंगिक उपबोधन को वे यथासम्भव शाला-उपबोधक के वस्तुनिष्ठ एवं वैज्ञानिक उपबोधन की विपरीतता में न जाने दें। दूसरे शब्दों में— व्यक्ति के सम्बन्ध में अधिक सम्पूर्ण एवं विश्वसनीय सूचनाओं के आधार पर आयोजित उपबोधन का न केवल अवरोध प्राप्त करें अपितु उसके साथ समरसता स्थापित कर सकें।

(घ) नियोजन सेवा—समस्त सूचनाओं के परिप्रेक्ष्य में दिए हुए उपबोधन के आधार पर ही छात्र के शैक्षिक व्यावसायिक नियोजन की आयोजना बनानी होती है। इसमें पुनः अभिभावकों का समुचित सहयोग प्राप्त करके शाला निर्देशन कार्यक्रम को सफलता प्राप्त होती है। आयोजना के उपरान्त प्रथम नियोजन में अभिभावकों के सहयोग की आवश्यकता और भी अधिक होती है। नियोजन की स्थिति परिवर्तन की होती है—और किसी भी परिवर्तन में समायोजन अपेक्षित होता है। नवीन परिस्थितियों में व्यक्ति को समायोजित हो सकने के लिये सहायता देने में अभिभावकों का अवलम्ब निर्देशन कार्यक्रम के लिए अत्यन्त लाभदायक होता है।

(ङ) अनुवर्ती सेवा—जैसा कि कहा जा चुका है अनुवर्ती सेवाओं का मुख्य कार्य मूल्यांकन से सम्बन्धित होता है। इस मूल्यांकन प्रक्रम में—चाहे वह छात्र प्रगति का हो अथवा शाला निर्देशन सेवाओं का—अभिभावकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका निर्विवाद है। चूंकि वे शाला कार्य में प्रत्यक्ष रूप से अन्तर्ग्रस्त नहीं होते इसलिए उनके द्वारा किया हुआ निर्देशन-सेवाओं का मूल्यांकन तुलनात्मक रूप से अधिक वस्तुनिष्ठ हो सकता है।

(५) समुदाय

शाला निर्देशन कार्यक्रम में स्थानीय समुदाय की सहयोगी भूमिकाओं की ओर हम स्थान स्थान पर संकेत कर चुके हैं। विशिष्ट विवेचन के रूप में निम्न दो बिन्दुओं के अन्तर्गत इस भूमिका का स्पष्टीकरण किया जा सकता है।

(क) अतिरिक्त निर्देशन सेवा—हम कह चुके हैं कि शाला की निर्देशन सेवाओं द्वारा ही छात्र की समस्त समस्याओं का हल नहीं खोजा जा सकता। इन समस्याओं के बहुमुखी स्वरूप के कारण कुछ ऐसी कठिनाइयां कभी भी होती हैं जिन्हें शालेतर विशेषज्ञों के पास निर्देशित करना पड़ता है। इस प्रकार की कतिपय कठिनाइयों के उदाहरण हम अन्यत्र दे चुके हैं। यहां इतना कहना पर्याप्त होगा कि समुदाय के विविध क्षेत्रीय विशेषज्ञों को ऐसे अवसरों पर छात्रों की समुचित सहायता करके निर्देशन कार्यक्रम में अपनी अतिरिक्त वैज्ञानिकों की भूमिकाएं निभाना चाहिए।

(ख) पर्यावरणीय सूचना प्रसारण—इस सेवा के नामानुसार इसके अन्तर्गत सूचना-सामग्री की अद्यतन उपलब्धि पर्यावरणीय केन्द्रों संस्थाओं तथा विशेषज्ञों

द्वारा हो हो सकती है। शाला निर्देशन कार्यक्रम में समुदाय पर्यावरणीय सूचना सेवा के संकलन तथा प्रसारण में निम्न प्रकार से सहायता कर सकता है।

एक तो शाला निर्देशन कार्यक्रम द्वारा आयोजित शक्षिक-व्यावसायिक भ्रमण, व्यावसायिक वार्ताओं तथा व्यावसायिक दिवसों के आयोजन में समुदाय अपने विशेषज्ञ व्यक्तियों की सेवाएं, न्यूनतम धनराशि, स्वयं-सेवा सम्बन्धी शर्तें प्रदान करके उन्हें सन्तुष्टि प्रदान कर सकता है।

इसके अतिरिक्त छात्रों को भावी व्यावसायिक जीवन की प्रत्यक्ष परिस्थितियों से परिचित कराने के लिये आवश्यक है कि वाणिज्यिक संस्थाओं तथा व्यावसायिक औद्योगिक केन्द्रों में छात्रों की पर्यवेक्षित विजिट्स आयोजित की जावें। इन आयोजनाओं में आवश्यक सहयोग प्रदान करके ही समुदाय पर्यावरणीय सूचना प्रसारण के महत्वपूर्ण निदेशन कार्य में अपनी भूमिका का समुचित रूपेण निर्वाह कर सकता है।

(५) छात्र

अन्तिम किन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निर्देशन कार्यक्रम में है-उन छात्रों की जिनके लिये निर्देशन कार्यक्रम की मूलतः आयोजना की जाती है।

छात्रों की भूमिका इस कार्यक्रम के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक उसमें घुली मिली रहती है। सर्वप्रथम तो वे अपने विषय में आवश्यक सूचनाएं सही एवं निष्पक्षोष रूप से उपबोधक को देकर निर्देशन कार्यक्रम की नींव तैयार करते हैं। इस वैयक्तिक दत्त के विश्लेषण में भी यदि वे रुचि लें तो न केवल उनका स्वयं का अववोध वधित होता है अपितु उनमें एक वस्तुनिष्ठ परिपक्वता का विकास होता है। शाला निर्देशन कार्यक्रम की पर्यावरणीय सूचना आयोजन में वे विविध भांति अपनी भूमिकाएं अदा करते हैं-जिनके उदाहरण-उनकी वैयक्तिक डायरियों, आत्मभाषण, स्वपत्र, विराम, व्यावसायिक कक्ष आदि के वर्णन में दिये जा चुके हैं। शक्षिक-व्यावसायिक भ्रमणों के आयोजन का भी अधिकांश उत्तरदायित्व छात्रों पर ही होना चाहिये। तत्पश्चात् उपबोधन का समय एक द्विमार्गी प्रक्रियाओं में सम्पन्न होता है तथा छात्र के सहयोग के बिना बहुत अग्रसर नहीं हो सकता।

अन्त में अपने स्वयं के विकास-समन्जन का तथा इस विकास-समायोजन हेतु आयोजित निर्देशन सेवाओं का सबसे सही मूल्यांकन स्वयं छात्रों द्वारा ही हो सकता है। इस वस्तुनिष्ठ भूमिका को निभाने से वे वस्तुतः अपने विकास तथा समन्जन की राह पर ही अधिक अग्रसर हो पाते हैं।

निर्देशन कार्यक्रम आयोजन के विविध सोपान

इस अध्याय में अभी तक हमने निदेशन कार्यक्रम संगठित करने के सामान्य सिद्धान्तों का निरूपण करते हुए विविध सम्भावित आयोजकों की भूमिकाओं एवं उत्तरदायित्वों का अध्ययन किया। इस पृष्ठभूमि के परिप्रेक्ष्य में निर्देशन-कार्यक्रम के व्यावहारिक आयोजन के कतिपय प्रक्रियात्मक चरणों का विवेचन क्षेत्रीय कार्य

कर्ताओं के लिये अर्थपूर्ण एवं सहायक रहेगा। इन चरणों के प्रस्तुतीकरण के पूर्व हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि यह प्रस्तुतीकरण केवल एक लचीली रूपरेखा के स्वरूप में ही दिया जा रहा है। प्रत्येक विद्यालय के लिये यह वांछनीय होगा कि इस निर्देशन-तंत्र के परिप्रेक्ष्य में स्थानीय आवश्यकताओं तथा साधनों के अनुरूप अपने कार्य चरणों को निश्चित करें।

(१) निर्देशन आवश्यकताओं का सर्वेक्षण

यह तो एक तर्कसंगत तथ्य है कि किसी भी शालीय कार्यक्रम के अर्थपूर्ण हो सकने की एक महती पूर्वावश्यकता यह है कि उसके उद्देश्य कार्य विभाग आदि छात्रों की अनुभूत आवश्यकताओं के आधार पर ही निश्चित होनी चाहिए। तभी अध्यापक-वर्ग एवं स्थानीय समुदाय की भी उसमें आवश्यक सहयोग देने की रुचि होगी तथा छात्रगणों की उसमें वांछनीय आस्था उत्पन्न होगी। चूंकि निर्देशन-कार्यक्रम में तो छात्र केन्द्रित होता है इसलिए छात्रों की अनुभूत आवश्यकताओं का व्यवस्थित सर्वेक्षण ही निर्देशन कार्यक्रम का प्रथम एवं चरण होना चाहिये।

इस प्रकार का सर्वेक्षण करने हेतु प्रयोग में आ सकने वाले साधनों का संक्षिप्त व विवेचन निम्न अनुच्छेदों में प्रस्तुत किया जा रहा है।

(क) प्रमाणीकृत उपकरणों द्वारा

पश्चिम में तो इस प्रकार के सर्वेक्षणों के लिये प्राय कुछ ऐसे प्रमाणीकृत उपकरण उपलब्ध होते हैं जिनके प्रशासन तथा अंकन के आधार पर छात्रों की अनुभूत कठिनाइयों का सरलता के साथ निदान किया जा सकता है। भारत में इस प्रकार का प्रामाणिक सर्वेक्षण करने योग्य सरल उपकरणों का प्राय अभाव-सा है। किन्तु हम कतिपय ऐसे पश्चिमीय उपकरणों का यहां सुझाव देना चाहते हैं जोकि तुलनात्मक दृष्टि से संस्कृति मुक्त हैं तथा जिनका प्रयोग आवश्यक सावधानीसहित मार्गाकांक्षा होकर किया जा सकता है।

(अ) मूनी प्रॉब्लम्स-चेक-लिस्ट

इस सरल उपकरण में छात्र के विविध जीवन-क्षेत्रों में से सम्भावित कठिनाइयों की सूची संकलित करदी गई है। छात्र से अपेक्षित है कि वह इस सूची को ध्यानपूर्वक पढ़ते हुए अपने स्वयं पर लागू होने वाली कठिनाई का चिह्नांकित करता जावे। प्रत्येक क्षेत्र में अंकित कठिनाइयों का स्वतन्त्र एवं सामूहिक रूप से गणन करने का इस सूची के प्रारूप में समुचित प्रावधान है। शाला के समस्त छात्रों द्वारा पूरित सूची-प्रारूपों का विश्लेषण शाला में छात्रों द्वारा सामान्यतः अनुभूत समस्याओं का एक वास्तविक चित्र प्रस्तुत कर देता है जोकि निर्देशन कार्यक्रम के आयोजन हेतु एक वध निर्देशन-तन्त्र प्रस्तुत करता है।

यदि मूनी प्रॉब्लम्स चेक लिस्ट में दी गई समस्याएं किसी शाला को किसी प्रकार अनुपयुक्त-प्रतीत हो तो इस सरल प्रारूप का ध्यान में रखकर स्थानीय परिस्थितियों के सन्दर्भ में इस प्रकार की सूची बनाई जा सकती है।

(आ) वाक्य पूर्ति सूचिया

इन उपकरणो की गणना अब प्रक्षेपण प्रविधियो म की जा सकती है। वाक्य के प्रारम्भ म य अथवा अत के कुछ श द अथवा श द समूह देकर छात्रो से अपनी अनुभूत भावनाओं के अनुसार वाक्य-पूर्ति करने को कहा जाता है। इस प्रकार करायी गई वाक्य पूर्तियो के मूल म यह अभिप्राय होता है कि वाक्य पूर्ति करते समय व्यक्ति अनायास ही अपनी अचेतन आकांक्षाओं भावनाओं आशकाओ आदि को अपनी वाक्य रचना म प्रक्षेपण कर देता है। पश्चिम म इस प्रकार की सूचियों उपलब्ध हैं। या इन का प्रयोग करके उनका विश्लेषण स्थानीय परिस्थितियो के अनुसार किया जा सकता है अथवा विद्यालयी आवश्यकताओ के अनुरूप ही इस प्रकार की सूचियो का निर्माण किया जा सकता है।

(ख) शिक्षक-निर्मित साधनो का उपयोग

उक्त सुझाव के अनुवर्तन म ही इस महत्वपूर्ण बिन्दु का कुछ अधिक विशद रूप स उ लेख समीचीन होगा।

हमारे विचार म निर्देशन कार्यक्रम के किसी भी स्तर पर शिक्षक निर्मित साधनो का उपयोग इसलिए लाभदायक रहेगा कि इसम उन्हे कार्यक्रम को अपनी निजी कृति मान कर उसम अन्तरग रूप स अन्तर्ग्रस्त हो सकने की सहज प्रेरणा प्राप्त हो सकेगी।

सामान्यत ये साधन प्रश्नावली समस्या सूची जीवन-वृत्त आख्यानात्मक लेख आदि के रूप म हो सकते हैं। इनका विशद विवेचन आगे अध्याय म विशिष्ट रूप स किया जायगा। यहाँ पर तो हम केवल इस तथ्य पर बल देना चाहते हैं कि निर्देशन कार्यक्रम की आयोजना करने के पूर्व छात्रो की वास्तविक आवश्यकताओ तथा अनुभूत समस्याओ का समुचित सर्वेक्षण कर लेना एक वध प्राथमिक चरण होगा।

(२) स्थानीय साधनो का सर्वेक्षण एव उपयोग

छात्र आवश्यकताओं का सर्वेक्षण कर चुकने पर निर्देशन कार्यक्रम आयोजन का द्वितीय स्वाभाविक चरण होना चाहिए उपलब्ध साधन-सुविधाओं का मूल्य निर्धारण। इसम तो कोई सन्देह नहीं कि जितने अधिक साधन उपलब्ध होंगे उतनी ही कार्यक्रम की सम्पन्नता म वृद्धि होगी। किन्तु यह आदर्श स्थिति सदैव सम्भव नहीं हो सकती। वस्तुत आदर्श की व्याख्या भी किसी स्थान की सामान्य साधन सम्पन्नता के सन्दर्भ म ही की जा सकती है। विशेषकर भारत की परिस्थिति म जहाँ पर नि शुल्क अनिवार्य शिक्षा के लिए ही समुचित साधनो का अभाव है—एक निर्देशन कार्यक्रम के लिए साधनो का शोध अन्तिमगत मनवाना प्राय कठिन ही जाता है।

यहाँ पर हम इस बात पर बल देना चाहते हैं कि तकनीकी निर्देशन कार्यक्रम से सम्बन्धित जितनी प्रवृत्तियाँ शालाओ म समायत प्रचलित होती है उनका लेखा

लेखा करके उनकी समुन्नति का प्रयत्न किया जावे। हमारी इस मान्यता के पोषण में नीचे कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

(क) संचयात्मक लेख

कई वर्तमान शालाओं में छात्रों के वैयक्तिक संचयात्मक लेख रखने का नियम-सा हो चला है। इन्हीं लेखों का वैयक्तिक अनुसूची सेवा के रूप में विकास किया जा सकता है।

(ख) दल-व्यवस्था—कुछ शालाओं में छात्रों के लिये दल-व्यवस्था की जाती है। इसका निर्माण प्रायः कक्षा के आधार पर ही होता है। प्रत्येक कक्षा अथवा दल के लिये कक्षा का मुख्य अध्यापक उत्तरदायी होता है। अध्यापक के इस उत्तरदायित्व का सीमा विस्तार शैक्षिक क्षेत्र से बाहर छात्र के अन्य जीवन आयामों में भी किया जा सकता है और इस प्रकार छात्र के सर्वांगीण विकास एवं समंजन के प्रति भी अध्यापक को अधिक यत्नशील बनाया जा सकता है। इस वांछनीय सचेष्टशीलता का यदि शाला उपबोधक के निर्देशन-नेतृत्व से समन्वित तार तम्य बिठाया जा सके तो उसे इस कार्यक्रम में अध्यापकों का वांछनीय सहयोग प्राप्त करने में बहुत सहायता मिल सकती है। अपने दल कार्य में ही वह विविध निर्देशन उपकरणों का प्रयोग करके अपने कार्य को अधिक वैज्ञानिक बनाते हुए निर्देशन सेवाओं को भी पुष्टि प्रदान कर सकता है।

(ग) शनिवारीय सभाएं—वर्तमान शालाओं में आजकल यह प्रवृत्ति भी प्रचलित हो चली है कि सप्ताह में एक दिन—सामान्यतः शनिवार—के अधिकांश समय का उपयोग कतिपय शालेतर प्रवृत्तियों में भी किया जाता है। इन शालेतर प्रवृत्तियों के स्वरूप निरूपण में भी निर्देशन-कार्यक्रम की आवश्यकताओं का ध्यान रखा जा सकता है। उदाहरणार्थ इस समय आयोजित वार्ताओं के अन्तर्गत कतिपय शिक्षा शास्त्री अथवा औद्योगिक विशेषज्ञों की वार्ताओं की व्यवस्था की जा सकती है। इस दिन के नियत नियोजित सांस्कृतिक कार्यक्रमों में व्यावसायिक विषयों पर विद्यार्थियों के भाषण भाषणों की व्यवस्था करके उन्हें व्यवसाय संसार सम्बन्धी अद्यतन सूचनाएं संकलित करने के लिये प्रेरणा दी जा सकती है। शाला में स्थापित व्यवसाय-क्लब के प्रतिवेदन अथवा उसके कार्यों के सम्बन्ध की प्रदर्शनी इत्यादि द्वारा भी निर्देशन कार्यक्रम की पर्यावरणीय सूचना सेवा को पुष्टि प्राप्त होगी।

(घ) प्रातः प्रार्थना सभा—कई विद्यालयों में प्रातः प्रार्थना-सभा के कार्यक्रम के अन्तर्गत सूचना प्रसारण की प्रवृत्ति समाहित की जाती है। शाला के कुछ चयनित छात्र अद्यतन सूचनाएं तैयार करके उन्हें समस्त शाला समूह के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार की नयी सूचनाओं के साथ सप्ताह में एकाध बार शैक्षिक-व्यावसायिक पर्यावरण के सम्बन्ध में अद्यतन सूचना-संग्रह तथा प्रसारण हेतु छात्रों को प्रोत्साहित किया जा सकता है। इससे छात्र एवं अध्यापक—दोनों के ही निर्देशन-अभिविन्यास में सहायता मिलेगी।

(३) शिक्षक-अभिभावक-सम्मेलन—इस प्रकार के सम्मेलन भी हमारी वर्तमान प्रगतिगामी शालाओं की नयी प्रवृत्तियों के अंतर्गत आ चुके हैं। हमारे विचार में ये सम्मेलन निर्देशन कार्यक्रम की दृष्टि से एक स्वर्ण-अवसर हैं जबकि निर्देशन में अभिभावकों की आवश्यक रुचि व सहयोग की अनायास ही प्राप्ति हो सकती है। यह वह सम्मेलन है जिसमें अभिभावक तथा शिक्षक छात्र की सम्भावित समस्याएं तथा उनकी स्वयं की अनुभूत कठिनाइयों के सम्बन्ध में विचार विनिमय करते हैं तथा उनके निवारण का प्रयत्न कर सकते हैं। निर्देशन कार्यक्रम का प्रत्यक्ष एवं तात्कालिक सम्बन्ध इस प्रकार की कठिनाइयों के अवरोधन में होता है। इसके अतिरिक्त एक और महत्त्वपूर्ण विषय जिस पर इस समय चर्चा की जा सकती है वह है छात्र की भविष्य-शिक्षा व व्यावसायिक आयोजनाओं की सम्भावनाएं तथा उनका मूल्य-निर्धारण। इस सम्बन्ध छात्रों की वास्तविक रुचि एवं वातावरण के उपलब्ध अवसरों के पारस्परिक मिलान द्वारा अभिभावकों को छात्रों के सही मार्गदर्शन के लिए प्रेरित किया जा सकता है—या यों कहें कि उन्हें इस विषय में अधिक प्रबुद्ध बनाकर उनकी भावी महत्त्वाकांक्षाओं को अधिक वास्तविक एवं व्यावहारिक स्वरूप दे सकते हैं।

(ङ) कक्षा-कार्य—नमी कक्षा-कार्य का भी निर्देशन आवश्यकताओं के निमित्त सवक्षण एवं पूर्ति के लिए समुचित उपयोग किया जा सकता है। नीचे कुछ इस प्रकार के उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं—जिनके आधार पर शाला—कार्मिक इस प्रकार की निर्देशन अभिविन्यासित कक्षा प्रक्रियाएं और भी सोच सकते हैं।

(अ) जीवन वृत्तीय लेख

साहित्य एवं भाषा अध्ययन की कक्षाओं में प्रायः एक सामान्य आवश्यकता होती है निबन्ध-लेखन। अध्यापक अपने सूझ-बूझ एवं चिंतन के आधार पर कुछ ऐसे विषय सोच सकते हैं जिनमें विद्यार्थी अपनी आशाओं निराशाओं आकांक्षाओं आशंकाओं आसक्तियों मान्यताओं आदि से सम्बन्धित अपने भाव अभिव्यक्त कर सकें। यदि अध्यापक छात्र सामंजस्य उचितकोटि का है तो इस प्रकार के लेखों में छात्रों के आन्तरिक व्यक्तित्व की कई महत्त्वपूर्ण झलक उपलब्ध हो सकती हैं जोकि उनके विकास एवं समायोजन में सहायता देने हेतु मूल्यवान सामग्री प्रदान करती हैं। इस प्रकार के लेख शीर्षकों के कुछ उदाहरण निम्नांकित हैं—

—मेरे जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण दिवस।

—मेरी महत्त्वाकांक्षा।

—एक भग्नाशापूर्ण अनुभूति।

—मैं क्या बनना चाहूंगा।

—यदि मैं प्रधानाध्यापक होता।

—यदि मैं शिक्षा-मन्त्री होता।

—यदि मैं प्रधानाध्यापक होता ।

(आ) सामाजिक विज्ञान के विषय

सामाजिक विज्ञान से सम्बन्धित विषयों के अध्ययन अध्यापन में कई पर्यावरणीय तथ्यों का समावेश बड़ी स्वाभाविकता से किया जा सकता है। स्थानीय भौगोलिक, ऐतिहासिक वास्तविकताओं के सन्दर्भ में जीवन एवं कार्य परिस्थितियां, तात्कालिक औद्योगिक व्यवस्थाएं एवं सम्भावनाएं, विविध व्यवसायों के आर्थिक सामाजिक स्तर आदि ये ऐसे महत्त्वपूर्ण ज्ञान बिन्दु हैं जिनका प्रेषण इतिहास, भूगोल, सामाजिक ज्ञान आदि के अध्यापन में छात्रों तक किया जा सकता है।

(इ) कार्मिकों के तत्परता-स्तर का निर्माण

निर्देशन-कार्यक्रम के संगठन-सिद्धान्तों में हमने कार्मिकों के तत्परता स्तर को एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया था। तदनुसार इस वाञ्छनीय स्तर तक कार्मिकों को पहुँचाना निर्देशन कार्यक्रम के आयोजन का एक प्रमुख चरण रहेगा। इन कार्मिकों में वे सभी व्यक्ति समाहित हैं जिनकी विशिष्ट निर्देशन भूमिकाओं का वर्णन हम अध्याय के पूर्वार्द्ध में कर चुके हैं। इन सभी कार्मिकों को अपने विशिष्ट उत्तरदायित्वों के सन्दर्भ में निर्देशन अभिविन्यास प्रदान करना एक सफल एवं सक्षम निर्देशन कार्यक्रम की महती पूर्वावश्यकता होती है।

यह अभिविन्यास बैठकों, वार्ताओं, कार्य गोष्ठियों, स्थानीय भ्रमणों, साहित्य प्रसारण आदि के माध्यम से किया जा सकता है। अगले अध्यायों में इन सभी विधाओं के सम्बन्ध में अधिक विस्तृत चर्चा की जायेगी।

जिस मुख्य कार्य चरण के सन्दर्भ में ये बातें कही जा रही हैं वह है कार्मिकों का तत्परता स्तर। बिना उनकी कार्य-तत्परता के निर्देशन कार्यक्रम नहीं चल सकता। उपबोधक को उनके सक्रिय सहयोग के बिना एक पद भी अग्रसर करना दुष्कर है। और बिना कार्य-तत्परता के यह वाञ्छनीय सहयोग केवल एक आदर्श आवश्यकता की धारणा के स्तर तक ही सीमित रह जायगा।

(४) समितियों का निर्माण

छात्र के बहुमुखी समायोजन एवं सर्वांगीण विकास से सम्बन्धित होने के कारण निर्देशन सेवाएं एक जटिल कार्य-व्यवस्था है। इस आवश्यक संगठितता को साथ लिए हुए भी सरल, सुगम एवं सुव्यवस्थित संचालन का एक उपाय यह हो सकता है कि इसके अन्तर्गत अपेक्षित विविध प्रक्रियाओं के लिए विभिन्न समितियों का निर्माण कर दिया जाय। उदाहरणार्थ कुछ अध्यापकों को छात्रों की वैयक्तिक सूचनाओं के संकलन का उत्तरदायित्व सौंपा जा सकता है तथा कुछ अन्य कार्मिकों को पर्यावरणीय सूचनाओं के संकलन, व्यवस्थीकरण एवं प्रसारण विषयक कर्त्तव्य दिए जा सकते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस प्रकार वैयक्तिक तथा सामूहिक उत्तरदायित्वों के निर्धारण तथा इनसे सम्बन्धित समितियों के निर्माण में कार्मिकों की व्यक्तिगत रुचियों, योग्यताओं तथा प्रशिक्षणताओं का पूरा ध्यान रखा जाना

चाहिए। वस्तुतः आदर्श स्थिति तो यह होगी कि प्रस्तावित निर्देशन कार्यक्रम की रूपरेखा एवं उसके अन्तर्गत आयोजित कार्यों से अभिविन्यासित हो जाने के उपरान्त कार्मिक स्वयं अपने रुचि क्षेत्र से सम्बन्धित उत्तरदायित्व के लिए स्वयं आग्रह करें। इस प्रकार के पूर्व आयोजनाओं के आधार पर किया हुआ उत्तरदायित्व वितरण सामान्यतः अधिक सक्षम एवं प्रभावशाली होता है।

संक्षेप में यह एक सामान्य निर्देशन कार्यक्रम संयोजित करने के पूर्व चरणों की एक संक्षिप्त रूपरेखा। विशेषकर वर्तमान भारतीय परिस्थितियों के अन्तर्गत एक सम्भावित न्यूनतम निर्देशन कार्यक्रम के स्वरूप तथा उसके आयोजन चरणों का विशद विवेचन पुस्तक के अन्तिम अध्याय में किया जाएगा।

उपसंहारात्मक कथन

प्रस्तुत अध्याय का मूल उद्देश्य था एक व्यावहारिक निर्देशन-कार्यक्रम के प्रत्यक्ष संगठन के विषय में पाठकों को सामान्यतः अभिविन्यासित करना। तदनुसार सर्वप्रथम संगठन के कतिपय मूलभूत सिद्धान्तों का संक्षिप्त विवेचन विषय की एक पृष्ठभूमि के रूप में प्रस्तुत किया गया। इस पृष्ठभूमि के परिप्रेक्ष्य में ही हमने विविध निर्देशन-कार्मिकों की विशिष्ट कार्य भूमिकाओं का विशद अवबोध प्राप्त करने का प्रयास किया। अध्याय के अन्तिम अंश में एक निर्देशन कार्यक्रम को प्रकार्यात्मक रूप से आयोजित करने हेतु आवश्यक कतिपय कार्य चरणों का संक्षिप्त निरूपण किया।

अवतक के प्रस्तुत अध्यायों में से उद्भूत विविध महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं का विस्तृत विवेचन अगले अध्यायों में किया जाएगा।

६

व्यक्ति के अध्ययन हेतु प्रयुक्त प्रविधियाँ एवं साधन

[प्रस्तावना व्यक्ति के अध्ययन का विभिन्न क्षेत्रों मे उपयोग व्यक्ति अध्ययन सम्बन्धी कुछ प्रमुख सिद्धान्त–(१) विविधता (२) व्यापकता (३) विश्वसनीयता वैयक्तिक सूचनाओं के स्रोत वैयक्तिक सूचनाओं के क्षेत्र वैयक्तिक अध्ययन हेतु प्रयुक्त प्रविधियां —

(१) प्रेक्षण— (क) वैज्ञानिक प्रेक्षण के लक्षण (अ) उद्देश्य निर्धारण (आ) योजना (इ) परिणामों का अभिलेखन (ई) उपयुक्त नियन्त्रण (ख) प्रेक्षण का उपयोग (अ) बालक का कक्षा मे प्रेक्षण (आ) बालक का पाठ्यसहगामी प्रवृत्तियों में प्रेक्षण (इ) बालक का अन्य परिस्थितियों मे प्रेक्षण (ग) प्रेक्षण के प्रकार (अ) नियमित एवं अनियोजित प्रेक्षण (आ) भाग ग्राही एवं भाग अग्राही प्रेक्षण (घ) प्रेक्षण प्रविधि की सीमाएं (अ) प्रेक्षण के अवसर की अनिश्चितता, (आ) प्रत्यक्ष व्यवहार का प्रेक्षण सम्भव नहीं (इ) प्रेक्षक के पूर्वाग्रहों का प्रभाव (ई) प्रेक्षक का प्रशिक्षण।

(२) साक्षात्कार— (क) साक्षात्कार के लाभ (अ) महत्त्वपूर्ण सूचना प्राप्त होने की सम्भावना (आ) साक्षात्कार से प्राप्त सूचनाओं का महत्त्व (इ) सूचनाओं के स्पष्टीकरण की सम्भावना (ई) सूचनाओं की पृष्ठभूमि का पता लगाना (उ) अन्य प्रविधियों एवं साधनों से प्राप्त सूचनाओं की सम्पुष्टि एवं सत्यापन (ख) साक्षात्कार की सीमाएं (अ) व्यक्तिनिष्ठ प्रविधि (आ) प्रशिक्षण की आवश्यकता (इ) समय एवं श्रम का अधिक व्यय (ग) साक्षात्कार के उपयोग (अ) व्यक्ति की भविष्य योजनाएं एवं आकांक्षा स्तर (आ) व्यक्ति की अभिव्यक्त अभिरुचियां (इ) व्यक्ति के शीलगुण (ई) मानसिक द्वन्द्व एवं समन्जन समस्याएं (उ) पारिवारिक सूचनाएं (ऊ) शालीय जीवन सम्बन्धी सूचनाएं (ए) छात्र के सम आयु साथी (घ) साक्षात्कार के प्रकार (अ) संरचित साक्षात्कार (आ) अ-संरचित साक्षात्कार (ङ) साक्षात्कार के कुछ प्रमुख सिद्धान्त— (अ) साक्षात्कृत से तादात्म्य (आ) सूचनाओं की गोपनीयता (इ) साक्षात्कार का वातावरण (ई) साक्षात्कार के परिणामों का

अभिलेखन (उ) साक्षात्कार का समापन (च) साक्षात्कार कर्त्ता के कुछ वांछनीय गुण।

( ) समाजमिति— (क) समाजमिति स्तर का अध्ययन (ख) लोकप्रिय एकाकी व तिरस्कृत सदस्य (ग) समाज आलेख।

वयक्तिक अध्ययन के साधन— (१) मानवीकृत साधन (क) निर्मित एवं निष्पादन साधन। (अ) निर्मित साधन (१) निर्मित साधनों का उपयोग (२) निर्मित साधनों के प्रकार परीक्षण—(१) बुद्धि परीक्षण (२) अभिक्षमता परीक्षण (३) निदानात्मक परीक्षण (४ उपलब्धि परीक्षण सूचियाँ विज्ञापन सूचियाँ प्रक्षेपी प्रविधियाँ – रोशा परीक्षण टी ए टी परीक्षण अन्य प्रक्षेपी विधियाँ। (आ) निष्पादन साधन (१) बुद्धिमापन हेतु प्रयुक्त निष्पादन परीक्षण (२) अभिक्षमता मापन हेतु प्रयुक्त निष्पादन परीक्षण।

(ख) वयक्तिक एवं सामूहिक साधन (अ) वयक्तिक साधन (आ) सामूहिक साधन

(२) अमानवीकृत अथवा निरीक्षक निर्मित साधन— (क) निर्धारण मापनी (अ) निर्धारण मापनी के लाभ (आ) निर्धारण मापनी के निर्माण एवं उपयोग सम्बन्धी कुछ प्रमुख सावधानियाँ (ख) उपाख्यान वृत्त (अ) उपाख्यान वृत्त का महत्व (आ) उपाख्यानवृत्त की आवश्यकता ( ) उपाख्यानवृत्त में किन घटनाओं का समावेश किया जाय।

(३) आत्म विवरणात्मक साधन – (क) आत्मकथा (ख) घटना विवरण (ग) प्रश्नावलियाँ।

(४) वयक्तिक सूचना सकलन हेतु प्रयुक्त साधनों के उपयोग के प्रमुख सिद्धान्त— (क) मानवीकृत साधनों के उपयोग के सिद्धान्त (अ) मानवीकरण सम्बन्धी सूचनाए (आ) साधन की उपयुक्तता (इ) साधन से अति न करना (ई) साधन के उपयोग से पूर्व उससे पूर्ण परिचित होना (उ प्रशासन के समय सावधानियाँ (ऊ) परीक्षणों के परिणाम (ए) मानवीकृत साधन ही एकमात्र साधन नहीं (ए) भारत में परीक्षणों के प्रयोग में विशेष सावधानियाँ (ख) अमानवीकृत साधनों के उपयोग के सिद्धान्त—(अ) निर्माण के प्रमुख साधन (आ) उपयोग से सम्बन्धित सावधानियाँ

भारत में उपलब्ध परीक्षणों के कुछ उदाहरण

बुद्धि परीक्षण व्यक्तित्व परीक्षण अभिरुचि परीक्षण अभिक्षमता परीक्षण।

उपसंहारात्मक कथन ?

निर्देशन का प्रमुख उद्देश्य है व्यक्ति में अपनी समस्याएं स्वतन्त्रता से सुलझाने की क्षमता उत्पन्न करना अथवा विविध पक्षीय जीवन सम्बन्धी विभिन्न निश्चय स्वयं बुद्धिमत्ता पूर्ण एवं स्वतन्त्रता से ले सकने की क्षमता उत्पन्न करना। यह तभी सम्भव हो सकता है जब एक ओर व्यक्ति को अपने सम्बन्ध में अधिक से अधिक जानकारी हो तथा दूसरी ओर जिस वातावरण से सम्बन्धित समस्या उद्भूत

हुई है उसका पूर्ण परिचय हो। यदि व्यक्ति अपनी विशेषताओं एवं सीमितताओं को ध्यान में रखते हुए कोई निर्णय लेता है अथवा कोई योजना बनाता है तो वह अधिक वास्तविकतावादी होगा। अनेक बार या तो बालक स्वयं अथवा उनके माता पिता बालक की योग्यताओं अथवा गुणों की वस्तुस्थिति को समझे बिना शैक्षिक अथवा व्यावसायिक चयन सम्बन्धी निर्णय ले लेते हैं और फलस्वरूप बालक एवं अभिभावक दोनों को निराशा का मुँह देखना पड़ता है। विज्ञान विषय लेने के लिए तो शालाओं में प्रत्येक विद्यार्थी आतुर रहता है चाहे उसमें अनिवार्य योग्यताएं क्षमताएं हों अथवा न हों। अनेक बार तो समझदार विद्यार्थी अथवा माता पिता आवश्यक जानकारी के अभाव में भी त्रुटिपूर्ण निर्णय ले बैठते हैं। व्यक्ति के सम्बन्ध की जानकारी के आधार पर उचित निर्णय लेने से व्यक्ति को तो सन्तोष प्राप्त होगा ही साथ साथ राष्ट्रीय मानवीय ऊर्जा का भी संरक्षण सम्भव हो सकेगा।

व्यक्ति अध्ययन का विभिन्न क्षेत्रों में उपयोग

यदि व्यक्ति अध्ययन के फलस्वरूप वैज्ञानिक ढंग से व्यक्ति सम्बन्धी सूचनाओं का संग्रह किया जाय तो इसका उपयोग अनेक परिस्थितियों में विभिन्न व्यक्तियों द्वारा किया जा सकता है। यद्यपि इसके महत्त्व का वर्णन अध्याय ४ में विस्तृत रूप से किया गया है फिर भी इस अध्याय के सन्दर्भ में कुछ प्रमुख तथ्यों की पुनरावृत्ति कदाचित् यथोचित सिद्ध हो सकती है। जैसा उपरोक्त अनुच्छेद में कहा गया है कि बालक को जीवन की अनेक परिस्थितियों में बुद्धिमत्तापूर्ण एवं स्वतन्त्र निर्णय लेने में उससे सम्बन्ध की जानकारी अनिवार्य होती है। इसके अतिरिक्त शिक्षकों के लिए भी यह सूचनाएं अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध हो सकती हैं। यदि शिक्षक अपने छात्रों की विशेषताओं सीमितताओं से पूर्णरूप से भिज्ञ है तो वह अध्ययन अध्यापन परिस्थितियों का निर्माण अधिक कुशलता से कर सकता है। साथ ही वह कक्षा में बालकों द्वारा निर्मित समस्याओं को भी अधिक अच्छे ढंग से सुलझा सकता है। पाठ्यचर्या निर्माण कर्त्ताओं एवं शाला प्रशासकों के लिए भी इन सूचनाओं का अत्यधिक महत्त्व है। माता पिताओं एवं अभिभावकों के लिए तो अपने बच्चे की विशिष्टताओं एवं सीमाओं का जानना अनेक परिस्थितियों में उपयुक्त निर्णय लेने के लिए अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध हो सकता है। उपबोधन सेवा का तो आधार ही व्यक्ति के सम्बन्ध की पूर्ण विश्वसनीय वैज्ञानिक ढंग से एकत्रित की हुई सूचनाएं हैं। बिना पर्याप्त सूचनाओं के उपबोधक उपबोध्य को किसी समस्या के हल ढूंढने में सहायता ही नहीं प्रदान कर सकता। व्यक्ति सम्बन्धी सूचनाओं के महत्त्व को ध्यान में रखते हुए निर्देशन सेवाओं में से एक सम्पूर्ण सेवा—वैयक्तिक सूचना सेवा—का गठन किया गया है। जिसके अन्तर्गत व्यक्तिगत सम्बन्धित आवश्यक सूचनाओं का संकलन विश्लेषण वर्गीकरण सिस्टमीकरण निर्वचन एवं उपयोग विधिवत ढंग से किया जाता है।

व्यक्ति अध्ययन सम्बन्धी कुछ प्रमुख सिद्धान्त

(१) विविधता—व्यक्ति का जीवन इतना जटिल है कि उसके जीवन के किसी भी क्षेत्र की समस्या का सही हल तब तक नहीं ढूँढा जा सकता जब तक उसके जीवन के विविध पक्षों सम्बन्धी पूर्ण जानकारी हम न हो। अतः व्यक्ति के बहुआयामी व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त करना निर्देशन कार्यकर्ता के लिए आवश्यक हो जाता है। विभिन्न क्षेत्रों के घनिष्ठ अन्तःसम्बन्धों को चिकित्साशास्त्र के उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है। प्रायः हम देखते हैं कि रोगी के पेट के विकार के निदान एवं उपचार के लिए चिकित्सक रक्त, मल, मूत्र आदि का परीक्षण करता है। एक सामान्य व्यक्ति के लिए शायद इतने परीक्षण अनावश्यक लगें किन्तु चिकित्सक यह जानता है कि रोग के लक्षण एक क्षेत्र में हो सकते हैं तथा कारण शरीर के किसी अन्य क्षेत्र में। अतः रोग के समुचित निदान हेतु शरीर सम्बन्धी अधिक से अधिक वैज्ञानिक सूचनाएँ एकत्रित करना उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

(२) व्यापकता—व्यापकता से हमारा तात्पर्य यह है कि व्यक्ति के सम्बन्ध की सूचनाएँ जितनी लम्बी अवधि की होंगी उतनी ही उनमें अधिक विश्वसनीयता होगी एवं उन सूचनाओं की उपयोगिता भी बढ़ जायगी। पुनः चिकित्साशास्त्र के ही उदाहरण को लेते हुए इस बिन्दु को स्पष्ट करना चाहेंगे। एक चिकित्सक रोगी के रोग का निदान करने से पूर्व उससे उस रोग का इतिहास पूछता है। तात्कालिक जानकारी के आधार पर हो सकता है कि त्रुटिपूर्ण निष्कर्ष निकाला जाय। वस्तुतः भी यह एक वैज्ञानिक सत्य है कि सीमित तथ्यों पर आधारित निष्कर्ष सम्पूर्ण तथ्यों पर आधारित निष्कर्षों से विश्वसनीय होते हैं। व्यक्ति के किसी एक व्यवहार के आधार पर उसके व्यक्तिगुणों का अनुमान लगा लेना न तो उचित होगा न ही विश्वसनीय। जब तक व्यक्ति का लम्बे समय तक अध्ययन कर उसके सम्बन्ध की पर्याप्त सूचनाएँ हम एकत्रित नहीं कर लेते तब तक हम कोई अन्तिम निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए।

(३) विश्वसनीयता—व्यक्ति सम्बन्धी सूचनाओं को एकत्रित करने का एक सिद्धान्त यह भी है कि जो भी सूचनाएँ हम एकत्रित करें वे विश्वसनीय हों। इस अध्याय में हम व्यक्तिगत सूचनाओं को एकत्रित करने की विभिन्न प्रविधियों एवं साधनों की चर्चा करेंगे। परन्तु सूचना एकत्रित करने वाले व्यक्ति को प्रविधि अथवा साधन का चयन करते समय यह देख लेना चाहिए कि विशिष्ट परिस्थितियों में कौन सा साधन अथवा प्रविधि अत्यधिक विश्वसनीय सूचना प्राप्त करने में सहायक हो सकती है। एक परिस्थिति में जो साधन या प्रविधि उपादेय सिद्ध हो सकती है शायद दूसरी परिस्थिति में उसकी इतनी उपादेयता न हो। दूसरा तथ्य यह ध्यान में रखना चाहिए कि एक ही स्रोत पर आधारित सूचना के स्थान पर यदि

हम विविध स्रोतों से सूचनाएं प्राप्त कर उनका संकलन विश्लेषण करें तो शायद हम अधिक विश्वसनीय परिणाम प्राप्त हो सकते हैं।

वैयक्तिक सूचनाओं के स्रोत

निर्देशन कार्यकर्त्ता को वैयक्तिक सूचनाओं को अधिक से अधिक विश्वसनीय बनाने हेतु किसी एक स्रोत से प्राप्त सूचनाओं पर निर्भर नहीं रहना चाहिए। जितने अधिक से अधिक स्रोतों से सूचनाओं का संकलन किया जायेगा सूचनाओं का संग्रह उतना ही अधिक सारगर्भित हो सकेगा। इस कथन के संदर्भ में ही यहाँ वैयक्तिक सूचनाओं के कौन-कौन से स्रोत हो सकते हैं इसका उल्लेख करना अप्रासंगिक नहीं होगा। सर्वप्रथम तो जिस व्यक्ति से सम्बन्धित सूचनाएं एकत्रित की जा रही हैं वह स्वयं सूचनाओं का एक महत्वपूर्ण स्रोत हो सकता है। उस व्यक्ति के सहयोग बिना वैयक्तिक सूचनाओं का संकलन अपूर्ण ही रहेगा। जैसाकि अध्याय ४ में लिखा जा चुका है कि व्यक्ति के प्राथमिक अभिज्ञानधारण दत्त से लेकर उसकी भविष्य योजनाओं सम्बन्धी प्रत्येक सूचना में हमें उस व्यक्ति के सहयोग की आवश्यकता पड़ती है। इसका अर्थ यह नहीं कि व्यक्ति सम्बन्धी सूचनाएं केवल उसी व्यक्ति से ही प्राप्त हो सकती हैं। बल्कि यह कहना अनुचित नहीं होगा कि इन सूचनाओं की व्यक्तिनिष्ठता को कम करने हेतु यह अनिवार्य हो जाता है कि हम व्यक्ति से प्राप्त सूचनाओं का संपुष्टिकरण एवं सत्यापन अन्य स्रोतों से प्राप्त सूचनाओं से करें। इन अन्य स्रोतों में व्यक्ति के अभिभावक अथवा घर के अन्य सदस्य समवयस्काओं अध्यापक प्रधानाध्यापक उल्लेखनीय हैं। अध्यापकों से छात्रों की समन्जन समस्याओं शालीय उपलब्धियों अभिरुचियों सामाजिक गुणों अध्ययन आदतों अथवा अन्य आदतों समवयस्कों/साथियों के सम्बन्धों से सम्बन्धित महत्वपूर्ण सूचनाएं प्राप्त की जा सकती हैं। अभिभावकों से बालक की आदतों अभिरुचियों घर के अन्य सदस्यों के साथ समन्जन अथवा अन्य सामाजिक आर्थिक दत्त सामग्री प्राप्त की जा सकती है। बालक की किसी भी समस्या के हल हेतु उसके घर की पृष्ठभूमि का जबतक हमें पूर्णज्ञान नहीं होगा हम समस्या का समुचित हल ढूंढने में उसे सहायता प्रदान नहीं कर सकते। बालक के मित्रों से भी हम उसके विभिन्न गुणों उसके समाजमितिक स्तर रुचियों आदि का पता लगा सकते हैं। साथ ही यह भी ज्ञात हो सकता है कि बालक किस प्रकार के छात्रों में रहता है। कहने का तात्पर्य यह है कि उपरोक्त वर्णित विभिन्न स्रोतों से हमें व्यक्ति के सम्बन्ध की सम्पन्न दत्त सामग्री प्राप्त हो सकती है। और अधिक से अधिक स्रोतों से जानकारी प्राप्त कर हम उन सूचनाओं की विश्वसनीयता एवं वस्तुनिष्ठता को मान सकते हैं।

वैयक्तिक सूचनाओं के क्षेत्र—

निर्देशन कार्यकर्त्ता को सामान्यतया व्यक्ति से सम्बन्धित जिन क्षेत्रों की जान

कारी उपयोगी सिद्ध हो सकती है इसकी विषद विवेचना चतुर्थ अध्याय म की जा चुकी है इनम यक्ति क अभिनिर्धारण दत्त शारीरिक एव स्वास्थ्य सम्बन्धी दत्त पारिवारिक उपर्युक्त *मनोवैज्ञानिक दत्त आकाक्षाएँ भविष्य योजनाएँ आदि प्रमुख* हैं। इन विभिन्न प्रकार की दत्त सामग्रियो को एकत्रित करने हेतु निर्देशन कार्यकर्त्ता को विभिन्न प्रकार की प्रविधियो एव साधनो का उपयोग करना पड़ता है जिनका वर्णन आगे के अनुच्छेदो म किया जावेगा। इन प्रविधियो का केवल वर्णन मात्र ही नही अपितु इनके उपयोग सम्बन्धी सामान्य सिद्धान्तो का भी यथास्थान प्रतिपादन किया जायगा। अन्त म भारतीय निर्देशन कार्यकर्त्ताओ की जानकारी हेतु भारत म उप लब्ध कुछ साधनो का भी उल्लेख किया जायगा।

वैयक्तिक अध्ययन हेतु प्रयुक्त प्राविधियाँ

व्यक्ति से सम्बन्धित सूचनाएँ एकत्रित करने की तीन प्रमुख प्रविधियो की हम यहाँ पर चर्चा करेगे जो हैं—प्रेक्षण साक्षात्कार एव समाजमिति।

(१) प्रेक्षण—प्रेक्षण का उपयोग वस तो प्रत्यक व्यक्ति दनन्दिन अपने जीवन म करता है। *हम किसी सुन्दर दृश्य दुर्घटना सड़क पर हो रहे झगड़ा आदि अनेक* परिस्थितियो का प्रेक्षण करते हैं। इसी प्रकार हम जिन व्यक्तियो के सम्पर्क म आते हैं उनकी आदतो रुचियो गुण एव कमियो का अनुमान अपने प्रेक्षणो के आधार पर लगाते हैं। प्रेक्षण के आधार पर सूचनाओ का सकलन करना यह कोई नई विधि नही है। वैज्ञानिक प्रेक्षण एव सामान्य प्रेक्षण में अन्तर यह है कि वैज्ञानिक प्रेक्षण अधिक सोद्देश्य सुनियोजित एव सुव्यवस्थित ढग से किया जाता है तथा प्रदत्त इस ढग म प्रदर्शित होता है। जबकि सामान्य प्रेक्षणो म इतनी सुनियोजितता नही होती। प्रेक्षण को वैज्ञानिक बनाने हेतु हम निम्न सावधानियाँ बरतनी चाहिए।

(क) वैज्ञानिक प्रेक्षण के लक्षण

(अ) उद्देश्य निर्धारण—प्रेक्षण करने से पूर्व हम यह निर्धारित कर लेना *चाहिये कि हम व्यक्ति के व्यक्तित्व के कौनसे पक्ष का प्रेक्षण करने जा रहे हैं। यदि* प्रेक्षण के उद्देश्य स्पष्ट न होंगे तो हम एसी अनावश्यक दत्त सामग्री एकत्रित करने म हमारा समय नष्ट करेंगे जोकि शायद हमारे लिये सहयोगी सिद्ध न हो। यदि *हम व्यक्ति की रुचियो के अध्ययन हेतु प्रेक्षण प्रविधि का उपयोग करना है और हम* उसके रग रूप बोलने के ढग पोशाक आदि सम्बन्धी प्रेक्षणो म हमारा समय नष्ट करेंगे तो वह नितान्त निरर्थक होगा।

(आ) योजना—प्रेक्षण करने से पूर्व प्रेक्षण की सम्पूर्ण योजना बना लेनी चाहिये। इस समय किन परिस्थितियो म कितनी अवधि के लिये कौन-कौन से व्यवहारो को देखना है इसकी यदि हमारे मस्तिष्क म स्पष्ट रूपरेखा होगी तो हम प्रेक्षण से महत्त्वपूर्ण दत्त एकत्रित कर सकेंगे। आकस्मिक प्रेक्षणो से महत्त्वपूर्ण एव

हमारे उद्देश्य से सम्बन्धित सूचनाएं प्राप्त होने की सम्भावनाएं कम होती हैं। और यदि एक प्रेक्षण से सूचनाएं प्राप्त हो भी जायें तो उनकी विश्वसनीयता एवं वस्तुनिष्ठता पर सन्देह सा ही रहता है। यदि सुनियोजित ढंग से प्रेक्षण किया गया तो हम निर्धारित पक्षों को अधिक गम्भीरता से देखने के लिए तैयार रहेंगे और अधिक सार्थक परिणाम प्राप्त कर सकेंगे।

(ड) परिणामों का अभिलेखन—प्रेक्षण के परिणामों का अभिलेखन तुरन्त एवं योजनाबद्ध विधि से हो जाना चाहिये। प्रेक्षण के परिणामों का अभिलेखन कैसे किया जायगा इसके सम्बन्ध में यदि पूर्व विचार नहीं किया गया तो यह सम्भव हो सकता है कि प्रेक्षक समय पर महत्वपूर्ण बिन्दुओं का अभिलेखन करना भूल जाय। प्रेक्षण एवं अभिलेखन में कम से कम समयान्तर होना चाहिये अन्यथा प्रेक्षण के परिणामों की विश्वसनीयता—तथ्यों में अन्तर पड़ जाने की सम्भावना के कारण घट जाती है।

(ई) उपयुक्त नियन्त्रण—प्रेक्षण के परिणामों की विश्वसनीयता एवं वैधता को बनाये रखने हेतु कुछ नियन्त्रणों का होना आवश्यक है। उदाहरणार्थ प्रेक्षण के आधार पर प्राप्त परिणामों का सम्पुष्टिकरण अन्य स्रोतों से प्राप्त सूचनाओं से कर लेना चाहिये। फिर प्रेक्षण के परिणामों की विश्वसनीयता एवं वैधता इस बात पर भी निर्भर करती कि प्रेक्षक एक कुशल एवं प्रशिक्षित प्रेक्षक है या नहीं अथवा प्रेक्षक तटस्थ होकर व्यक्ति के गुण दोषों का अवलोकन कर सकता है या नहीं। पूर्वाग्रहों पर आधारित प्रेक्षण वैज्ञानिक अध्ययन के आधार नहीं बन सकते।

(ब) प्रेक्षण का उपयोग—जब हम व्यक्ति के विभिन्न व्यवहारों सम्बन्धी सूचनाएं एकत्रित करनी होती हैं तो हम प्रेक्षण प्रविधि का प्रयोग कर सकते हैं। निर्देशन कार्यकर्त्ता व्यक्ति सम्बन्धी अनेक सूचनाएं प्रेक्षण के आधार पर प्राप्त कर सकता है। आवश्यक नहीं कि इसके लिए वह स्वयं हर बालक का प्रेक्षण करे। बालक से सम्बन्धित विभिन्न अध्यापकों के प्रेक्षणों के आधार पर भी बालक से सम्बन्धित महत्वपूर्ण सूचनाएं प्राप्त की जा सकती हैं।

(अ) बालक का कक्षा में प्रेक्षण—कक्षा में बालक के व्यवहार का प्रेक्षण कर शिक्षक अथवा निर्देशन कार्यकर्त्ता बालक से सम्बन्धित विभिन्न सूचनाएं एकत्रित कर सकता है। उदाहरणार्थ बालक की विषय के प्रति जिज्ञासा एवं रुचि अध्यापक छात्र छात्र-छात्र अन्तःसम्बन्ध बालक की सृजनात्मक शक्ति बालक की अनुशासना आदि अनेक बातों का पता बालक का कक्षा में प्रेक्षण कर लगाया जा सकता है।

(आ) बालक का पाठ्य सहगामी प्रवृत्तियों में प्रेक्षण—इन प्रवृत्तियों में जब बालक का प्रेक्षण करते हैं तब उसकी रुचियों, सामूहिक समायोजन, नेतृत्व के गुणों, सृजनात्मक शक्ति आदि का पता आसानी से लग सकता है। अनेक बार शाला के बाहर भ्रमण के लिए जब बालकों को ले जाते हैं तब हम उनका अनेक ढंग से हु-

क्षमताओं सीमितताओं का पता चलता है क्योंकि ऐसे अवसरों पर बालक अधिक स्वाभाविक व्यवहार करते हैं। शायद इन गुण दोषों का पता हम अधिक औपचारिक साधनों से न भी लगा सकते। इसी प्रकार से बालक को खेल के मैदान पर जब हम देखते हैं या शिविरों में उसका प्रेक्षण करते हैं तब उसके अनेक अन्य गुण हमारे सामने आ जाते हैं। शायद इसीलिए अच्छी पाठशालाओं में शाला के सीमित वातावरण के अतिरिक्त भी बालक से सम्पर्क पर आग्रह रहता है। कोई आश्चर्य नहीं कि जिन शालाओं में भ्रमण, शिविरों, यात्राओं आदि पर बल दिया जाता है वहां के शिक्षक अपने छात्रों की क्षमताओं–सीमितताओं को अधिक निकट से पहचानते हैं। इन अनौपचारिक परिस्थितियों में ही बालक के सहज व्यवहार का प्रेक्षण कर हम उसकी योग्यता एवं चारित्रिक गुणों का सही मूल्यांकन कर सकते हैं।

(इ) बालक का अन्य परिस्थितियों में प्रेक्षण—शालीय जीवन से सम्बन्धित उपरोक्त दो महत्त्वपूर्ण परिस्थितियों के अतिरिक्त भी ऐसी अनेक परिस्थितियाँ हो सकती हैं जिनमें बालक का प्रेक्षण किया जा सकता है और उससे सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण सूचनाओं का संकलन किया जा सकता है। उदाहरणार्थ बालक की अध्ययन आदतों के सम्बन्ध की जानकारी प्राप्त करने हेतु जब बालक अध्ययन करता है या गृहकार्य करता है अथवा प्रयोगशाला में कार्य करता है तब ऐसी परिस्थितियों में यदि प्रेक्षण किया जाय तो हम महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त हो सकती हैं।

इसी प्रकार बालक का यदि अपने समवयस्क साथियों के बीच प्रेक्षण किया जाय तो हम उसके अनेक सामाजिक गुणों का पता चलता है। इसी प्रकार बालक के उसके माता पिता अथवा अन्य पारिवारिक सदस्यों के साथ क्या सम्बन्ध हैं इसका पता हम बालक के घरेलू जीवन का प्रेक्षण करने पर ही लगा सकता है। निर्देशन कार्यकर्त्ता को तो ऐसी अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है जिनमें बालक के पारिवारिक जीवन का अध्ययन किए बिना समस्या का उचित निदान हो नहीं मिल सकता।

(ग) प्रेक्षण के प्रकार

(अ) नियन्त्रित एवं अनियन्त्रित प्रेक्षण—प्रेक्षण का उपयोग जैसा कि उपयुक्त अनुच्छेद में कहा गया है व्यक्ति के विभिन्न व्यवहारों का अध्ययन करने हेतु किया जाता है। यह अध्ययन दो प्रकार से किया जा सकता है एक तो जिन परिस्थितियों में व्यवहार घटित होता है उन्हीं स्वाभाविक परिस्थितियों में व्यवहार का अध्ययन किया जाय। इस प्रकार के प्रेक्षण को अनियन्त्रित प्रेक्षण कहते हैं। दूसरा विधि यह हो सकती है कि हम जिन परिस्थितियों में व्यक्ति का व्यवहार देखना चाहते हैं पहले उन परिस्थितियों का यथावत निर्माण किया जाय और उन परिस्थितियों में विषय को रख कर उसके व्यवहार का प्रेक्षण किया जाय। मनोवैज्ञा

निक प्रयोगशालाओं में अधिकतर दूसरे प्रकार के प्रेक्षण का प्रयोग किया जाता है। यहाँ प्रयोगशाला में प्रयोग में निर्धारित परिस्थितियों का ठीक निर्माण एवं नियन्त्रण किया जाता है और फिर उन परिस्थितियों में विषयी का प्रेक्षण किया जाता है। चूंकि पर्दे पर प्रयोग करके उनके व्यवहारों का प्रेक्षण करना मनोवैज्ञानिकों के लिए एक सामान्य बात है। ये प्रेक्षण नियन्त्रित होते हैं। क्योंकि प्रयोगशालाओं में हम हमारी सुविधा एवं आवश्यकतानुसार परिस्थितियों का निर्माण कर सकते हैं अतः हम प्रेक्षण के परिणामों का अभिलेखन अधिक व्यवस्थित ढंग से कर सकते हैं। साथ ही नियन्त्रित प्रेक्षण में हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि अमुक व्यवहार अमुक परिस्थितियों के फलस्वरूप घटित हुआ है क्योंकि परिस्थितियों पर हमारा नियन्त्रण रहता है। अनियन्त्रित प्रेक्षण में अनेक बार परिस्थिति इतनी जटिल होती है कि यह कह सकना अत्यन्त कठिन होता है कि व्यवहार किन कारणों से घटित हुआ है फिर अनेक बार अनियन्त्रित प्रेक्षण के परिणामों के अभिलेखन में भी कठिनाई होने की सम्भावना रहती है क्योंकि इस प्रकार के प्रेक्षण के समय को हम अपनी इच्छानुसार आयोजित नहीं कर सकते। नियन्त्रित प्रेक्षण के कुछ लाभ होते हुए भी एक निर्देशन कार्यकर्ता को तो अधिकतर परिस्थितियों में अनियन्त्रित प्रेक्षण का ही उपयोग करना पड़ता है क्योंकि निर्देशन कार्यकर्ता शुद्ध मनोवैज्ञानिक की भांति प्रयोगशाला की नियन्त्रित परिस्थितियों में बालक के व्यवहार का प्रेक्षण नहीं कर सकता। उसे तो बालक के सहज व्यवहार का स्वाभाविक परिस्थितियों में ही अध्ययन करना होगा। अतः निर्देशन के क्षेत्र में अनियन्त्रित प्रेक्षण का ही महत्त्वपूर्ण स्थान माना जा सकता है।

(आ) भागग्राही एवं भाग-अग्राही प्रेक्षण—यद्यपि इन दो प्रेक्षणों की निर्देशन के सन्दर्भ में चर्चा आवश्यक नहीं फिर भी संक्षिप्त में इनके सम्बन्ध में बताना विषय के औचित्य की दृष्टि से आवश्यक समझा गया है। जब प्रेक्षक किसी समूह का सदस्य बनकर उस समूह का अध्ययन करता है तो इस प्रकार के प्रेक्षण को हम भागग्राही प्रेक्षण कहते हैं। और यदि प्रेक्षक समूह का अध्ययन एक बाहर के व्यक्ति की हैसियत से करता है तो हम ऐसे प्रेक्षण को भाग अग्राही प्रेक्षण कहते हैं। उदाहरणार्थ जब किसी कक्षा का शिक्षक अपने विद्यार्थियों की विशेषताओं का कक्षाध्यापन के समय अध्ययन करता है तो यह प्रेक्षण भागग्राही प्रेक्षण कहलायेगा। किन्तु यदि अध्यापक कक्षा में पढ़ा रहा हो और निर्देशन कार्यकर्ता पीछे बैठकर कुछ बालकों का अध्ययन करे तो यह प्रेक्षण भाग अग्राही प्रेक्षण कहलाता है। भागग्राही प्रेक्षण में प्रेक्षक क्योंकि समूह का स्वीकृत एवं जाना पहिचाना सदस्य होता है अतः समूह के सदस्यों के व्यवहार में औपचारिकता अथवा कृत्रिमता नहीं होती। अतः ऐसे प्रेक्षण में हम व्यक्ति के सहज व्यवहार का अध्ययन कर सकते हैं। किसी बाहरी व्यक्ति के सामने हम अनेक बार हमारे सहज व्यवहारों को प्रदर्शित नहीं करते अथवा हमारे में एक कृत्रिमता आ जाती है। जहाँ तक हो सके

हम व्यक्ति के सहज एवं स्वाभाविक व्यवहारों का अध्ययन करना चाहिए तभी हम उसके सम्बन्ध में सही ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

(घ) प्रेक्षण प्रविधि की सीमाएँ

प्रेक्षण के उपयुक्त गुणों एवं विशेषताओं से हम यह अनुमान न लगा लें कि वैयक्तिक अध्ययन की यह एकमात्र सर्वोत्तम प्रविधि है। इस प्रविधि की अपनी सीमाएँ हैं जिन्हें ध्यान में रख कर यदि हम इस प्रविधि का प्रयोग करें तो शायद हम अधिक सफलतापूर्वक इसका लाभ उठा सकते हैं।

(अ) प्रेक्षण के अवसर की अनिश्चितता—अनेक बार अनियन्त्रित प्रेक्षण में हम बालक के जिन व्यवहारों का प्रेक्षण करना चाहते हैं वे उस समय घटित होते हैं जब हम प्रेक्षण के परिणामों के अभिलेखन के लिये तैयार नहीं होते। या ऐसा भी हो सकता है कि हम जिन व्यवहारों का अध्ययन करना चाहते हैं वे लम्बे समय तक हमें देखने को ही न मिलें। उदाहरणार्थ हमारा बालक निराशाजनक परिस्थितियों में कैसा व्यवहार करता है यह हम देखना चाहते हैं किन्तु हो सकता है दुर्भाग्य से हमें ऐसी परिस्थिति ही न मिले।

(आ) प्रत्येक व्यवहार का प्रेक्षण सम्भव नहीं—कुछ व्यवहारों का प्रेक्षण करना कठिन होता है। सौतेली माँ बालक के साथ कैसा व्यवहार करती है यह प्रत्यक्ष रूप से देख सकना कठिन हो सकता है। क्योंकि बाहर के व्यक्ति के सामने कृत्रिम स्नेहपूर्ण व्यवहार की अभिव्यक्ति कठिन नहीं है। अतः वास्तव में अत्यन्त क्रूर होते हुए भी हमें यह आभास हो सकता है कि माता पुत्र के सम्बन्ध में अत्यन्त स्नेहपूर्ण हैं।

(इ) प्रेक्षक के पूर्वाग्रहों का प्रभाव—प्रेक्षण के परिणामों की विश्वसनीयता बहुत सीमा तक प्रेक्षक पर निर्भर करती है। अतः यदि प्रेक्षक के अपने पूर्वाग्रह हुए तो वह प्रेक्षण के परिणामों को आसानी से दूषित कर सकता है। जिस शिक्षक के किसी छात्र से सम्बन्ध तनावपूर्ण हैं उससे यदि हम छात्र की विशेषताओं के सम्बन्ध में पूछें तो उसके प्रेक्षण कितने विश्वसनीय होंगे इसका अनुमान सहज लगाया जा सकता है।

(ई) प्रेक्षक का प्रशिक्षण—प्रेक्षक यदि प्रेक्षण की कला में प्रशिक्षित न हो तो भी वह वैज्ञानिक ढंग से तथ्यों का संकलन नहीं कर सकता न ही उसके प्रेक्षणों में अधिक गहराई हो सकती है।

(२) साक्षात्कार

वैयक्तिक अध्ययन की दूसरी प्रमुख प्रविधि साक्षात्कार है। साक्षात्कार से हमारा तात्पर्य है व्यक्ति से प्रत्यक्ष भेंट कर उससे वार्तालाप कर उससे सम्बन्धित सूचनाएँ प्राप्त करना। साक्षात्कार के लिये अंग्रेजी शब्द इन्टरव्यू है जिसका अर्थ है पारस्परिक मानसिक सर्वेक्षण अथवा पारस्परिक दृष्टि निरीक्षण।

इसी प्रकार जी कुछ के मूल फ्रेंच शब्द का अर्थ है एक झलक प्राप्त करना। अतः साक्षात्कार में हम व्यक्ति से प्रत्यक्ष भेंट कर उसके गुणों एवं सीमाओं की एक झलक प्राप्त करते हैं। साक्षात्कार के अन्तर्गत दो अनिवार्य बातें होनी चाहिए एक तो जिस व्यक्ति के सम्बन्ध में हम जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं उससे हमारा प्रत्यक्ष भेंट होना चाहिए और भेंट के पीछे कुछ पूर्व निर्धारित सूचनाओं का संकलन एक अनिवार्य उद्देश्य होना चाहिये। केवल दो व्यक्तियों के मिलकर गपशप करने को हम साक्षात्कार नहीं कह सकते। इसी प्रकार अध्यापक कक्षा में किसी बालक से पढ़ाई गई पाठ्यवस्तु पर प्रश्न पूछकर उत्तर प्राप्त कर रहा हो तो उसे भी साक्षात्कार नहीं कहा जा सकता। इस चर्चा के अन्त में यदि हम साक्षात्कार को परिभाषित करने का प्रयास करें तो शायद परिभाषा इस प्रकार होगी– साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता साक्षात्कृत से व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित कर पूर्व निर्धारित उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए कुछ सूचनाएं प्राप्त करने का प्रयास करता है।

(क) साक्षात्कार से लाभ

(अ) महत्त्वपूर्ण सूचनाएं प्राप्त होने की सम्भावना—चूंकि साक्षात्कार में हम व्यक्ति से व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित कर सूचनाएँ प्राप्त करने का प्रयास करते हैं अतएव अनेक बार हम ऐसी महत्त्वपूर्ण सूचनाएं प्राप्त होने की सम्भावना होती है जो अन्य प्रविधियों से प्राप्त नहीं हो सकती। लिखित रूप में व्यक्ति अनेक व्यक्तिगत सूचनाएं देने में हिचकिचाहट करता है किन्तु जब साक्षात्कारकर्ता साक्षात्कृत का विश्वास प्राप्त कर लेता है तो साक्षात्कृत अपने जीवन के अनेक रहस्य उसके सामने खोलकर रख देता है। कुशल साक्षात्कारकर्त्ता संवाद के माध्यम से ही व्यक्ति से अनायास महत्त्वपूर्ण सूचनाएं निकलवा लेता है जो शायद लिखित प्रश्नों के उत्तर के रूप में व्यक्ति कभी नहीं देता। समाचार पत्रों के संवाददाता मंत्रियों अथवा राजनीतिज्ञों से प्रश्नों के माध्यम से ही अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्य निकलवा लेते हैं।

(आ) साक्षात्कार से प्राप्त सूचनाओं का महत्त्व—व्यक्तिगत सम्पर्क से महत्त्वपूर्ण सूचनाएं तो प्राप्त होती ही हैं साथ ही इस प्रकार प्राप्त सूचनाएं लिखित रूप में प्राप्त सूचनाओं से अधिक विश्वसनीय होती हैं। क्योंकि लिखित रूप से दिये गये उत्तरों में अधिक औपचारिकता होती है। व्यक्ति लिखित उत्तर देते समय कई बार यह सोचता है कि कहीं उसका उत्तर ऐसा तो नहीं है जो समाज की सामान्य मान्यताओं के विपरीत है अतएव वह अपने वास्तविक उत्तर को ऐसा रूप देने का प्रयत्न करता है जो सामान्य हो। साक्षात्कार में एक बार साक्षात्कारकर्त्ता यदि साक्षात्कृत का विश्वास सम्पादन कर ले तो इस प्रकार के कृत्रिम एवं औपचारिक उत्तर प्राप्त होने की सम्भावना घट जाती है।

(इ) सूचनाओं के स्पष्टीकरण की सम्भावना—इस प्रविधि में क्योंकि

साक्षात्कार कर्त्ता एवं साक्षात्कृत एक दूसरे के अभिमुख होते हैं अतएव यदि साक्षात्कृत के किसी उत्तर के सम्बन्ध में अनिश्चितता हो अथवा स्तर स्पष्ट हो तो उसी समय साक्षात्कृत से स्पष्टीकरण प्राप्त किया जा सकता है।

(ई) सूचनाओं की पृष्ठभूमि का पता लगाना—साक्षात्कार में हम न केवल व्यक्ति ने प्रश्न का क्या उत्तर दिया है इसका पता लगता है अपितु इस प्रकार के उत्तर देने के पीछे क्या कारण है इसका भी पता लग सकता है। एक छात्र यदि यह कहता है मुझे गणित के शिक्षक अच्छे नहीं लगते तो साक्षात्कार कर्त्ता यहीं पर नहीं ठहरता वह यह भी पता करता है कि छात्र की गणित शिक्षक के प्रति ऐसी मनोवृत्ति क्यों बनी ?

(उ) अन्य प्रविधियों एवं साधनों से प्राप्त सूचनाओं की सम्पुष्टि एवं सत्यापन—साक्षात्कार का उपयोग अन्य साधनों एवं प्रविधियों से प्राप्त सूचनाओं की वैधता एवं विश्वसनीयता की जाँच हेतु भी किया जा सकता है।

(ग) साक्षात्कार की सीमाएं

यद्यपि सामान्यतया यह देखा गया है कि एक कुशल साक्षात्कार कर्त्ता इस प्रविधि से व्यक्ति से महत्त्वपूर्ण सूचनाएं प्राप्त कर सकता है फिर भी इस प्रविधि की अपनी सीमाएं हैं जिन्हें निर्देशन कार्यकर्त्ता को ध्यान में रखना चाहिए।

(अ) व्यक्तिनिष्ठ प्रविधि—प्रश्नावली की भांति इस प्रविधि में भी दत्त की विश्वसनीयता काफी सीमा तक साक्षात्कारकर्ता पर निर्भर करती है। एक सूचना जो एक साक्षात्कारकर्त्ता प्राप्त करता है हो सकता है अन्य व्यक्ति उस सूचना को प्राप्त करने में सफल न हो। साक्षात्कारकर्त्ता के पूर्वाग्रह का भी इस प्रविधि से प्राप्त सूचनाओं पर प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता।

(आ) प्रशिक्षण की आवश्यकता—साक्षात्कार की सफलता साक्षात्कार कर्त्ता की सवाल या वार्तालाप द्वारा सूचनाएं प्राप्त कर सकने की क्षमता पर निर्भर करती है। यह क्षमता प्रशिक्षण एवं लम्बे अनुभव के फलस्वरूप ही प्राप्त की जा सकती है। और फिर यह आवश्यक भी नहीं कि प्रत्येक व्यक्ति इस कला को प्राप्त कर ही ले।

(इ) समय एवं अर्थ का अधिक व्यय—साक्षात्कार प्रविधि में हम प्रत्येक व्यक्ति से व्यक्तिगत रूप से सम्पर्क स्थापित कर सूचनाएं प्राप्त करते हैं। अतः इस प्रक्रम में अधिक समय एवं धन का व्यय होता है। जितना समय एक व्यक्ति से सम्पर्क स्थापित करने में लगता है उतने समय में हम समूह परीक्षण में सम्पूर्ण कक्षा के बालकों सम्बन्धी सूचनाएं एकत्रित कर सकते हैं। साक्षात्कार में हम बहुत सा समय तो व्यक्ति के साथ तादात्म्य स्थापित करने में लगता है। बिना तादात्म्य स्थापित किए हम व्यक्ति से वास्तविक सूचनाएं प्राप्त भी नहीं हो सकता। परीक्षणों में हम इसके लिए अधिक समय नहीं लगाना पड़ता।

(ग) साक्षात्कार के उपयोग

वैसे तो साक्षात्कार का उपयोग अनेक परिस्थितियों में विभिन्न उद्देश्यों से किया जाता है किंतु यहाँ पर हम अपनी चर्चा केवल साक्षात्कार का उपयोग वैयक्तिक सूचनाएं एकत्रित करने में कैसे किया जा सकता है इस बिंदु पर केन्द्रित करेंगे। साक्षात्कार के अन्य उपयोग हैं–उपबोधन के लिए नौकरी हेतु व्यक्ति की क्षमता सीमितताओं को जानने हेतु मानसिक रोग से पीड़ित व्यक्ति के उपचार हेतु अनुसंधान काम में दत्त संकलन हेतु किसी राजनीतिज्ञ अथवा अन्य महत्वपूर्ण व्यक्ति के विचार जानने के लिए। प्रशासनात्मक इसका उपयोग अनुशासन समस्याओं को सुलझाने हेतु भी कर सकते हैं। अब हम यह देखें कि साक्षात्कार प्रविधि से हम व्यक्ति सम्बन्धी कौनसी सूचनाएं प्राप्त हो सकती हैं।

(अ) व्यक्ति की भविष्य योजनाएं एवं आकांक्षा स्तर—साक्षात्कार के माध्यम से इस पता लग सकता है कि व्यक्ति के भविष्य की क्या योजनाएं हैं उसकी क्या आकांक्षाएं हैं तथा इन आकांक्षाओं और भविष्य योजनाओं के कार्यान्वयन में उसकी क्या तैयारी है। हम यह भी पता लग सकता है कि व्यक्ति की भविष्य योजनाएं एवं आकांक्षाएं वास्तववादी है या नहीं।

(आ) व्यक्ति की अभिव्यक्त अभिरुचियाँ—व्यक्ति किन क्षेत्रों में अभिरुचि किया अभिव्यक्ति के माध्यम से प्रदर्शित करता है इसका आभास साक्षात्कार कर्ता को हो सकता है। जिस क्षेत्र में व्यक्ति की रुचि है उस क्षेत्र के सम्बन्ध की उसे अधिक जानकारी होगी तथा वह उस क्षेत्र के सम्बन्ध में बातचीत करने में अधिक रुचि लेगा।

(इ) व्यक्तित्व के शीलगुण—व्यक्तित्व के कुछ शीलगुण ऐसे हैं जिनका पता साक्षात्कार के माध्यम से लग सकता है जैसे अंतर्मुखता बहिर्मुखता हास्य प्रसन्नता आशावाद निराशावाद। साक्षात्कार कर्ता व्यक्ति की अनेक अभिव्यक्तियों से उपयुक्त गुणों का पता लगा सकता है। बहुत कम बोलने वाला व्यक्ति या जितना पूछा जाए उतने जवाब देने वाला व्यक्ति अन्तर्मुखी है यह कुशल साक्षात्कार कर्ता आसानी से जान सकता है। इसी प्रकार व्यक्ति जब अपने भविष्य के सम्बन्ध में बातचीत करता है या उनकी क्या असफलताओं के सम्बन्ध में अभिव्यक्ति करता है तब इस बात का पता लग सकता है कि वह आशावादी है या निराशावादी।

(ई) मानसिक द्वंद्व एवं समन्जन समस्याएं—साक्षात्कार के दौरान साक्षात्कृत अपने अनेक मानसिक द्वंद्वों का अथवा समन्जन समस्याओं का रहस्योद्घाटन कर देता है। इन सूचनाओं का उपबोधन सेवा में अत्यंत महत्व है। व्यक्तिगत निर्देशन (Personal Guidance) कार्य का तो आधार ही ये सूचनाएं हैं। यहाँ यह अवश्य कहना होगा कि एक भेंट में ही इन महत्वपूर्ण सूचनाओं की प्राप्ति हो ही जाए यह आवश्यक नहीं। इसके लिए तो साक्षात्कार कर्ता को साक्षात्कृत से परिचय

तादात्म्य स्थापित कर उसका विश्वास सम्पादन करना होगा।

(उ) पारिवारिक सूचनाएं—व्यक्ति की पारिवारिक पृष्ठभूमि का ज्ञान भी साक्षात्कार के माध्यम से हो सकता है। उसके परिवार के अन्य सदस्यों के साथ सम्बन्ध उनकी आर्थिक एवं अन्य कठिनाइयाँ घर पर उपलब्ध अध्ययन हेतु साधन सुविधाएं आदि का ज्ञान साक्षात्कार कर्ता को आसानी से हो सकता है।

(ऊ) शालीय जीवन सम्बन्धी सूचनाएं—छात्र को किन विषयों में रुचि है कौन से अध्यापक अच्छे लगते हैं जो विषय कठिन लगते हैं अथवा जिन अध्यापकों की कक्षा में उसका मन नहीं लगता इसके क्या कारण हैं? छात्र किन प्रवृत्तियों में भाग लेता है? यदि पाठ्येत्तर क्रियाओं में वह सक्रिय भाग नहीं लेता तो इसके क्या कारण हैं? अध्ययन सम्बन्धी छात्र की अन्य क्या कठिनाइयाँ हैं? आदि अनेक महत्वपूर्ण सूचनाएं इस प्रविधि से संकलित की जा सकती हैं।

(ए) छात्र के समआयुसाथी—छात्र के मित्र कौन हैं वे किस प्रकार के हैं क्या वे उसके विकास में सहायक हैं या उसे अनुचित मार्ग पर ले जा रहे हैं छात्र एकाकी है अथवा समूह द्वारा स्वीकृत आदि बातों का पता भी साक्षात्कार से लग सकता है। उनके समाजमितिक स्तर का अधिक विस्तृत ज्ञान हम समाजमितिक प्रविधियों से ही सकता है जिनकी चर्चा हम आगे करेंगे।

(घ) साक्षात्कार के प्रकार

साक्षात्कार के प्रमुख दो प्रकार हैं संरचित साक्षात्कार एवं असंरचित साक्षात्कार जिनका संक्षिप्त विवरण यहां अप्रासंगिक नहीं होगा।

(अ) संरचित साक्षात्कार—संरचित साक्षात्कार का संचालन पूर्व निर्धारित प्रश्न सूची या साक्षात्कार सूची के आधार पर होता है। साक्षात्कारकर्त्ता निर्धारित प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने में ही रुचि रखता है। प्रश्नों का प्रारूप पूर्व निर्धारित होने के कारण साक्षात्कार को अधिक वस्तुनिष्ठ बनाया जा सकता है तथा अनावश्यक दत्त सामग्री के संकलन की सम्भावना कम हो जाती है।

(आ) असंरचित साक्षात्कार—इसमें साक्षात्कार कर्ता को परिस्थितिनुसार नए प्रश्न पूछने प्रश्नों को क्रम को बदलने अथवा पूरक प्रश्न पूछने की स्वतन्त्रता होती है। इसमें साक्षात्कारकर्त्ता का उद्देश्य कोई सीमित सूचनाएं एकत्रित करना न होकर व्यक्ति से सम्बन्धित अधिक से अधिक सूचनाएं एकत्रित करना होता है। अतएव साक्षात्कार के संचालन का कोई जड़ रूपरेखा नहीं हो सकती। इस साक्षात्कार की ऐसी विशेषता ही इसका लचीलापन है। अनेक बार तो ऐसे साक्षात्कार में हमें व्यक्ति के उन आयामों के सम्बन्ध की सूचना प्राप्त हो सकती है जिनकी हम कल्पना भी न हो। असंरचित साक्षात्कार में वस्तुनिष्ठता आजाने की सम्भावना अवश्य होता है किन्तु इसका लाभ यह है कि इसमें साक्षात्कारकर्त्ता को अपने व्यक्तिगत कौशल का लाभ उठाकर अधिक सम्पन्न सूचनाएं प्राप्त करने का अव

सर मिलता है। और फिर निर्देशन एवं उपबोधन कार्य में तो हमें अधिकतर परिस्थितियों में असंरचित साक्षात्कार का ही प्रयोग करना पड़ता है।

(ड) साक्षात्कार के कुछ प्रमुख सिद्धान्त

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि साक्षात्कार की सफलता बहुत अधिक सीमा तक साक्षात्कारकर्त्ता की कुशलता एवं अनुभव पर निर्भर करता है। इसकी सफलता हेतु कोई निश्चित सार्वभौमिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन नहीं किया जा सकता क्योंकि अन्ततोगत्वा तो साक्षात्कारकर्त्ता को परिस्थिति विशेष का ध्यान में रखते हुए सूझबूझ के आधार पर अनेक निर्णय लेने पड़ते हैं और साक्षात्कार की हर परिस्थिति अपने आप में एकक होती है। एक सफल साक्षात्कारकर्त्ता कई वर्षों के अनुभव के पश्चात् सूचनाओं के संकलन की अपनी प्रविधि स्वयं बना लेता है इस विधि का सहज व्याख्यात्मक न दिया जा सकता। फिर भी नए कार्यकर्त्ता के मार्गदर्शन हेतु कुछ प्रमुख सिद्धान्तों का उल्लेख उपादेय सिद्ध हो सकता है।

(अ) साक्षात्कृत से तादात्म्य— साक्षात्कार की सफलता ही इस बात पर निर्भर करती है कि साक्षात्कारकर्त्ता ने साक्षात्कृत के साथ कितना तादात्म्य स्थापित कर लिया है। संकोच लज्जा अथवा भय के वातावरण में विश्वसनीय एवं महत्त्वपूर्ण सूचनाओं का संकलन सम्भव नहीं हो सकता। साक्षात्कार का प्रारम्भिक समय इस कार्य के लिए लगाना साक्षात्कार की सफलता के लिए सर्वथा उपादेय सिद्ध होता है।

(आ) सूचनाओं की गोपनीयता— साक्षात्कारकर्त्ता एक बार जब साक्षात्कृत का विश्वास सम्पादन कर लेता है तो साक्षात्कृत उसे अपने जीवन की अत्यन्त गोपनीय घटनाएं भी बता देता है। ऐसी परिस्थिति में साक्षात्कारकर्त्ता का यह परम कर्त्तव्य हो जाता है कि वह प्राप्त सूचनाओं की गोपनीयता बनाए रखे। इसमें केवल मौखिक आश्वासन दे देना ही पर्याप्त नहीं। साक्षात्कारकर्त्ता को अपने व्यवहार से भी यह सिद्ध करना होगा कि उसमें जताए गए विश्वास का दुरुपयोग नहीं हो रहा है। इसके लिए सावधानी यह रखी जा सकती है कि साक्षात्कार के समय साक्षात्कृत को किसी अन्य व्यक्ति की उपस्थिति की आशंका न रहे। दूसरी सावधानी हम यह बरत सकते हैं कि प्राप्त सूचनाएं किसी अनाधिकृत व्यक्ति के हाथ में न जाएं। इसका अर्थ यह नहीं कि इन सूचनाओं का कोई उपयोग ही न किया जाए। सूचनाओं के आधार पर व्यक्ति की सहायता करना तो निर्देशन का लक्ष्य है ही। सूचनाओं की गोपनीयता बनाए रखते हुए भी उसका लाभ व्यक्ति को पहुँचाया जा सकता है।

(इ) साक्षात्कार का वातावरण—सफल साक्षात्कार के लिए उपयुक्त वातावरण का होना आवश्यक है। साक्षात्कार का स्थान ऐसा होना चाहिए जहां शोर गुल व्यक्तियों का आवागमन टेलीफोन की घण्टी की घनघनाहट अथवा अन्य व्यव

ध्यान कम से कम हो। अनेक बार सामान्य छोटी मोटी भौतिक सुविधाएं जैसे आरामदायक बैठने का स्थान, कमरे की सजावट भी साक्षात्कृत की मनोदशा (Mood) को प्रभावित करता हैं।

(ई) साक्षात्कार के परिणामों का अभिलेखन—साक्षात्कार के परिणामों का अभिलेखन तुरन्त एवं ठीक ढंग से यदि न किया गया तो इस प्रविधि से प्राप्त दत्त की उपयोगिता कम हो जाती है। परिणामों के अभिलेखन के लिए दो विधियाँ अपनाई जा सकती हैं। एक तो साक्षात्कार के समय ही तथ्यों का अभिलेखन कर लिया जाय। अथवा साक्षात्कार समाप्ति के तुरन्त पश्चात् परिणामों का अभिलेखन किया जाय। दोनों के अपने लाभ एवं सीमाएं हैं। साक्षात्कार के समय अभिलेखन से परिणामों में त्रुटि की सम्भावना कम हो जाती है और कोई महत्वपूर्ण बात छूट जाने की आशंका भी नहीं रहती। किन्तु कभी कभी ऐसा भी देखा जाता है कि साक्षात्कृत के सामने ही लिखने से साक्षात्कृत सचेत हो जाता है और उसके उत्तरों में स्वाभाविकता नहीं रहती अथवा अनेक बार तो वह उत्तर देने में हिचकिचाहट अनुभव करने लगता है। यदि उसे यह ज्ञात हो जाए कि उसके उत्तरों को नोट किया जा रहा है। ऐसी परिस्थिति में अभिलेखन की दूसरी विधि को अपनाना ही श्रेयस्कर है अर्थात् साक्षात्कार के तुरन्त पश्चात अभिलेखन कार्य पूर्ण कर लिया जाए। कोई भी विधि अपनाई जाय। अभिलेखन का यह महत्वपूर्ण सिद्धान्त ध्यान रखना चाहिए कि घटना एवं अभिलेखन में जितना अधिक समयान्तर होगा तथ्यों की विश्वसनीयता उतनी ही घटती जावेगी। साक्षात्कार के परिणामों के अभिलेखन में कुछ बातें ध्यान में रखने योग्य ये हैं—

(१) अभिलेखन सुवाच्य एवं स्पष्ट हो ताकि कुछ समय के पश्चात् भी अभिलेखन में समाविष्ट तथ्य सहज समझ में आ सकें।

(२) अभिलेखन में समस्त तथ्यों को तटस्थतापूर्ण समाविष्ट करना चाहिए। तथ्यों के प्रस्तुतिकरण में वस्तुस्थिति का ठीक ठीक वर्णन हो न तो कोई महत्वपूर्ण तथ्य छूटने पावे न ही तथ्यों में अतिशयोक्ति हो। साथ ही तथ्यों के प्रस्तुतिकरण में पूर्वाग्रहों का प्रभाव न होने पावे इसकी सावधानी रखनी चाहिए।

( ) साक्षात्कृत द्वारा दिया गया उत्तर ही महत्वपूर्ण नहीं होता उत्तर देते समय उसकी भाव भंगिमा किसी बिंदु पर रुकना, बल देना आदि भी महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्रस्तुत करते हैं और साक्षात्कारकर्त्ता को इन बातों का भी ध्यान रखना चाहिए।

(उ) साक्षात्कार का समापन— जिस प्रकार सक्षम साक्षात्कारकर्त्ता साक्षात्कार के प्रारम्भ में उपयुक्त विधियों से साक्षात्कृत से तादात्म्य स्थापित करता है एवं उसका विश्वास सम्पादन करने का प्रयास करता है उसी प्रकार साक्षात्कार को समाप्त कराना भी एक कला है। साक्षात्कार के समापन के समय साक्षात्कृत को यह आभास होना चाहिए कि उसने साक्षात्कारकर्त्ता के साथ भेंट में जो समय

व्यतीत किया वह सार्थक रहा। साक्षात्कार ऐसे वातावरण में समाप्त होना चाहिए कि साक्षात्कृत मन में विश्वास एवं पुनः भेंट की इच्छा लेकर जाए। परिणामतः यदि पुनः उसी व्यक्ति से साक्षात्कार करने का अवसर मिले तो उससे पूर्ण सहयोग मिल सके।

अनेक बार साक्षात्कारकर्त्ता के आवश्यक सूचनाएं प्राप्त कर चुकने पर भी साक्षात्कृत अपनी अभिव्यक्ति जारी रखता है। ऐसी परिस्थिति में साक्षात्कारकर्त्ता को कुशलतापूर्वक बिना साक्षात्कृत को ठेस पहुँचाए पुनः भेंट का आश्वासन देते हुए साक्षात्कार को समाप्त करना चाहिए।

(च) साक्षात्कारकर्त्ता के कुछ वांछनीय गुण— सफल साक्षात्कार के लिए कुछ निर्देशन बिन्दु उपयुक्त अनुच्छेदों में वर्णित हैं। किन्तु जब तक साक्षात्कार कर्त्ता में कुछ वांछनीय गुण नहीं होंगे तब तक वह साक्षात्कार का सफल संचालन नहीं कर सकता। साक्षात्कारकर्त्ता एक हंसमुख मिलनसार बाह्यमुखी व्यक्ति होना चाहिए। व्यक्तियों से सुखद सम्बन्ध स्थापित करने की क्षमता साक्षात्कार की सफलता के लिए आवश्यक है। मानव स्वभाव के सम्बन्ध में अन्तर्दृष्टि भी साक्षात्कार कर्त्ता के लिए एक देन सिद्ध हो सकती है। दूसरों के विचारों को समानुभूति सहानुभूति एवं शान्ति से सुनने की क्षमता साक्षात्कारकर्ता के लिए अनिवार्य है। अनेक बार व्यक्तियों में अपने विचार प्रस्तुत करने की इच्छा इतनी तीव्र होती है कि उनमें दूसरे के विचार सुनने का धैर्य ही नहीं होता। ऐसे व्यक्ति सफल साक्षात्कारकर्त्ता नहीं बन सकते। तथ्यों का गोपनीय रखने की आदत भी साक्षात्कार कर्त्ता की प्रतिष्ठा बढ़ाने में अत्यन्त आवश्यक मानी जाती है।

(३) समाजमिति

व्यक्ति जिस समूह में रहता है उस समूह के सदस्यों के साथ उसके अन्तः सम्बन्धों का प्रभाव उसके जीवन के विविध पहलुओं पर पड़े बिना नहीं रहता। कक्षा में यदि बालक के अन्य समवयस्कों के साथ मधुर सम्बन्ध नहीं हैं तो कक्षागत एवं कक्षोत्तर कार्यों में उसे कठिनाई का आभास हो सकता है। सीखने पर समूह गतिकि का प्रभाव होता है यह तथ्य तो प्रयुक्तानों द्वारा सिद्ध हो किया जा चुका है। अतः एक निर्देशन कार्यकर्ता के लिए बालक के अन्य साथियों के साथ अन्तःसम्बन्धों का ज्ञान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। समाजमिति म० प्रविधि है जो हम समूह के व्यक्तियों के बीच पारस्परिक सम्बन्धों के अध्ययन में सहायता प्रदान करती है।

(क) समाजमितिक स्तर का अध्ययन

व्यक्तियों के समाजमितिक स्तर का पता लगाने हेतु हम व्यक्तियों के सम्मुख प्रश्नों के माध्यम से कुछ ऐसी परिस्थितियाँ रखते हैं जिनमें वह अन्य व्यक्तियों के साथ सामान्यतया अन्योन्य क्रिया करता है। उदाहरणार्थ कुछ प्रश्न नीचे दिए जा रहे हैं—

(१) आप कक्षा में किसके निकट अपना पसन्द करेंगे ?
(२) आप अपने घर किस खाना खाने बुलाना पसन्द करेंगे ?
(३) खेल में आप अपना साथी किसे बनाना चाहेंगे ?
(४) आप किसके साथ घूमने जाना पसन्द करेंगे ?

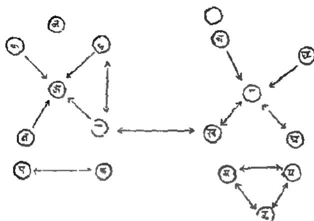
उपरोक्त परिस्थितियों के अतिरिक्त भी ऐसी अनेक परिस्थितियाँ हूँढी जा सकती है जिनमे बालक अन्योन्य क्रिया करते हो। उपरोक्त सब परिस्थितियाँ सकारात्मक है यदि हम तिरस्कृत बालकों का पता लगाना चाहें तो हम नकारात्मक प्रश्नो का भी समावेश कर सकते है जैसे आप किसके साथ बैठना पसन्द नही करेंगे। उपरोक्त प्रश्नो की भाँति प्रश्न बना कर समूह के प्रत्येक सदस्य को अपनी राय प्रकट करने के लिए कहा जाता है। छात्रों द्वारा अभिव्यक्त वरणों (Choices) के आधार पर यह पता लगाया जाता है कि प्रत्येक छात्र को कितनी बार चाहा गया है और उसकी आवृत्ति मान कर ली जाती है। इन आवृत्तियों को समाजमितिक अंक कहते हैं। किसी व्यक्ति के समाजमितिक अंक से यह पता लग सकता है कि उसका समाजमितिक स्तर क्या है।

(ख) लोकप्रिय एकाकी एवं तिरस्कृत सदस्य

समूह के सदस्यों के वरणों के आधार पर किसी भी सदस्य की समूह में क्या स्थिति है या उसका समाजमितिक स्तर क्या है इस बात का पता लगाया जा सकता है। जिस सदस्य को अत्यधिक व्यक्तियों ने पसन्द किया हो उसे समूह का लोकप्रिय सदस्य कहते हैं। जिस व्यक्ति को समूह के किसी भी सदस्य ने नहीं चाहा हो उसे एकाकी सदस्य कहते हैं। तथा जिसके साथ अधिक लोगों ने रहना पसन्द न किया हो उसे तिरस्कृत सदस्य कहते हैं।

(ग) समाज आलेख

किसी समूह के सदस्यों के बीच पारस्परिक सम्बन्धों को चित्र के रूप में भी प्रदर्शित किया जा सकता है। इस चित्र को समाज आलेख कहते हैं। समाज आलेख बनाने के लिए समूह के प्रत्येक सदस्य से यह पूछा जाता है कि किसी एक परिस्थिति में वह किन किन अन्य सदस्यों को अपने साथ संयुक्त करना चाहेगा ? जैसे खेल के लिए यदि कोई टोली बनानी हो तो उसमें वह किन किन सदस्यों को लेना चाहेगा ? इसके उपरान्त समूह के सदस्यों द्वारा अभिव्यक्त वरणों को निम्न प्रकार से चित्र के रूप में प्रदर्शित किया जा सकता है।



चित्र समाज-आलेख

→ वरण

←→ पारस्परिक वरण

उपयुक्त चित्र को समाज आलेख कहते हैं। इसम एक समह के सदस्या के बीच के पारस्परिक सम्बन्धा को व्यक्त किया गया है। इस समाज आलेख को देखने से यह ज्ञात होता है कि न तथा झ दोनो सदस्य एकाकी हैं जिन्हे समूह के किसी सदस्य ने नही चाहा है। प फ तथा म र य केवल आपस म एक दूसरे को चाहते हैं किन्तु य दोना गुट समूह के अन्य सदस्यो स अलग हैं। अत एक दृष्टि से ये भी एकाकी हैं। सदस्य अ तथा ग लोकप्रिय सदस्य हैं क्याकि उन्हें समह के अत्यधिक सदस्यो ने चाहा है। इस प्रकार समाज आलेख से समह के सदस्या के अन्तसम्बन्धा का ज्ञान आसानी स हो सकता है।

वयक्तिक अध्ययन के साधन

इस अध्याय के पूर्वाध म हमने वयक्तिक अध्ययन हेतु प्रयुक्त तीन प्रमुख प्रविधियो की चर्चा की। अब हम कुछ प्रमुख साधना की चर्चा करेंगे जिनकी सहायता से निर्देशन कार्यकर्ता व्यक्ति के विविध पक्षाय जीवन सम्बन्धी सूचनाआ का सकलन कर सकता है। इन साधना के प्रयोग मे कुछ मूलभूत सिद्धान्तो का भी अन्त म चर्चा की जाएगी।

वैयक्तिक अध्ययन हेतु प्रयुक्त साधनों को हम प्रमुख श्रेणियों में बाँट सकते हैं।

(१) मानकीकृत साधन

(२) अमानकीकृत अथवा शिक्षक निर्मित साधन

(३) आत्म विवरणात्मक साधन (Self Reportng)

निर्देशन कार्यकर्त्ता के लिए यह विवाद निरर्थक है कि मानकीकृत साधन श्रेष्ठ है अथवा अन्य। उसे तो परिस्थिति के अनुसार विभिन्न साधनों का प्रयोग करना चाहिए। यही नहीं वरन् जैसा कि अध्याय के प्रारम्भ में कहा गया है उसे किसी एक साधन से प्राप्त सूचनाओं पर पूर्णतया निर्भर रहने की अपेक्षा विविध स्रोतों से सूचनाएं प्राप्त कर तथ्यों की विश्वसनीयता को बनाने का प्रयास करना चाहिए। अतः निर्देशन सेवाओं में उपरोक्त तीनों प्रकार के साधनों का महत्व है। अब हम तीनों प्रकार के कुछ प्रमुख साधनों की चर्चा करेंगे।

(१) मानकीकृत साधन

मनोविज्ञान की एक महत्वपूर्ण देन मानव के बहुआयामी व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों के मापन हेतु साधनों के रूप में रही है। मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि अभिरुचि अभिक्षमता अभिवृत्ति व्यक्तित्व शैक्षिक उपलब्धि आदि अनेक पक्षों के मूल्यांकन हेतु मानकीकृत साधन हमारे सामने रखे हैं जिनकी सहायता से इन गुणों का वैध एवं विश्वसनीय मापन किया जा सकता है। प्रत्येक पक्ष के मापन हेतु इतने अधिक साधन उपलब्ध हैं कि प्रत्येक का वर्णन न तो इस पुस्तक में सम्भव है न ही वांछनीय। मापन एवं मूल्यांकन तो अपने आप में एक अलग पुस्तक का विषय बन सकता है। यहाँ तो इन मानकीकृत साधनों के प्रमुख प्रकारों की चर्चा करना ही सम्भव हो सकता है।

समस्त मानकीकृत साधनों का वर्गीकरण विभिन्न प्रकार से किया जा सकता है। वर्गीकरण की इन सब विधियों की यहाँ चर्चा करना आवश्यक नहीं। वर्गीकरण के दो प्रमुख आधारों की यहाँ चर्चा की जाएगी वे हैं—

(क) लिखित एवं निष्पादन साधन।

(ख) वैयक्तिक एवं सामूहिक साधन।

(क) लिखित एवं निष्पादन साधन

लिखित साधन वे साधन हैं जिनमें व्यक्ति को लिखित सामग्री को पढ़ कर लिखित रूप में उत्तर देने पड़ते हैं जबकि निष्पादन साधन वैयक्तिक सूचना संकलन के वे साधन हैं जिनमें व्यक्ति को मूर्त सामग्री के साथ कार्य कर अपने किसी गुण अथवा योग्यता को अभिव्यक्त करना पड़ता है।

(अ) लिखित साधन—लिखित साधनों का प्रयोग मनोवैज्ञानिक परीक्षणों में अत्यधिक होता है क्योंकि इनके प्रयोग में धन समय एवं शक्ति की बचत होती है।

साथ ही इनका प्रयोग समूह परीक्षणों में किया जा सकता है जब कि निष्पादन साधन अधिकतर व्यक्तिगत रूप से ही काम में लिए जा सकते हैं। लिखित साधन सुविधा से एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाए जा सकते हैं। लिखित साधनों के प्रशासन में भी विशेष कठिनाई नहीं पड़ती।

(I) लिखित साधनों का उपयोग—आजकल तो व्यक्ति के व्यक्तित्व के लगभग सभी पक्षों के सम्बन्ध में सूचना एकत्रित करने के लिए लिखित साधनों का प्रयोग किया जाने लगा है। बुद्धि अभिरुचि अभिक्षमता अभिवृत्ति व्यक्तित्व शैक्षिक उपलब्धि आदि सभी गुणों के मापन हेतु लिखित साधनों का प्रयोग किया जाता है।

(II) लिखित साधनों के प्रकार—लिखित साधनों का निर्माण परीक्षणों सूचियों चिन्हांकन सूचियों अभिवृत्ति मापनियों प्रक्षेपी एवं अर्ध प्रक्षेपी प्रविधियों के रूप में किया जाता है। इनका संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित अनुच्छेदों में किया जा रहा है।

परीक्षण

परीक्षणों के माध्यम से व्यक्ति के किसी न किसी गुण अथवा योग्यता का मापन किया जाता है। बुद्धि परीक्षण अभिक्षमता परीक्षण उपलब्धि परीक्षण निदानात्मक परीक्षण परीक्षणों के प्रमुख प्रकार हैं। परीक्षणों में विषयी को कुछ प्रश्नों को हल करना पड़ता है अथवा समस्याओं का विश्लेषण करना पड़ता है। अधिकतर परीक्षणों में व्यक्ति को निर्धारित समय में कुछ प्रश्न हल करने पड़ते हैं। व्यक्ति द्वारा दिए गये उत्तरों की जाँच के आधार पर व्यक्ति के प्राप्तांक ज्ञात किए जाते हैं और फिर परीक्षण के मानकों के आधार पर व्यक्ति का योग्यता स्तर ज्ञात किया जाता है। कुछ परीक्षण ऐसे भी होते हैं जिनमें व्यक्ति के काम करने की गति पर आग्रह न होकर शक्ति पर आग्रह होता है। ऐसे परीक्षणों में परीक्षण को पूर्ण करने का कोई निर्धारित समय नहीं होता। यदि हम यह जानना चाहते हैं कि व्यक्ति भाग की क्रिया में कहाँ त्रुटि करता है तो उस हम भाग का ऐसा निदानात्मक परीक्षण देंगे जिसमें कितने समय में वह भाग कर सकता है इसकी जाँच न होकर भाग की क्रिया के किस सोपान में वह त्रुटि करता है इसका पता लगाने पर आग्रह होगा। लिखित परीक्षणों के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं —

(1) बुद्धि परीक्षण—डा. जलोटा डा. प्रयाग मेहता इलाहाबाद ब्यूरो आफ सायकालाजी द्वारा निर्मित भारतीय परीक्षण लिखित परीक्षणों के उदाहरण हैं। रेवेन्स प्रोग्रेसिव मैट्रिसेस टेस्ट आर्मी अल्फा एवं आर्मी बीटा कैलिफोर्निया शोर्ट फार्म टेस्ट आफ मेन्टल एबिलिटिज आदि विदेशी लिखित बुद्धि परीक्षणों के उदाहरण हैं। इनमें से कुछ परीक्षणों में भाषा का प्रयोग किया जाता है जबकि कुछ परीक्षणों में चित्रों अथवा संकेतों का प्रयोग किया जाता है। भाषा प्रयोग किए जाने

वाले परीक्षणो को शाब्दिक परीक्षण कहते हैं व जिनमे चित्रो आकृतियो अथवा सक्रिया का प्रयोग होता है उन्हे अशाब्दिक परीक्षण कहते हैं। जलोटा मेहता आदि के परीक्षण शाब्दिक परीक्षण हैं जब कि रेवेन प्रोग्रेसिव मैट्रिसेस टेस्ट अशाब्दिक परीक्षण है। उपयुक्त बुद्धि परीक्षणो मे कुछ शाब्दिक व कुछ अशाब्दिक परीक्षण हैं।

(२) निदानात्मक परीक्षण — शोनेल द्वारा निर्मित गणित के निदानात्मक परीक्षण प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार स्नफोर्ड गायगार्ड रीडिंग टेस्ट वाचन के क्षेत्र मे निदानात्मक कार्य के लिए काम मे लिया जाता है।

( ) उपलब्धि परीक्षण — विभिन्न विषयो मे उपलब्धि की जाँच हेतु अनेक मानकीकृत उपलब्धि परीक्षणो का निर्माण किया जाता है। आयोवा टेस्ट आफ बेसिक स्किल्स स्टान्फर्स रिसर्च एसोसियेट्स एचीवमेंट सीरीज मेट्रोपोलिटन एचीवमेंट टेस्ट्स आदि अनेक मानकीकृत विदेशी परीक्षण हैं जिनका उपयोग विभिन्न स्तरो पर अलग अलग क्षेत्रो मे उपलब्धि मापन हेतु किया जाता है।

सूचियाँ

सूचियो का प्रयोग विशेषकर व्यक्तित्व एव अभिरुचियो के मापन हेतु किया जाता है। बर्नरायटर परसनलिटी इन्वेन्टरी (Bernreuter Personality Inventory) बेल्स एडजस्टमेंट इन्वेन्टरी (Bell s Adjustment Inventory) तथा मिनासोटा मल्टीफेजिक इन्वेन्टरी (Minn sota Multi phasic Inventory) व्यक्तित्व सूचियो के कुछ उदाहरण हैं। भारतीय व्यक्तित्व सूचियो मे अस्थाना एव सक्सेना की व्यक्तित्व सूचियाँ प्रमुख हैं। सूचियो मे विषयो से कुछ प्रश्न के उत्तर हा नही या अनिश्चित मे देने को कहा जाता है। इन स्तरो के आधार पर व्यक्ति के व्यक्तित्व का मूल्याकन किया जाता है। सामान्यतया व्यक्तित्व सूचियो से हमे व्यक्तित्व के विभिन्न आयामो का पता चलता है। अभिरुचि सूचियो मे सामान्यतया प्रयुक्त सूचियाँ निम्नलिखित हैं। कूडर प्रिफरेन्स रेकार्ड (Kuder Preference Record) स्ट्राग्स् वोकेशनल इन्टरेस्ट ब्लेक (Strong s Vocational Interest Black) आलपोर्ट वर्नन स्टडी आफ वेल्यूज (Allportvernon Study of values)। भारत मे डा भिगरन ने स्ट्राग के वोकेशनल इन्टरेस्ट ब्लेक के आधार पर अभिरुचि सूची बनाई है।

चिह्नाकन सूचियाँ

चिह्नाकन सूचियो में व्यक्ति को दिए गए कथनो के सम्बन्ध मे अपनी सहमति अथवा असहमति अथवा अनिश्चितता प्रकट करने को कहा जाता है। इनका प्रयोग भी व्यक्तित्व एव अभिरुचियो के अध्ययन में किया जाता है। उदाहरणार्थ मनी प्रोब्लेम चेकलिस्ट (Mooney Problem checklist) मे स्वास्थ्य अध्ययन घर तथा परिवार आदि क्षेत्रो से सम्बन्धित समस्याए दी जाती हैं और व्यक्ति जिन

समस्याओं को अनुभव करता है उनको चिह्नांकित करता है। इस प्रकार व्यक्ति का किन क्षेत्रों में किस प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है इसकी सूचना मिल सकती है। इस सूचना के आधार पर उपयोगी आवश्यक निर्देशन कार्य कर सकता है।

इसी प्रकार डा. मेहता की अभिरुचि चिह्नांकन सूची भी प्रसिद्ध है। इसमें ३ अभिरुचि क्षेत्रों से सम्बन्धित विभिन्न क्रियाकलापों का उल्लेख है। प्रत्येक क्षेत्र से सम्बन्धित पांच पांच क्रियाकलाप लिए गए है। विषयी प्रत्येक क्रियाकलाप के प्रति अपनी रुचि अरुचि अथवा उदासीनता अभिव्यक्त करता है। जिस क्षेत्र में अधिक क्रियाकलापों के प्रति रुचि व्यक्ति की होती है वह क्षेत्र विषयी के अभिरुचि का क्षेत्र माना जाता है।

प्रक्षेपी प्रविधियाँ — प्रक्षेपण वह प्रक्रम है जिसमें व्यक्ति अपने अन्तरंग में निहित इच्छाओं आकांक्षाओं एवं विचारों को किसी बाहरी उद्दीपन पर थोपता है। बाह्य उद्दीपन का विवेचन वह इन इच्छाओं आकांक्षाओं एवं आवश्यकताओं के आधार पर करता है। मनोवैज्ञानिकों ने इस मानव स्वभाव का लाभ उठा कर प्रक्षेपी एवं अर्ध प्रक्षेपी प्रविधियों का निर्माण किया है। प्रक्षेपी प्रविधियों में व्यक्ति के सम्मुख स्याही के धब्बे अथवा अस्पष्ट चित्रों के रूप में असंरचित उद्दीपन रख जाते हैं और व्यक्ति उनकी अपनी अचेतन मन की भावना के आधार पर संरचना करता है। एक ही स्याही के धब्बे के अलग अलग व्यक्ति भिन्न भिन्न अर्थ लगाते है और एक ही अस्पष्ट चित्र के आधार पर भिन्न भिन्न व्यक्ति बिल्कुल भिन्न कहानियों की रचना करते है। व्यक्तियों के इन उत्तरों के विश्लेषण के आधार पर उनके व्यक्तित्व के गठन का पता चलता है। उद्दीपनों में जितनी अस्पष्टता होगी व्यक्ति द्वारा प्रक्षेपण की उतनी ही अधिक सम्भावना होगी। प्रक्षेपी प्रविधियों में सामान्यतः काम में लाई जाने वाली दो प्रमुख प्रविधियां है एक तो रोशा परीक्षण (Rorschach Test) व दूसरा थिमेटिक एपरसेप्शन टेस्ट (Thematic Apperception Test)

रोशा परीक्षण में स्याही के धब्बों के दस चित्र विषयी के सम्मुख एक एक करके प्रस्तुत किए जाते हैं और उसकी अनुक्रियाएं प्राप्त की जाती है। इन अनुक्रियाओं के विश्लेषण के आधार पर व्यक्ति के व्यक्तित्व का अध्ययन किया जाता है। इसका आविष्कार हरमन रोशा (Herman Rorschach) नामक मनोवैज्ञानिक ने किया था।

टी ए टी परीक्षण मरे एवं मोरगन (Murray and Morgan) नामक मनोवैज्ञानिकों की देन है। इस परीक्षण में ३१ कार्ड होते हैं जिनमें से एक कोरा होता है व अन्य ३० कार्डों पर अर्ध संरचित (Semi structured) चित्र बने हुए होते है। विषयी इन चित्रों को देख कर प्रत्येक चित्र पर आधारित एक कहानी की रचना करता है। इन कहानियों के विश्लेषण के आधार पर विषयी के व्यक्तित्व

का अध्ययन किया जाता है।

प्रक्षपी प्रविधियो से प्राप्त परिणामो का विवचन इतना जटिल है कि जब तक इस योग का व्यक्ति को विशेष परीक्षण प्राप्त न हो इन प्रविधियो का प्रयोग नहीं करना चाहिए। यही कारण है कि यहाँ इनकी विवचन विधियो की चर्चा नहीं की गई है।

अन्य प्रक्षेपी प्रविधियो म रोशनाक, थिम पिक्चर प्रज़ेन्टेशन टेस्ट पार पिक्चर टैस्ट सी ए टी प्रमुख हैं। बच्चो की कहानियाँ अथवा रगहनियाँ भी प्रक्षेपण प्रक्रम के अध्ययन हेतु मूल सामग्री के रूप म उपयोग म ली गई हैं। इसी प्रकार गुडियाओ व खेल को भी प्रक्षपी प्रविधि के रूप म काम म लिया गया है।

अप्र प्रक्षपी प्रविधियाँ—इन विधियों म भी व्यक्ति के प्रक्षेपण की क्रिया के आधार पर उसके व्यक्तित्व का अध्ययन किया जाता है। किन्तु इनम जो उद्दीपन होते हैं व रोर्शा तथा टी ए टी परीक्षणों जितने असरचित नहीं होते। इन प्रविधियो म उद्दीपन अपूर्ण वाक्या या कुछ शब्द के रूप म होते हैं। व्यक्ति जब इन वाक्यो की पूर्ति करता है या शब्द स वाक्य बनाता है तो ऐसी धारणा है कि वह अपनी अभिवृत्तियो अचेतन इच्छाओ आकाक्षाओ का प्रक्षेपित करता है। इन पूरे किए गए वाक्यो के विश्लेषण के आधार पर उसके व्यक्तित्व के शीलगुणो का पता लगाया जाता है। रोटर्स इनकम्प्लीट सेन्टेन्सेस ब्लैंक (Rotters Incomplete Sentences Blank) एव वर्ड एसोसियेशन टैस्ट (Word Association Test) इस कोटि की प्रविधियो के उदाहरण है। राटर्स इनकम्प्लीट सन्टेन्सेस ब्लैंक मे किस प्रकार के वाक्यो का पूर्ति करने को कहा जाता है इसके कुछ उदाहरण नीचे दिए गए हैं।

I like............

A Mother... ...

Boys... ...

Reading ... ...

I failed ...

वाक्य बनाने हेतु दिए गए वाक्याश इतने असरचित होते हैं कि व्यक्ति अपनी इच्छानुसार वाक्यपूर्ति कर सकता है।

(आ) निष्पादन साधन—निष्पादन साधन अथवा परीक्षण व परीक्षण हैं जिनम व्यक्ति को किसी निश्चित समस्या का उत्तर नहीं देना पडता किन्तु कुछ मूर्त कार्य करना पडता है जैसे कुछ गुटको से कोई आकृति बनाना किसी पेटी (Box) म रखे हुए गुटको को खिसका कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर दी हुई आकृति के अनुसार ले जाना चित्र के भागो को जोड कर सम्पूर्ण चित्र बनाना कुछ पुर्जों को जोड कर कुछ वस्तुओ का निर्माण करना अथवा अन्य कई प्रकार के मूर्त कार्य इन

परीक्षण। म विषयी से करवाए जाते हैं। निष्पादन परीक्षणा का उपयोग सामान्य तया बुद्धि एव अभिक्षमता मापन म किया जाता है। इन परीक्षणा के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं —

(i) **बुद्धिमापन हेतु प्रयुक्त निष्पादन परीक्षण कोहस ब्लाक डिजाइन टेस्ट**—यह परीक्षण बुद्धिमापन हेतु काम म लिया जाता है। इसमे १६ घनाकार लकडी के गुटके होते हैं जिनकी ६ सतह अलग अलग रगो म रगी होती हैं। इन गुटको के अतिरिक्त कुछ कार्ड भी होते हैं जिन पर रगीन आकृतियां बनी होती हैं। विषयी को इन गुटको को जोड कर कार्ड पर दी गई आकृति जैसी आकृति बनाने को कहा जाता है। कुछ आकृतिया ४ गुटको से बन सकती हैं। कुछ ६ से तथा कुछ समस्त १६ गुटको से बनाई जाती है। प्रत्येक आकृति बनाने म लगे समय को नोट कर लिया जाता है व फिर नियम पुस्तिका में दी गई विधि से बुद्धिलब्धि ज्ञात की जाती है।

बुद्धिमापन हेतु अन्य निष्पादन परीक्षण भी काम म लिए जाते हैं जिनमे से प्रमुख हैं अलिक्जाडर पास अलोग टस्ट (A exander Pa s along Test) क्यूब कन्स्ट्रक्शन टेस्ट (Cube Construction Test) भाटिया बटरी (Bhatia Battery) वक्सलर एडल्ट इन्टेलिजेन्स स्केल (Wechsler Adult Intelligence Scale) तथा आर्थर पाइट स्केल (Arthur Point Scal) ।

निष्पादन परीक्षणा की विशेषता यह है कि यदि कोई व्यक्ति पढा लिखा नही है या किसी भाषा को नही जानता तो भी इन परीक्षणा से उसकी बुद्धि का मापन किया जा सकता है।

(ii) **अभिक्षमता मापन हेतु प्रयुक्त निष्पादन परीक्षण**—अभिक्षमता मापन म अधिकतर निष्पादन परीक्षणो का उपयोग किया जाता है। कुछ अभिक्षम ताओ को लिखित साधनो से भी मापा जा सकता है। अभिक्षमता मापन हेतु प्रयुक्त कुछ निष्पादन परीक्षणा के उदाहरण निम्नलिखित हैं —

ओकोनर ट्वीजर डेक्टेरिटी टेस्ट—यह परीक्षण सर्वप्रथम एक विद्युत कम्पनी म विद्युत मीटरो एव अन्य यन्त्रो को जोडने के लिए कार्यकर्ताओ के चयन हेतु बनाया गया था। फिर अन्य कार्यों के कार्यकर्ताओ पर भी इसका प्रयोग किया गया। इस परीक्षण के आधार पर ऊगलियो के कौशल का मापन किया जा सकता है। विशेषकर ऐसे कार्यों म जिनमे चिमटे से सूक्ष्म वस्तुओ को उठाकर निर्धारित स्थान पर रखने की आवश्यकता हो। घडीसाज या अन्य सूक्ष्म यन्त्रो से सम्बन्धित मशीनरी म इस अभिक्षमता की आवश्यकता होती है। इस परीक्षण मे एक धातु की प्लेट होती है जिसमे एक ओर गड्ढा-सा बना होता है तथा शेष भाग मे १० छिद्र बने होते हैं। छिद्रो की दस समानान्तर पक्तिया होती हैं व प्रत्येक पक्ति म समान दूरी पर दस छिद्र बने होते हैं। परीक्षण के लिए अन्य आवश्यक सामग्री एक

चिमटी व सो म अधिक भिन होती हैं जो नि प्लेट म बन छिद्रा म आसानी से जा सकती हैं। परी क्षण म व्यक्ति का प्लेट म बने ग डे म रखी पिना का चिम टी की सहायता म छिद्र म भसन को कहा जाता है। समस्त सो छिद्र म पिन डालने के लिए जितना समय लगता है उसके आधार पर ऊंगलियों व कौशल का मापन किया जाता है।

अभियमता मापन के कुछ अन्य प्रमुख निष्पादन परीक्षण हैं जिनमें व्लॉक डिजाइन टेस्ट (Wiggly Block Design Test) स्टेनक्विस्ट मकैनिकल एसैंबली टस्ट (Stenquist Mechanical Assembly Test) डेट्रायट मैनुअल एबिलिटी टस्ट (Detroit Manual Ability Test) हैण्ड स्टडिनस टस्ट (Hand Steadiness Test) आदि।

(ख) वयक्तिक एव सामूहिक साधन

व्यक्ति म अध्ययन हेतु प्रयुक्त साधनों म से कुछ एस है जिनके द्वारा एक समय पर एक ही व्यक्ति का परीक्षण किया जा सकता है एस साधनों का वयक्तिक साधन कहते है। कुछ साधन ऐसे होते हैं जिनके द्वारा एक साथ किसी भी समूह का परीक्षण किया जा सकता है एस साधनो को सामूहिक साधन कहते हैं।

(अ) वयक्तिक साधन—वैयक्तिक साधनों स हम एक साथ कई व्यक्तियों का परीक्षण नहीं कर सकते। इसके कई कारण हैं। अधिकतर वयक्तिक साधनों म परीक्षण हेतु कुछ उपकरणों का प्रयोग किया जाता है अत एक समय अधिक उपकरणों का उपलब्ध होना कठिन है। इन परीक्षणों म परीक्षण सामग्री उपकरणों के रूप में होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति को अलग अलग निर्देश देने की आवश्यकता होती है अन्यथा परीक्षण में त्रुटि होने की आशका रहती है। वयक्तिक परीक्षणों म सामान्यतया किसी काय को व्यक्ति कितने समय म पूरा कर सकता है अथवा किसी काय म कितनी त्रुटियाँ करता है इसका अभिलेख रखना पड़ता है। अत यह समूह म सम्भव नहीं हो सकता। चूकि वयक्तिक परीक्षणों म हम एक समय म एक ही व्यक्ति का परीक्षण करते हैं अत परी क्षण म त्रुटि की कम सम्भावना रहती है। साथ ही व्यक्ति जब परीक्षण म दी गई समस्या को हल करता है उस समय के उसके अन्य व्यवहारों का भी अध्ययन इन परीक्षणों म किया जा सकता है। किन्तु इन परीक्षणों का सबसे बड़ा दोष यह है कि इनमे अत्यधिक समय लगता है। अत जब अधिक व्यक्तियों का परीक्षण करना हो तो इन साधनों के प्रयोग म कठिनाई हो सकती है।

अधिकतर निष्पादन परीक्षण वयक्तिक ही होते हैं। अत वयक्तिक परीक्षणों के अलग स उदाहरण प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं।

(आ) सामूहिक साधन—अधिकतर लिखित परीक्षण कई व्यक्तियों को एक साथ समूह म दिए जा सकते हैं। सामूहिक परीक्षण पुस्तिकाओं के रूप म होते

हैं अत एक साथ कई प्रतियाँ उपलब्ध हो सकती हैं। इन्हीं पुस्तिकाओं पर सामान्य तथा निर्देश भी छपे रहते हैं क्योंकि एक साथ कई व्यक्तियों को पढ़कर सुनाए जा सकते हैं। चूंकि सामूहिक परीक्षणों में अधिकतर कुछ प्रश्नों के उत्तर देने होते हैं अतः निर्देशों के समझने में विशेष कठिनाई होने की आशंका नहीं रहती। इन परीक्षणों में प्रत्येक व्यक्ति का काम करने का समय ज्ञात नहीं करना पड़ता किन्तु निश्चित अवधि के पश्चात् उत्तर पुस्तिकाएँ वापस लेनी होती हैं। अतः यह कार्य भी समूह में किया जा सकता है।

समूह परीक्षणों में जलोटा का सामान्य मानसिक योग्यता का परीक्षण, प्रयाग महता का बुद्धि परीक्षण, इलाहाबाद ब्यूरो आफ साइकोलाजी के बुद्धिपरीक्षण, कूडर एवं स्ट्राँग की अभिरुचि सूचियाँ, मेहता की व्यावसायिक अभिरुचि चिह्नांकन सूची, राटर का वाक्यपूर्ति परीक्षण, डी० ए० टी० आदि परीक्षण उल्लेखनीय हैं। समूह परीक्षणों को वैयक्तिक परीक्षणों के रूप में भी काम में लिया जा सकता है किन्तु वैयक्तिक परीक्षणों को समूह में एक साथ नहीं दिया जा सकता। इसमें जो कठिनाइयाँ हैं उनका वर्णन पहले किया जा चुका है।

समूह परीक्षणों का लाभ यह है कि इनके द्वारा एक साथ कई व्यक्तियों का परीक्षण किया जा सकता है अतः समय की बचत होती है। साथ ही आर्थिक दृष्टि से भी इनमें कम व्यय होता है। जहाँ कई व्यक्तियों का परीक्षण करना हो वहाँ इन परीक्षणों का प्रयोग किया जा सकता है।

(२) अमानकीकृत अथवा शिक्षक निर्मित साधन—

निर्देशन कार्यकर्ता के लिये केवल मानकीकृत परीक्षणों पर निर्भर रहना आवश्यक नहीं। वह वैयक्तिक सूचनाओं को एकत्रित करने में कुछ अन्य साधनों का भी निर्माण कर सकता है। कभी कभी तो इन शिक्षक निर्मित अथवा अमानकीकृत साधनों से भी हमें ऐसी सूचनाएँ प्राप्त होती हैं जो कि मानकीकृत साधनों से नहीं हो सकतीं। शिक्षक निर्मित साधनों का उपयोग हम पूरक साधनों के रूप में भी कर सकते हैं। मानकीकृत साधनों से व्यक्ति सम्बन्धी जो सूचनाएँ रह गई हों उनको हम शिक्षक निर्मित साधनों से एकत्रित कर सकते हैं। फिर हमारे देश में दो कारणों से शिक्षक निर्मित साधनों के ही अधिक उपयोग की सम्भावना हो सकती है। एक तो हमारे यहाँ अर्थाभाव के कारण प्रत्येक शाला में सभी आवश्यक मानकीकृत परीक्षणों के खरीदने की निकट भविष्य में कल्पना नहीं की जा सकती। फिर भारत में सभी क्षेत्रों में पर्याप्त मानकीकृत परीक्षण उपलब्ध भी नहीं हैं। हिन्दी में तो फिर भी कुछ परीक्षण उपलब्ध हैं किन्तु अन्य प्रान्तीय भाषाओं में तो मानकीकृत परीक्षणों की ओर भी कमी पाई जाती है। अतः इन परिस्थितियों में सबसे व्यावहारिक हल जो दृष्टिगोचर होता है वह है शिक्षक निर्मित साधनों का। विदेशी परिस्थितियों में निर्मित एवं मानकीकृत साधनों के प्रयोग से अधिक वांछनीय तो यह

है कि हम शिक्षक निर्मित साधनों का प्रयोग करें। शिक्षक निर्मित कुछ साधनों के उदाहरण नीचे प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

(क) **निर्धारण मापनी**—निर्धारण मापनी के आधार पर हम किसी व्यक्ति के सम्बन्ध में अन्य व्यक्तियों के क्या राय है वह ज्ञात करते हैं। व्यक्ति के विभिन्न गुणों के सम्बन्ध में उन व्यक्तियों से राय प्राप्त की जाती है जिनका व्यक्ति से निकट का सम्बन्ध है। *निर्धारण मापनी में किसी भी गुण को विभिन्न स्तरों पर परिभाषित किया जाता है और निर्धारक यह बताता है कि व्यक्ति में यह गुण किस स्तर पर है।* केवल बहुत अधिक सामान्य या बहुत कम इस प्रकार के विशेषणों का प्रयोग करने की अपेक्षा गुण को इन स्तरों पर गुणात्मक रूप से उसकी व्यवहार अभिव्यक्तियों के रूप में परिभाषित किया जाता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक स्तर को १, २, ३, ४, ५ आदि अङ्क दिए जाते हैं ताकि गुण निर्धारण गुणात्मक एवं परिमाणात्मक दोनों रूप से किया जा सके। परिमाणात्मक गुण *निर्धारण से हम समस्त कक्षा में छात्र का उस गुण के सन्दर्भ में क्या स्थान है यह पता लगाने में सहायता मिलती है तथा यदि तुलनात्मक अध्ययन करना हो तो* भी परिमाणात्मक मूल्यांकन उपयोगी सिद्ध हो सकता है। उदाहरणार्थ—

स्वतः प्रेरणा

१	२	३	४	५
नए काम या जिम्मेदारियाँ अपने आप ढूँढ निकालता है।	किसी भी काम में आगे रह कर भाग लेता है।	दी गई जिम्मेदारी को निष्ठा के साथ वहन करता है।	जिम्मेदारी का काम करने में हिचकिचाहट अनुभव करता है।	किसी भी काम में भाग लेने की इच्छा नहीं रखता है।

निर्धारण मापनी में व्यक्ति के स्वतः प्रेरणा का मूल्यांकन करने हेतु निर्धारक देखेगा कि व्यक्ति सामान्यतया किस प्रकार का व्यवहार करता है और उसके अनुकूल स्वतः प्रेरणा व्यक्ति में किस स्तर पर है इसका वह चिह्नाङ्कन करेगा। किसी भी गुण को जितनी स्पष्टता से विभिन्न स्तरों पर परिभाषित किया जाएगा गुण के मापन में उतनी ही कम त्रुटि होने की आशंका होगी। गुण की सुस्पष्ट परिभाषा निर्धारक को यह जानने में सहायक होती है कि अमुक गुण से हमारा क्या तात्पर्य है या इस गुण के अन्तर्गत किस प्रकार के व्यवहारों की कल्पना की जा रही है।

(ख) **निर्धारण मापनी के लाभ**—निर्धारण मापनी का सबसे बड़ा लाभ यह

है कि इसे किसी भी विद्यालय में बड़ी सरलता से शिक्षकों द्वारा निर्मित किया जा सकता है। इसके उपयोग में अन्य साधनों की अपेक्षा अत्यन्त कम व्यय होता है अतः भारतीय परिस्थितियों में इसकी अधिक उपादेयता है। इसके उपयोग हेतु विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती अतः कोई भी शिक्षक इसका उपयोग कर सकता है। इसमें उन्हीं गुणों का समावेश किया जा सकता है जिसके सम्बन्ध में हम सूचनाएं प्राप्त करनी हैं।

(अ) निर्धारण मापनी के निर्माण एवं उपयोग सम्बन्धी कुछ प्रमुख सावधानियां

(i) निर्धारण मापनी की सफलता जैसाकि पहले कहा जा चुका है बहुत सीमा तक इस पर निर्भर करती है कि गुणों की परिभाषा विभिन्न स्तरों पर कितने स्पष्ट रूप से की गई है। केवल अत्यधिक अधिक सामान्य कम और बहुत कम इन स्तरों में गुणों का विभाजित करने के लिये बहुधा गुणों के सही मूल्यांकन में सहायक नहीं होता। इन स्तरों पर गुणों का व्यवहार रूप व्याख्या करना गुणों के सही मूल्यांकन के लिये अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

(ii) निर्धारण मापनी का उपयोग उन्हीं व्यक्तियों को करना चाहिए जो कि विषयी से निकट रूपेण सम्बन्धित हों। तभी विश्वसनीय सूचनाएं प्राप्त होने की सम्भावनाएं हो सकती हैं।

(iii) किसी भी गुण का निर्धारण करते समय अल्पकालीन प्रेक्षणों के आधार पर अपना मत व्यक्त नहीं करना चाहिए। लम्बी अवधि तक यदि गुणों का प्रेक्षण किया गया हो तभी इन अनुभवों के आधार पर गुण निर्धारण करना वांछनीय होगा।

(iv) अनेक बार यह देखा गया है कि निर्धारक व्यक्ति के गुणों के निर्धारण हेतु आवश्यक कष्ट नहीं उठाते और केवल औपचारिकता निभाने हेतु कहीं भी चिह्न लगा देते हैं। इस सम्भावना को कम करने हेतु अनेक बार निर्धारकों से जिन प्रेक्षणों के आधार पर गुणों का निर्धारण किया गया है उन्हें भी लिखने के लिए कहा जाता है।

(v) यह भी देखा गया है कि निर्धारक सामान्यतया नकारात्मक राय देने से संकोच करते हैं और केवल अच्छे पक्षों को ही प्रकाश में लाना चाहते हैं फलस्वरूप *व्यक्ति में कोई दोष नहीं है ऐसा वे उसे सदा चित्रित करते हैं।* अतः निर्धारकों को स्पष्ट निर्देश दिए जाएं कि वे निःसंकोच गुणों का निर्धारण करें और यह भी आश्वासन दिया जाए कि उनके निर्धारण गोपनीय रखे जायेंगे।

(vi) निर्धारण मापनी का प्रयोग करते समय निर्धारक को यह सावधानी रखनी चाहिए कि अपने पूर्वाग्रहों व्यक्तिगत रुचियों अरुचियों आदि का प्रभाव व्यक्ति के गुण निर्धारण पर न पड़ने पाए।

(vii) निर्धारण मापनी से प्राप्त सूचनाओं की विश्वसनीयता को बढ़ाने हेतु एक से अधिक व्यक्तियों द्वारा किसी व्यक्ति के गुणों का निर्धारण करवाना लाभ

प्रद सिद्ध हो सकता है। इसके अतिरिक्त किसी भी गुण का निर्धारण वर्ष में कम से कम दो तीन बार करना चाहिए क्योंकि हो सकता है वर्ष के प्रारम्भ में या कुछ समय तक एक गुण विकसित न हुआ हो किन्तु बाद में वह गुण विकसित हो जाए अत कई बार गुण का निर्धारण करने से हमें विश्वसनीय सूचनाए प्राप्त हो सकती हैं।

(ख) उपाख्यान वृत्त—व्यक्ति सम्बन्धी सूचनाए एकत्रित करने का एक और अपेक्षाकृत साधन हो सकता है उपाख्यान वृत्त। इस साधन में शिक्षक यदि किसी बालक से सम्बन्धित कोई महत्त्वपूर्ण घटना देखता है तो उसका संक्षिप्त वर्णन एक प्रपत्र पर लिख कर निर्देशक तक पहुँचा देता है। व्यक्ति से सम्बन्धित ऐसी घटनाओं के संकलन विश्लेषण से व्यक्ति के अध्ययन में सहायता मिल सकती है। उपाख्यान वृत्त जिस प्रपत्र पर लिखा जा सकता है उसका एक प्रस्तावित स्वरूप नीचे दिया जा रहा है।

विद्यालय का नाम

उपाख्यान वृत्त प्रपत्र

छात्र का नाम

कक्षा }

घटना के प्रेक्षण का दिनांक

घटना का संक्षिप्त विवरण

घटना प्रेक्षक के हस्ताक्षर

इन उपाख्यान वृत्त प्रपत्रों को एकत्रित करने हेतु निर्देशन कक्ष में एक पेटी रखी जा सकती है जिसमें शिक्षक उपाख्यान वृत्त प्रपत्रों को कभी भी डाल सकते हैं। समय समय पर निर्देशन कार्यकर्त्ता इन प्रपत्रों को निकाल कर सम्बन्धित छात्र के संचित अभिलेख में रख सकता है। छात्र के संचित अभिलेख में ऐसे उपाख्यान वृत्त जब एकत्रित हो जाएं तो उनसे प्राप्त सूचनाओं को अभिलेख में स्थाई रूप से स्थानान्तरित किया जा सकता है। केवल महत्त्वपूर्ण सूचनाओं का ही संचित अभिलेख में स्थानान्तरित करना चाहिए।

(अ) **उपाख्यान वृत्त का महत्त्व**— औपचारिक रीति से विशद प्रेक्षण की चर्चा हमने प्रारम्भ में की है किन्तु अनेक बार इतना विस्तृत निरीक्षण न तो सम्भव हो पाता है न ही सदैव इसकी आवश्यकता भी अनुभव की जाती है। फिर वस्तुतः एवं औपचारिक प्रेक्षण में समय भी अधिक लगता है। उपाख्यान वृत्त भी एक प्रकार से व्यक्ति के व्यवहार सम्बन्धी प्रेक्षणों का अभिलेख ही है। अन्तर केवल यह है कि इसमें केवल किसी घटना विशेष सम्बन्धी प्रेक्षणों का समावेश होता है तथा यह अधिक औपचारिक प्रेक्षण नहीं होता। घटनावृत्त क्योंकि विभिन्न शिक्षकों से प्राप्त होते हैं अतः एक ही व्यक्ति के प्रेक्षणों में जो व्यक्तिनिष्ठता आ जाने की आशंका रहती है वह दोष कुछ सीमा तक इस साधन के प्रयोग से कम हो जाता है। फिर उपाख्यान वृत्तों के उपयोग हेतु प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती अतः इनका उपयोग कोई भी शिक्षक कर सकता है।

(आ) **उपाख्यान वृत्त की आवश्यकता**—पाठकों के मन में यह शंका उत्पन्न हो सकती है कि शिक्षक जिन व्यवहारों को देखते हैं उन्हें लिखित रूप में निर्देशन कार्यकर्त्ता के पास क्यों पहुँचाएं। इसके पीछे एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त यह है कि जितने अधिक व्यक्तियों के प्रेक्षण निर्देशन कार्यकर्त्ता के पास होंगे उतनी ही अधिक विश्वसनीय राय वह छात्र के सम्बन्ध में बना सकता है। लिखित रूप से अपने प्रेक्षण उपबोधक के पास पहुँचाने से तथ्यों में अन्तर पड़ने की सम्भावना कम हो जाती है। केवल स्मृति पर आधारित तथ्यों पर हम अधिक विश्वास नहीं कर सकते।

(इ) **उपाख्यान वृत्त में किन घटनाओं का समावेश किया जाए**—एक बिन्दु हम पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं कि उपाख्यान वृत्तों में केवल महत्त्वपूर्ण घटनाओं का ही उल्लेख किया जाए। ये घटनाएं ऐसी होनी चाहिए जिनसे हमें व्यक्ति की क्षमताओं कमियों, समायुवायियों के साथ अन्तः सम्बन्धों का पता चलता हो। छात्र के आक्रामक व्यवहार, पलायन प्रवृत्ति, सौहार्दपूर्ण व्यवहार आदि महत्त्वपूर्ण व्यवहारों से सम्बन्धित घटनाओं का वर्णन यदि किया जाए तो छात्र के व्यक्तित्व को अधिक अच्छी तरह से समझने में सहायता मिल सकती है। उपाख्यान वृत्त में घटना की पृष्ठभूमि तथा घटना के महत्त्वपूर्ण तथ्य दोनों का समावेश होना चाहिए ताकि तथ्यों

के निवचन म सुविधा न सके । यदि उपाख्यान का निम्न वाला व्यक्ति घटना के आधार पर स्वयं निष्कर्ष भी लिखना चाहता है तो स्पष्ट रूप से अलग करके लिखना चाहिए । घटनाएँ ऐसी न हो जो या तो छात्र के किसी सामान्य गुण की पुष्टि करती हो अथवा छात्र सम्बन्धी किसी सामान्य धारणा के विपरीत हो । कहने का तात्पर्य यह कि घटनावृत्त तभी सार्थक सिद्ध हो सकता है जब उसमें वर्णित घटनाएँ महत्वपूर्ण हो ।

(३) आत्म विवरणात्मक साधन

मानवीकृत एवं अमानवीकृत अथवा शिक्षक निर्मित साधनों के अतिरिक्त कुछ साधन ऐसे भी हो सकते हैं जिसमें छात्र स्वयं से सम्बन्धित सूचनाएं स्वयं ही प्रदान करता है । इन्हें आत्म विवरणात्मक साधन कहते हैं । इनके कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं ।

(क) आत्मकथा—अमानवीकृत साधनों में आत्मकथा भी एक महत्वपूर्ण साधन हो सकता है । भाषा के शिक्षक कक्षा-कार्य के रूप में छात्रों से अपनी अपनी आत्मकथाएं लिखवा सकते हैं । इन आत्मकथाओं के अध्ययन एवं विश्लेषण से व्यक्ति के जीवन से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण सूचनाएं प्राप्त हो सकती हैं । आत्मकथा लिखने का कार्य अनौपचारिक ढंग से किया जाना चाहिए ताकि छात्रों में परीक्षण चेतना न जाग्रत हो जाए और वे अपने जीवन सम्बन्धी घटनाओं को अधिक सहज भाव से लिख सकें ।

(ख) घटना विवरण—कभी-कभी छात्र से सम्पूर्ण आत्मकथा लिखवाने की बजाय अपने जीवन से सम्बन्धित केवल एक या दो अत्यन्त सुखद एवं अत्यन्त दुखद घटनाओं का वर्णन करने को कहा जाता है । इन घटनाओं से छात्र के जीवन से सम्बन्धित महत्वपूर्ण सूचनाएं प्राप्त हो सकती हैं ।

(ग) प्रश्नावलियाँ—प्रश्नावली के माध्यम से भी छात्रों के जीवन से सम्बन्धित सूचनाएं उन्हीं से प्राप्त की जा सकती हैं । प्रश्नावली में ऐसी सूचनाओं का संकलन करने का प्रयास करना चाहिए जिन्हें छात्र द्वारा छिपाने की सम्भावना न हो । छात्र की अध्ययन सम्बन्धी समायोजन सम्बन्धी स्वास्थ्य एवं परिवार सम्बन्धी सूचनाएं प्रश्नावलियों द्वारा स्वयं छात्र से प्राप्त की जा सकती हैं ।

(४) वैयक्तिक सूचना-संकलन हेतु प्रयुक्त साधनों के उपयोग के प्रमुख सिद्धान्त

पाठकों के सम्मुख विभिन्न प्रकार के सूचना-संकलन के साधनों का एक विहंगम चित्र प्रस्तुत करने के पश्चात अब हम इन साधनों के उपयोग के कुछ मूलभूत सिद्धान्तों की चर्चा करना चाहेंगे । सर्वप्रथम मानवीकृत साधनों के प्रयोग के सिद्धान्तों की चर्चा की जाएगी तत्पश्चात अन्य साधनों के प्रयोग सम्बन्धी सिद्धान्तों का विवेचन प्रस्तुत किया जाएगा ।

(क) मानकीकृत साधनो के उपयोग के सिद्धात

(अ) मानकीकरण सम्बन्धी सूचनाए—किसी भी मानकीकृत साधन के प्रयोग से पूर्व हम उसके मानकीकरण सम्बन्धी सूचनाओ से अवगत हो जाना चाहिए अर्थात हम देख लेना चाहिए कि साधन की विश्वसनीयता एव वैधता स्तर सन्तोष जनक है कि नही। साथ ही इस बात से भी आश्वस्त हो जाना आवश्यक है कि जिस समष्टि पर साधन का मानकीकरण किया गया है उसम और जिस समुदाय के लिए साधन का प्रयोग किया गया है उसम साम्य है कि नही। अनेक बार यह देखा गया है कि अपरिपक्व कार्यकर्ता विदेशी परीक्षणो का बिना सोचे समझ प्रयोग कर लेते हैं। इस प्रकार के परीक्षणो से प्राप्त सूचनाओ का व्यक्ति के अवबोध की दृष्टि से विशेष महत्व नही होता।

(आ) साधन की उपयुक्तता—अनेक बार बहुत उच्च कोटि का साधन होते हुए भी हम यह देख लेना चाहिए कि जिन परिस्थितियो मे हम साधन का प्रयोग करना है उन परिस्थितियो म उसका प्रयोग किया जा सकता है कि नही। साधन म प्रयुक्त भाषा साधन की कीमत साधन के प्रयोग मे लगने वाला समय साधन की जटिलता साधन के प्रयोग हेतु आवश्यक प्रशिक्षण आदि कुछ ऐसे बिन्दु हैं जो हम यह निर्णय लेने म सहायक हो सकते हैं कि हम साधन का प्रयोग कर सकते है या नही।

(इ) साधन से प्राप्त दत्त—साधन से दत्त किस रूप म प्राप्त होता है यह भी साधन के चयन म एक महत्वपूर्ण निर्धारक कारक हो सकता है। आजकल किसी भी गुण का मापन एकात्मक प्राप्तांक के रूप म करने की बजाय विभेदक प्राप्तांका के रूप मे करना अधिक उपयोगी समझा जाता है। अत जिन परीक्षणो म बुद्धि का मापन बुद्धिलब्धि के रूप म किया जाता है उसके स्थान पर उन परीक्षणो को अधिक प्रधानता दी जाती है जिनम बुद्धि का मापन शाब्दिक शाब्दिक यांत्रिक आदि योग्यताओ के प्राप्तांको के रूप म किया जाता है। इसी प्रकार व्यक्तित्व का मापन भी व्यक्तित्व के विभिन्न शीलगुणो के सन्दर्भ म किया जाय तो इन परिणामो की अधिक सार्थकता हो सकती है। डिफरेंशियल एप्टिट्यूड बटरी वेक्सलर एडल्ट इन्टेलिजन्स स्केल ऐसे परीक्षण हैं जिनम एकात्मक प्राप्तांको के स्थान पर विभेदक प्राप्तांक प्राप्त होते हैं। जबकि बिने स्केल एव इसके आधार पर बनाए गए अन्य परीक्षण तथा जलोटा भाटिया मेहता आदि के बुद्धि परीक्षणो म हम बुद्धिलब्धि (I Q) के रूप म एकात्मक प्राप्तांक प्राप्त होते हैं।

(ई) साधन के उपयोग पत्र उससे पूर्ण परिचित होना—किसी भी साधन का प्रयोग हम तबतक नहा करना चाहिए जबतक हम उसकी सामग्री प्रशासन आदि विधि एव अंकन विधि से पूर्णरूप से परिचित न हो। केवल परीक्षण के सम्बन्ध म परीक्षण नियम पुस्तिका म पढ लेना मात्र पर्याप्त नही होता। अनेक बार

परीक्षण के उपयोग के समय प्रयत्न कठिनाइयाँ आ सकती है। अतः सर्वोत्तम उपाय यह होगा कि परीक्षण के उपयोग से पूर्व उसका अच्छा अभ्यास कर लिया जाय।

(ख) प्रशासन के समय सावधानियाँ—मानकीकृत परीक्षण के मानकीकरण म उनके निश्चित प्रशासन विधि भी सम्मिलित होती है। अतः परीक्षण का प्रशासन ठीक उसी प्रकार से होना चाहिए जैसाकि नियम पुस्तिका म सुझाया गया है निर्देशन एवं उनकी भाषा में भी अन्तर करना वाञ्छनीय नहीं होगा। अपने मन से नए निर्देश जारी देना अथवा निर्धारित निर्देशों म परिवर्तन करना परिणामों को दूषित करना होगा। परीक्षण के प्रशासन से पूर्व परीक्षण सामग्री को पुनः जाँच कर लेनी चाहिए ताकि परीक्षण के समय अनावश्यक समय नष्ट न हो। परीक्षण के प्रशासन के समय भौतिक सुविधाओं का पूर्ण ध्यान रखना आवश्यक होता है। ठीक बैठने व लिखने की व्यवस्था, हवा व प्रकाश की ठीक व्यवस्था, अनावश्यक व्यवधानों का न होना उचित परीक्षण के लिए आवश्यक पूर्वापेक्षाएँ हैं। प्रशासन म पूर्व यह भी देख लेना चाहिए कि विषयी परीक्षण देने की मन स्थिति म है या नहीं। थकान, मानसिक तनाव, किसी अन्य काम की ओर आकर्षण, शारीरिक अस्वस्थता आदि ऐसे कारक हैं जो परीक्षण के परिणामों पर निश्चित रूप से प्रभाव डालते हैं। अतः ऐसी परिस्थितियों म परीक्षण का प्रशासन निरर्थक होगा।

(ग) परीक्षणों के परिणाम—जैसाकि हमने प्रारम्भ म कहा है हम व्यक्तिक सूचना व्यक्ति का स्वयं के सम्बन्ध म अधिक ज्ञान प्राप्त करने म सहायता प्रदान करने हेतु एकत्रित करते हैं। अतः व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह इन साधनों से प्राप्त सूचनाओं का उपयोग कर सके। इसका अर्थ यह नहीं कि हम उसे परीक्षण के परिणाम जस के तसे बता दें। ऐसा करने से व्यक्ति की सहायता करने के स्थान पर हम हानि पहुँचा दें। मनोवैज्ञानिक परीक्षण के परिणाम उसी रूप म बता देना न तो व्यक्ति के लिए किसी भी रूप म उपयोगी सिद्ध होगा न ही वाञ्छनीय भी। हम तो परीक्षण परिणामों के विवेचन इस रूप म व्यक्ति के सम्मुख रखने होंगे जिनको कि वह समझ सके और उनका उपयोग कर सके। उदाहरणार्थ यदि हम किसी बालक को कह दें कि तुम्हारी बुद्धिलब्धि ७७ है तो यह सूचना उस बालक के लिए किस तरह उपादेय सिद्ध होगी? इस निम्न बुद्धि स्तर का क्या अभिप्राय है उसकी भविष्य योजनाओं म इसका किस तरह ध्यान रखा जा सकता है। ये सूचनाएँ यदि हम उस बालक को दें तो यह कदाचित् उसके लिए अधिक लाभप्रद सिद्ध होगा।

(घ) मानकीकृत साधन ही एकमेव साधन नहीं—नवीन उत्साही निर्देशन कार्यकर्ताओं को मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के प्रयोग का अत्यधिक शौक होता है एवं कुछ भ्रामक धारणा भी मन म बन जाती है कि मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के आधार पर ही निर्देशन कार्य हो सकता है। अतः निर्देशन सेवाएँ परीक्षण सेवाओं म बदल जाती हैं। एक समय था जब निर्देशन पर प्रायोगिक मनोविज्ञान का इतना प्रभाव हो

गया था कि निर्देशन एवं मनोवैज्ञानिक परीक्षणों को एक दूसरे का पर्यायवाची ही समझने लगे। किसी पाठशाला में कुछ मनोवैज्ञानिक परीक्षण कर लिए जाते थे और प्रधानाध्यापक बड़े गर्व से कहते थे कि हमारे यहाँ निर्देशन कार्य बड़ा उत्तम चल रहा है। यह धारणा धीरे धीरे लुप्त हुई। आज हम यह मानते हैं कि निर्देशन के अनेक साधनों में से मनोवैज्ञानिक परीक्षण एक साधन है—एक मात्र साधन नहीं। अतः सूचनाओं को सम्पन्न बनाने हेतु हम अन्य साधनों एवं प्रविधियों से भी सूचनाएं प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए।

(६) **भारत में परीक्षणों के प्रयोग की विशेष सावधानियाँ**—मानवीकृत साधनों के प्रयोग के सामान्य सिद्धान्तों की चर्चा तो उपरोक्त अनुच्छेद में कर दी गई है किन्तु भारत में जब हम इन परीक्षणों का प्रयोग करते हैं तो हमें कुछ विशेष सावधानियाँ बरतनी पड़ती हैं। भारतीय बच्चों के मन में परीक्षाओं के प्रति भय रहता है। वे इन परीक्षणों को भी सामान्य शालीय परीक्षा जैसा ही समझते हैं और अपने निष्पादन का उत्तम दर्शन हेतु अनुचित विधियाँ अपनाते हैं। लेखक को यह अनुभव है कि व्यक्तिपूर्ति परीक्षण जैसे सामान्य परीक्षण में भी बालक दूसरे बालकों द्वारा बताए गए वाक्यों की नकल करने का प्रयास करते हैं। अतः परीक्षण के प्रशासन के समय बालकों को यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि यह कोई परीक्षा नहीं है। इसके अंक उनकी परीक्षा के अंकों में नहीं जुड़ेंगे। रुचियों, विद्वत्ता-सूचियों, प्रक्षेपी अथवा अप्रक्षेपी विधियों में तो हम यह भी कह सकते हैं कि इन परीक्षणों में कोई एक उत्तर ठीक अथवा गलत नहीं है। अतः दूसरे के उत्तरों को देखने की आवश्यकता नहीं। भारतीय बालकों को मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का अभ्यास नहीं होता। अतः निर्देशों को स्पष्ट करने हेतु कई बार दोहराना पड़ सकता है। और परीक्षण प्रारम्भ करने से पूर्व आश्वस्त हो जाना आवश्यक होता है कि बच्चे निर्देश समझ गए हैं अथवा नहीं।

(ख) **अमानकीकृत साधनों के उपयोग के सिद्धान्त**—अमानकीकृत साधनों की विश्वसनीयता, वस्तुनिष्ठता एवं वैधता यद्यपि सांख्यिकीय विधियों से सिद्ध नहीं की जाती फिर भी इन साधनों में उपयुक्त गुणों का होना आवश्यक है और यह गुण तभी आ सकते हैं जब हम इन साधनों के निर्माण एवं उपयोग में कुछ सावधानियाँ रखें। अमानकीकृत साधनों से प्राप्त दत्त की उपयोगिता बढ़ाने हेतु कुछ बिन्दु ध्यान में रखे जा सकते हैं।

(अ) **निर्माण के प्रमुख सोपान**—यदि किसी शिक्षक निर्मित साधन की उपादेयता को हम बढ़ाना चाहते हैं तो उसका निर्माण वैज्ञानिक ढंग से किया जाना चाहिये। किसी साधन के निर्माण का सर्वप्रथम सोपान है—सम्बन्धित साहित्य एवं क्षेत्र के विशेषज्ञों की राय के आधार पर साधन में सम्मिलित की जाने वाली सामग्री का चयन। यदि हम गणित का उपलब्धि परीक्षण बना रहे हैं तो कुछ अच्छे गणित शिक्षकों की राय इस बारे में जानी जा सकती है कि इस परीक्षण में

कौन-कौन से विन्दुओं का समावेश किया जाय। फिर निर्माता इन स्रोतों से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर साधन का एक प्रारूप तैयार करे। इस प्रारूप को अन्तिम न माना जाए। कुछ व्यक्तियों पर इस प्रारम्भिक प्रारूप का पूर्व परीक्षण किया जाय। पूर्व परीक्षण के परिणामों के आधार पर प्रारम्भिक प्रारूप में आवश्यक परिवर्तन किया जाना चाहिए और फिर साधन का अंतिम रूप निर्धारित करना चाहिए। प्रायः जब प्रश्नावलियों का जब पूर्व परीक्षण किया जाता है तो हम यह देखने को मिलता है कि कुछ प्रश्नों के उत्तर कोई भी व्यक्ति नहीं देता अथवा कुछ प्रश्न स्पष्ट नहीं होते अथवा कुछ प्रश्नों का सब व्यक्ति एक जैसा ही उत्तर देते हैं। अतः प्रश्नावली का अन्तिम प्रारूप निर्धारित करते समय हम ऐसे प्रश्नों को या तो हटा देते हैं या उनको परिष्कृत कर देते हैं।

(आ) उपयोग से सम्बन्धित सावधानियाँ—अ-मानकीकृत परीक्षणों में व्यक्ति निष्ठता की मात्रा अधिक होती है। अतः जो व्यक्ति इन साधनों को काम में लाते उसे इस बात का पूरी सावधानी रखनी चाहिए कि वह तटस्थ होकर व्यक्ति सम्बन्धी सूचनाएं दे। सूचनाएं प्रस्तुत करते समय अपने पूर्वाग्रहों, रुचियों, अरुचियों आदि का प्रभाव न पड़ने दे। व्यक्तिनिष्ठता के तत्व को कम करने हेतु अनेक बार हम एक ही साधन द्वारा एक से अधिक व्यक्तियों से विषयी सम्बन्धी सूचनाएं प्राप्त करते हैं। जिन सूचनाओं में तालमेल न हो उन्हें हम काम में नहीं लेते अथवा उनके सम्बन्ध में और अधिक छानबीन करते हैं।

भारत में उपलब्ध परीक्षणों के कुछ उदाहरण

वैसे तो यथा स्थान विदेशी परीक्षणों के साथ साथ भारतीय परीक्षणों के उदाहरण भी प्रस्तुत किये गये हैं। फिर भी पाठकों की सुविधा हेतु कुछ भारतीय परीक्षणों की सूची भी यहां प्रस्तुत की जा रही है।

बुद्धि परीक्षण—

बुद्धि परीक्षणों के क्षेत्र में भारत में सबसे अधिक काम हुआ है। हमारे देश में इस क्षेत्र में अग्रगामी कार्य सर्वप्रथम डा. राइस (1922) तथा डा. कामथ (1935) ने किया इन्होंने सर्वप्रथम बिने स्केल से भारतीय अनुकूलनों का निर्माण किया। तत्पश्चात इसी प्रकार के और अन्य परीक्षण भी हमारे सामने आये इनमें (I E Individual scale of Intelligence) प्रमुख है जिसका कि निर्माण डा. उदयशंकर के मार्गदर्शन में किया गया। सामूहिक लिखित बुद्धि परीक्षणों में डा. एस. जलोटा डा. प्रयाग मेहता इलाहाबाद ब्यूरो आफ साइकोलाजी द्वारा निर्मित परीक्षण प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त डा. जोशी, डा. टण्डन, डा. सोहनलाल आदि मनोवैज्ञानिकों ने भी बुद्धि परीक्षण बनाकर इस क्षेत्र को सम्पन्न किया है। शिशुओं के बुद्धिमापन हेतु बड़ौदा की डा. प्रमिला फाटक द्वारा गुडइनफ ड्रा ए मैन टेस्ट का भारतीय अनुकूलन किया गया है। इसी प्रकार निष्पादन बुद्धिपरीक्षणों में डा.

सी एम भाटिया द्वारा निर्मित भाटिया बैटरी प्रसिद्ध है।

व्यक्तित्व परीक्षण—भारत में भी अनेक व्यक्तित्व सूचियों का निर्माण हुआ है जिनमें डा अस्थाना की समायोजन सूची डा सक्सेना की व्यक्तित्व परख प्रश्नावली बिहार के शैक्षिक व्यावसायिक ब्यूरो द्वारा निर्मित बेल एडजस्टमेंट इन्वेन्ट्री का भारतीय अनुवृत्तान जोशी एवं पाण्डे द्वारा निर्मित मूनी प्राबलम चेक लिस्ट का हिन्दी अनुकूलन प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त लगभग २५ व्यक्तित्व सूचियां अथवा मापनियां और उपलब्ध हैं।

प्रक्षेपी विधियों में डा उदय पारीक द्वारा किया गया रोजनवर्ग (Rosenzweig) पिक्चर फ्रस्टेशन स्टडी का भारतीय अनुकूलन उल्लेखनीय है। इसी प्रकार इलाहाबाद ब्यूरो ने टी ए टी (T A T) का भारतीय अनुकूलन तैयार किया है।

अभिरुचि परीक्षण—डा चिटरल ने स्ट्राग के वोकेशनल इंटरेस्ट ब्लैंक का तथा बिहार ब्यूरो आफ एजूकेशनल एण्ड वोकेशनल गाइडेन्स ने कूडर प्रिफरेन्स रेकार्ड के भारतीय अनुकूलनों का निर्माण किया है। डा चेटर्जी डा आर पी सिंह डा पाण्डे डा कुलश्रेष्ठ आदि अनेक मनोवैज्ञानिकों ने अभिरुचि परीक्षणों का निर्माण किया है। इसी प्रकार डा एच पी मेहता ने अग्रेजी में एक व्यावसायिक अभिरुचि चिह्नांकन सूची (Vocational Interest check list) का निर्माण किया है।

अभिक्षमता परीक्षण—अभिक्षमता परीक्षणों में डा मोहसीन का विभान अभिक्षमता परीक्षण डा श्यामानन्द झा द्वारा निर्मित यान्त्रिक अभिक्षमता परीक्षण गणना उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त बिहार ब्यूरो बम्बई गाइडेन्स ब्यूरो उत्तर प्रदेश मनोविज्ञान शाला आदि संस्थाओं ने भी अनेक अभिक्षमता परीक्षणों का निर्माण किया है।

भारत में प्रकाशित एवं अन्य मनोवैज्ञानिक परीक्षण सामान्यतया निम्न प्रकाशकों अथवा कम्पनियों के पास उपलब्ध हो सकते हैं।

(१) पुरोहित एण्ड पुरोहित पूना
(२) मानसायन ३२ नेताजी सुभाष मार्ग देहली—६
(३) रूपा साइकालोजिकल कारपोरेशन वाराणसी
(४) साइकी सेन्टर ग्रीन पार्क न्यू देहली
(५) काशी हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस (डा सक्सेना की व्यक्तित्व सूची के लिए)
(६) मनोविज्ञान केन्द्र २४६ नतिया स्ट्रीट मेरठ कैंट।
(७) इण्डियन साइकोलाजिकल कारपोरेशन लखनऊ—३
(८) साइकोलोजिकल टेस्टिंग सेन्टर आगरा—२

उपसंहारात्मक कथन—इस अध्याय में वैयक्तिक सूचनाओं को एकत्रित करने हेतु प्रयुक्त विभिन्न प्रविधियों एवं साधनों की चर्चा की गई है। वैयक्तिक सूचना एक

त्रित करने या कार्य निर्देशन कार्य के सफल संचालन हेतु अत्यन्त आवश्यक है। व्यक्ति से सम्बन्धित सूचनाएं जितनी सम्पन्न होंगी उतनी ही व्यक्ति को आत्मज्ञान एवं आत्मनिर्णय देने में सुविधा होगी। व्यक्ति की क्षमताओं योग्यताओं के ज्ञान के अभाव में लिए गए निर्णय निराशाओं को जन्म दे सकते हैं। व्यक्तिगत सूचनाएं तभी सम्पन्न हो सकती हैं जब हम विविध स्रोतों से व्यक्ति के बहुआयामी व्यक्तित्व सम्बन्धी सूचनाएं प्राप्त करें। इन विभिन्न स्रोतों से स्वयं व्यक्ति भी सूचनाओं का एक आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण स्रोत है। व्यक्ति से सूचनाएं प्राप्त करने के विविध साधन हैं एवं प्रवेश प्रविधियाँ हैं जिनका इस अध्याय में विस्तृत वर्णन किया गया है। कुछ साधन मनोवैज्ञानिकों के श्रम एवं परिश्रम की देन है जिनके द्वारा वस्तुगत विश्वसनीय दत्त सामग्री प्राप्त हो सकती है। जबकि कुछ ऐसे भी साधन हैं जिनका निर्माण शिक्षक स्वयं कर सकता है। इन विभिन्न साधनों की वस्तुनिष्ठता यथार्थता एवं विश्वसनीयता बढ़ाने हेतु उनके निर्माण एवं उपयोग के समय कुछ सावधानियाँ रखनी चाहिए। इनका भी वर्णन इस अध्याय में किया गया है। मनोवैज्ञानिक मानवीकृत परीक्षण यद्यपि अत्यन्त वस्तुगत एवं विश्वसनीय सूचनाएं प्रदान करते हैं तथापि इनके दुरुपयोग की अधिक आशंकाएं हैं। इनसे वास्तविक रूप से उचित सूचनाएं प्राप्त करने हेतु इनका उपयोग अत्यन्त सावधानी से करना चाहिए। इस खतरे से बचने के लिए इन मानवीकृत साधनों के उपयोग के कुछ आधारभूत सिद्धांत भी इस अध्याय में दिए गए हैं। फिर भारत में तो इन परीक्षणों को और भी अधिक सावधानी से काम में लेने की आवश्यकता है। हमारे देश में परीक्षण अधिक प्रचलित नहीं होने के कारण इनके प्रति उनके मन में भय रहता है और परिणामों के प्रति अनावश्यक चिंता उनके मन में बनी रहती है। इन सब परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए भारतीय बालकों के परीक्षण में अधिक सतर्कता रखना आवश्यक है। अन्त में इस अध्याय में भारत में उपलब्ध कुछ मानवीकृत साधनों के भी उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं। अब अगले अध्याय में पर्यावरणीय सूचनाओं को एकत्रित करने की विधियों के सम्बन्ध में चर्चा की जाएगी।

पर्यावरणीय सूचनाएँ

(प्रस्तावना पर्यावरणीय सूचनाओं के संकलन के सिद्धान्त—(१) सूचनाओं का संकलन छात्रों की आवश्यकताओं के आधार पर हो (२) प्रासंगिकता (३) परिशुद्धता (४) व्यापकता (५) पूर्णता (६) सूचनाओं की उपयोगिता पर्यावरणीय सूचनाओं के क्षेत्र—(१) शाला सम्बन्धी सूचना (क) शाला भवन (ख) शाला नियम एवं परम्पराएं (ग) शाला में उपलब्ध विषय (घ) शाला में उपलब्ध सुविधाएं एवं सेवाएं (ङ) पुस्तकालय (च) पाठ्य सहगामी क्रियाएं (२) विषयों के चयन सम्बन्धी सूचनाएं (३) उच्च शिक्षण सम्बन्धी सुविधाएं (४) व्यवसाय सम्बन्धी सूचनाएं (५) आर्थिक सहायता सम्बन्धी सूचनाएं (६) अध्ययन आदतों एवं कुशलताओं सम्बन्धी सूचनाएं पर्यावरणीय सूचनाओं के स्रोत—(१) शिक्षण संस्थाएं (२) अन्तर्राष्ट्रीय अभिकरण (३) राष्ट्रीय स्तर के अभिकरण—(क) शासकीय सूचनाएं (ख) व्यावसायिक सूचनाएं (४) राज्यस्तरीय अभिकरण (५) औद्योगिक प्रतिष्ठान एवं व्यापारिक संस्थाएं (६) स्थानीय अभिकरण पर्यावरणीय सूचनाओं के संकलन की विधियां—(१) व्यावसायिक सर्वेक्षण (क) व्यावसायिक सर्वेक्षणों से प्राप्त महत्वपूर्ण सूचनाएं (अ) व्यावसायिक झुकाव प्रवृत्ति (आ) नए व्यवसायों से परिचय (इ) व्यवसायों के सम्बन्ध में विस्तृत परिचय (ख) व्यावसायिक सर्वेक्षणों में छात्रों को संयुक्त करना (ग) व्यावसायिक सर्वेक्षण के संचालन से सम्बन्धित कुछ सिद्धान्त—(अ) योजना (आ) व्यापारिक एवं औद्योगिक संस्थानों से सम्पर्क (इ) आवश्यक सर्वेक्षण साधनों का निर्माण (ई) संकलित सूचनाओं का समन्वित प्रतिवेदन पर्यावरणीय सूचनाओं का विश्लेषण एवं संग्रह—(१) सिद्धान्त (२) कार्मिक (३) स्थान पर्यावरणीय सूचनाओं का संचरण—(१) संचरण के सिद्धान्त—(क) प्रसार (ख) सूचनाओं को प्राप्त करने की सुलभ व्यवस्था (ग) समस्त अवसरों का उपयोग (घ) विभिन्न व्यक्तियों का सहयोग आवश्यक (२) संचरण विधियां (क) अनुस्थापन वार्ताएं (अ) शाला के वातावरण से परिचय (आ) अध्ययन आदतों एवं कुशलताओं का ज्ञान (इ) नवीन क्रियाओं का परिचय (ई) व्यावसायिक अनुस्थापन (ख) व्यावसायिक सूचना सम्मेलन (अ) व्यावसायिक सूचना सम्मेलन के आयोजन सम्बन्धी कुछ सुझाव तिथि निर्धारण—छात्रों के रुचि समूहों का गठन—विशेषज्ञों से सम्पर्क–सम्मेलन का संचालन (आ) व्यावसायिक

सूचना सम्प्रेषण का मूल्यांकन (ग) कक्षागत कार्य (घ) पाठ्येतर क्रियाओं के माध्यम से (ङ) अभिभावक दिवस (च) निर्देशन दिवस (छ) नगरों में उपलब्ध पर्यावर्णीय सूचना सामग्री का प्रचार (ज) उच्चस्तरीय विद्यालयों से मेल उपसहारात्मक कथन)

निर्देशन कार्य की सफलता दो प्रकार की सूचनाओं पर निर्भर करती है एक तो व्यक्ति से सम्बन्धित सूचनाएं एवं दूसरी जिस पर्यावरण में सम्बन्धित समस्या उद्भूत हुई है उस पर्यावरण सम्बन्धी सूचनाएं। जैसे जैसे विज्ञान एवं तकनीकी प्रगति हुई है हमारा जीवन अधिकाधिक जटिल होता जा रहा है। पहले तो परिवार अपने आप में एक आत्मनिर्भर इकाई था अतः परिवार के वरिष्ठ सदस्य ही सदस्यों की लगभग सभी आवश्यकताओं की पूर्ति कर देते थे। अध्ययन एवं जीविकोपार्जन का कार्य भी इतना जटिल न था जहां विविध विषयों अथवा व्यवसायों में से चयन करने की समस्या हो। किन्तु आज यह बात नहीं रही विषयों तथा व्यवसायों का इतना बाहुल्य हो गया है कि परिवार के सदस्यों की सूचनाओं के आधार पर काम नहीं चलता। आज जीवन में इतनी गतिशीलता आ गई है कि हम अध्ययन जीविकोपार्जन अथवा अन्य कारणों से एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना पड़ता है। अनेक बार तो परिवार के सदस्यों के लिए नए वातावरण सम्बन्धी ऐसी सूचनाएं दे सकना कठिन हो जाता है। इन सब परिस्थितियों के फलस्वरूप ऐसी संस्थाओं की आवश्यकता अधिकाधिक अनुभव की जाने लगी है जिनसे हम शैक्षिक व्यावसायिक एवं सामाजिक जीवन सम्बन्धी आवश्यक सूचनाएं प्राप्त हो सकें। इन्हीं सूचनाओं को हम पर्यावर्णीय सूचनाएं कहते हैं।

व्यक्ति को अपनी क्षमताओं सीमितताओं का पूर्ण आभास हो किन्तु यदि उसे पर्यावर्णीय सूचनाएं उपलब्ध न हों तो वह अपनी क्षमताओं का समुचित विकास नहीं कर सकता। एक उच्च कोटि के विज्ञान के विद्यार्थी को यदि साइन्स टेलेन्ट सर्च (Science Talent Search) सम्बन्धी सूचना न हो तो वह इस योजना का लाभ उठाकर अपनी विज्ञान की प्रतिभाओं को पूर्णरूप से प्रस्फुटित नहीं कर सकता। पर्यावर्णीय सूचनाओं के ही अभाव में एक ओर तो तकनीकी प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्ति बेकार बैठे हैं तो दूसरी ओर अनेक प्रतिष्ठानों में उपयुक्त तकनीशियनों की कमी अनुभव की जा रही है। अतः निर्देशन सेवाओं में पर्यावर्णीय सूचना का एक महत्वपूर्ण स्थान है। इस सेवा के अन्तर्गत व्यक्ति के जीवन के विविध क्षेत्रों से सम्बन्धित विभिन्न सूचनाओं का संकलन वर्गीकरण विश्लेषण विसीनीकरण निर्वचन एवं उपयोग विधिवत रूप से किया जाता है। इन सूचनाओं में उन सब सूचनाओं का समावेश किया जाता है जिनकी आवश्यकता व्यक्ति को जीवन के अनेक महत्वपूर्ण निर्णय बुद्धिमत्तापूर्ण लेने हेतु पड़ सकती है। जैसा कि अध्याय ४ में कहा गया है इस सेवा का कार्य विस्तार भी निर्देशन के आधुनिक व्यापक सम्प्रत्यय के अनुरूप केवल शैक्षिक व्यावसायिक सूचनाओं के संकलन तक सीमित नहीं है। फिर भी व्यावहारिक रूप

में अधिकतम शालाओं में छात्रों की तात्कालिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए शैक्षिक व्यावसायिक सूचनाओं के सकलन एवं सचरण पर ही अधिक बल दिया जाता है। पर्यावर्णीय सूचनाओं की सकलन विधियों एवं स्रोतों आदि सम्बन्धित चर्चा से पूर्व इन सूचनाओं को अत्यधिक उपयोगी बनाने हेतु कुछ आधारभूत सिद्धान्तों की चर्चा करना कदाचित उपादेय सिद्ध हो सकता है। चूंकि इन सिद्धान्तों में से कुछ की चर्चा *अध्याय ४ में पर्यावर्णीय सूचना सेवा के अन्तर्गत की गई है अत यहां इन सिद्धान्तों की संक्षिप्त चर्चा ही की जावेगी।*

पर्यावर्णीय सूचनाओं के सकलन के सिद्धान्त

(१) सूचनाओं का सकलन छात्रों की आवश्यकताओं के आधार पर हो

शाला में उपलब्ध आर्थिक एवं मानवीय साधनों का अधिक से अधिक उपयोग करने हेतु यह अत्यन्त आवश्यक है कि सूचनाएं एकत्रित करने से पूर्व हम इस बात का पता लगा लें कि हमारी शाला के लिए किन सूचनाओं की सर्वाधिक आवश्यकता है। इस बात का बोध छात्रों की आवश्यकताओं के सर्वेक्षण से लग सकता है। बिना इस सर्वेक्षण के सूचनाओं का सकलन करने से हो सकता है कि छात्रों के लिए अत्यन्त आवश्यक सूचनाओं का सकलन होने के स्थान पर बहुत सी अनावश्यक सूचनाओं का सकलन हो जाय। एक छोटा सा उदाहरण लेकर इस बिन्दु को स्पष्ट किया जा सकता है। ऐसे विद्यालय में जहां केवल वाणिज्य सकाय ही है यदि हम इन्जीनियरिंग एवं चिकित्सा शास्त्र के महाविद्यालयों सम्बन्धी सूचनाएं एकत्रित कर लें तो इन सूचनाओं का कोई लाभ नहीं होगा। दूसरा सिद्धान्त यह भी है कि उपलब्ध धनराशि में कौनसी सूचनाओं के सकलन को प्राथमिकता दी जाय यह भी सोच विचार कर निर्धारित करना चाहिए। ऐसी सूचनाओं को प्राथमिकता मिलनी चाहिए जोकि अधिक से अधिक छात्रों के लिए उपयोगी हो।

(२) अद्यतनता

सूचनाओं के सकलन के समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि सूचनाएं अद्यतन हैं कि नहीं। सूचनाओं की उपयोगिता ही इस बात पर निर्भर करती है। चार वर्ष पूर्व किसी महाविद्यालय में जो विषय हो शायद उनमें आज परिवर्तन हो गया हो इसी प्रकार कुछ समय पूर्व किसी व्यवसाय में प्रवेश हेतु जो आवश्यक योग्यताएं निर्धारित हों उनमें परिवर्तन हो गया हो। अत पुरानी सूचनाओं के आधार पर कोई विश्वासपूर्ण निर्णय नहीं लिया जा सकता। सूचनाओं को अद्यतन बनाए रखने के लिए केवल सकलन के समय ही ध्यान देना पर्याप्त नहीं है समय समय पर सकलित सूचनाओं की भी छानबीन करके हमें आश्वस्त हो जाना चाहिए कि सूचनाएं अद्यतन हैं या नहीं। पुरानी एवं अनुपयुक्त सूचनाओं को हटा देना चाहिए जिससे उपयोगी सूचनाओं का स्थान उनमें गौण न रह जाय।

( ) परिशुद्धता

सूचनाए यदि परिशुद्ध नही होगी तो एसी सूचनाओं के आधार पर व्यक्ति के अपनिर्देशित हो जाने की सम्भावना हो सकती है। इस सम्बन्ध म अध्याय ४ म विषद चर्चा की गई है अत उसे पुन दोहराना आवश्यक नही।

(४) व्यापकता

छात्रो के लिए जितनी अधिक से अधिक शक्षिक एव व्यावसायिक अवसरो की सूचनाए छात्रो के सम्मुख होगी छात्र उतने ही युक्तियुक्त ढग से अपनी भविष्य योजनाओं सम्बन्धित निर्णय लेने म स म हो सकेगे। अत छात्रो की आवश्यकताओं को ध्यान म रखते हुए सूचनाओ को हम जितना अधिक से अधिक सम्पन्न बना सकें बनाने का प्रयास करना चाहिए।

(५) पूर्णता

सूचनाए सकलन करते समय हम सूचनाओ की पूर्णता की ओर ध्यान देना चाहिए। अपूर्ण एव अपर्याप्त सूचनाओ के आधार पर कोई सार्थक निर्देशन काय नहीं किया जा सकता। किसी व्यवसाय म प्रवेश हेतु क्या पूर्वापेक्षाए हैं ? प्रवेश की रीति क्या है ? साक्षात्कार लिखित परीक्षा अथवा किस प्रकार प्रवेश प्राप्त किया जा सकता है ? व्यवसाय म प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है या नहीं ? वेतन तथा अन्य सुविधाए क्या हैं ? आदि अनेक ऐसी बातें हैं जिनका कि पूर्ण ज्ञान न हो तो कोई युक्तियुक्त निर्णय नहीं लिया जा सकता।

(६) सूचनाओ की उपयोगिता

सूचनाओ की उपयोगिता से हमारा तात्पर्य यह है कि छात्र सूचनाओ का उपयोग कर सकते हैं या नही। सूचनाए यदि अग्रेजी मे हो और छात्र उन्हे पढ न सके तो एसी सूचनाओ का छात्र प्रत्यक्ष उपयोग नही कर सकते। हम यह देखना चाहिए कि सूचनाओ का प्रस्तुतिकरण छात्रो के स्तरानुकूल है या नहीं। अन्यथा सूचनाओ का उपयोग होने के स्थान पर वे पुस्तकालय की ही शोभा बढाती रहेगी।

पर्यावरणीय सूचनाओ के क्षेत्र

व्यक्ति जब जीवन म कोई नया कदम उठाता है तो उसे कुछ सूचनाओ की आवश्यकता होती है। चाहे वह नया कदम किसी व्यवसाय के चयन का हो नए शिक्षण कायक्रम के चयन का हो विदेश यात्रा का हो मकान बनाने का हो अथवा विवाह हेतु जीवनसाथी चयन का हो। प्रत्येक महत्वपूर्ण निर्णय को ठीक ढग से लेने के लिए नई परिस्थिति से सम्बन्धित सम्पूर्ण सूचनाओ का होना आवश्यक है। अब हम देखें कि सामान्यतया शाला म पढने वाले छात्रो को किस किस प्रकार की सूचनाओ की आवश्यकता होती है।

(१) शिक्षा सम्बन्धी सूचनाए

जसे ही बालक किसी नयी शाला म प्रवेश पाता है तो उस शाला से सम्ब

धित अनेक प्रकार की सूचनाओं की आवश्यकता की अनुभूति होती है। प्रायः बार हम यह मानकर चलते हैं कि छात्र इन सब सूचनाओं से अवगत हैं किन्तु वस्तु स्थिति यह नहीं होती। इन सूचनाओं के अभाव में बालक को समायोजन की कठिनाइयां अनुभव करनी पड़ती हैं। शाला सत्र के प्रारम्भिक काल में शाला जीवन सम्बन्धी सूचनाएं यदि छात्रों को दे दी जाएं तो उन्हें अनावश्यक कठिनाई अनुभव नहीं करनी पड़ेगी। सामान्यतया शाला सम्बन्धी सूचनाओं में निम्न सूचनाएं प्रमुख हैं।

(क) शाला भवन—नए बालकों को शाला भवन की जानकारी करवाना आवश्यक होता है। शाला में वाचनालय प्रयोगशालाएं कार्यालय प्रधानाध्यापक का कक्ष अध्यापक कक्ष आदि प्रमुख स्थान कहां कहां पर स्थित हैं खेल के मैदान कहां हैं आदि सब भौतिक साधन सुविधाओं सम्बन्धी सूचनाएं छात्रों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं।

(ख) शाला नियम एवं परम्पराएं —प्रत्येक शाला की कुछ विशेषताएं एवं परम्पराएं होती हैं। छात्रों को इन विशेषताओं नियम परम्पराओं एवं अपेक्षाओं से शीघ्रातिशीघ्र अवगत करा देना चाहिये ताकि नये छात्र शाला की मूल धारा के साथ तुरन्त समरस हो जाएं।

(ग) शाला में उपलब्ध विषय —आठवीं कक्षा के पश्चात छात्रों को वैकल्पिक विषयों का चयन करना पड़ता है। अतः इस कक्षा के बालकों को यह ज्ञान हो जाना आवश्यक है कि शाला में किन किन विषयों अथवा विषयों के समूहों का प्रावधान है।

(घ) शाला में उपलब्ध सुविधाएं एवं सेवाएं —शाला के बालकों को शाला की समस्त सेवाओं एवं सुविधाओं का ज्ञान होना चाहिए। जैसे निर्देशन सेवाएं प्रतिभावान बालकों के विशेष शिक्षण की सुविधा कमजोर बालकों की शिक्षा की व्यवस्था गरीब छात्रों के लिए छात्रवृत्तियों की व्यवस्था आदि ऐसी सेवाएं एवं सुविधाएं हैं जिनका पता बालकों को ठीक समय पर लगने से वे इनका पूरा लाभ उठा सकते हैं।

(ङ) पुस्तकालय—छात्रों को पुस्तकालय में उपलब्ध सुविधाओं पुस्तकालय के नियमों पुस्तकों को प्राप्त करने की विधियों आदि की जानकारी दे देने से वे इस सुविधा का पूरा पूरा लाभ उठा सकते हैं।

(च) पाठ्यसहगामी क्रियाएं—शाला में कौन-कौन सी पाठ्यसहगामी क्रियाओं का प्रावधान है कौन कौन से खेलों एवं व्यायामों के प्रशिक्षण की सुविधा है इनका आयोजन एवं संचालन किस प्रकार होता है आदि सब बातों से छात्रों को अवगत कराना चाहिए।

(२) विषयों के चयन सम्बन्धी सूचनाएं

आठवीं कक्षा के छात्रों को अपनी शाला में कौन-कौन से विषय नवमी कक्षा में चुने जा सकते हैं इसकी तो सूचना मिलनी ही चाहिए किन्तु इसके अतिरिक्त इन विषयों के चयन से कौन-कौन से उच्च शिक्षण क्षेत्रों में अथवा व्यवसायों में प्रवेश प्राप्त करने में सुविधा रहती है इन विषयों के अध्ययन हेतु क्या विशेष योग्यताएं होनी चाहिए आदि बिन्दुओं से सम्बन्धित छात्रों का अनुस्थापन यदि किया जाए तो विषयों के सुनियुक्त चयन में उन्हें सहायता मिल सकती है।

(३) उच्च शिक्षण सम्बन्धी सुविधाएं

कक्षा दस एवं ग्यारह के विद्यार्थियों के मन में यह प्रश्न बना रहता है कि अब आगे उच्च कक्षा शिक्षण क्या है तथा उच्च शिक्षण हेतु अपने राज्य, देश अथवा विदेशों में क्या सुविधाएं प्राप्त हैं। अतः इन छात्रों की सहायता हेतु महाविद्यालयों तथा अन्य उच्च शिक्षण संस्थाओं सम्बन्धी सूचनाएं एकत्रित करना उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

(४) व्यवसायों सम्बन्धी सूचनाएं

उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं तक अध्ययन कर लेने के पश्चात अनेक छात्र जीविकोपार्जन की सम्भावनाएं खोजने लगते हैं। उनकी सहायता हेतु उनके उपयुक्त व्यवसायों की सूचनाएं एकत्रित की जा सकती हैं। अन्य व्यवसायों सम्बन्धी सूचनाएं भी विषयों के चयन निर्धारण में सहायक हो सकता है।

(५) आर्थिक सहायता सम्बन्धी सूचनाएं

देश में अनेक ऐसी योजनाएं हैं जिनमें निर्धन किन्तु प्रतिभाशाली छात्रों की आर्थिक सहायता का प्रावधान है। इन योजनाओं का लाभ किन छात्रों को कैसे मिल सकता है यह सूचनाएं यदि हम छात्रों को दे सकें तो यह एक बड़ी महत्त्वपूर्ण सेवा होगी। इन सूचनाओं के अभाव में अनेक प्रतिभाशाली छात्रों को अर्थाभाव के कारण अपनी प्रतिभाओं को पूर्णतया विकसित करने का अवसर नहीं प्राप्त होता।

(६) अध्ययन आदतों एवं कुशलताओं सम्बन्धी सूचनाएं

कक्षा में नोट्स कैसे लिए जाएं, पुस्तकालय का सदुपयोग स्वाध्याय के लिए कैसे किया जाय तथा अन्य महत्त्वपूर्ण अध्ययन आदतों सम्बन्धी सूचनाएं छात्रों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं।

पर्यावरणीय सूचनाओं के स्रोत

(१) शिक्षण संस्थाएं

सामान्यतया उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों को आगे उच्च शिक्षण सम्बन्धी सुविधाओं की सूचनाओं की आवश्यकता होती है। उनसे सम्बन्धित उच्च शिक्षण की सुविधाएं किन महाविद्यालयों में प्राप्त हो सकती हैं उनमें प्रवेश प्राप्त

करने हेतु क्या विधि अपनानी पड़ती है ? आदि अनेक सूचनाएं प्राप्त करने के लिए ये छात्र आतुर रहते हैं। अतः विद्यालय में निर्देशन कार्यकर्ता को विभिन्न शिक्षण संस्थाओं के विवरण पत्र (Prospectus) मंगवा लेने चाहिए। जो विषय शाला में हों उनसे सम्बन्धित उच्च शिक्षण संस्थाओं के विवरण पत्र अधिक से अधिक मंगवाने चाहिए।

(२) अन्तर्राष्ट्रीय अभिकरण

उच्च शिक्षा की विदेशों में क्या सम्भावनाएं हो सकती हैं तथा विदेशों में उच्च शिक्षा प्राप्त करने हेतु कौन कौन सी सुविधाएं प्राप्त हो सकती हैं इस सम्बन्ध में हम विदेशी दूतावासों से सम्पर्क स्थापित कर सूचनाएं प्राप्त कर सकते हैं। यू एस इ एफ आई (U S E F I) तथा ब्रिटिश कौंसिल से भी अमरीका तथा इंगलैण्ड में कौन कौन से शैक्षिक अवसर छात्रों को प्राप्त हो सकते हैं इस सम्बन्ध में सूचनाएं मिल सकती हैं।

(३) राष्ट्रीय स्तर के अभिकरण

(क) शैक्षिक सूचनाएं — सूचनाओं के दूसरे प्रमुख स्रोत हो सकते हैं राष्ट्रीय स्तर के अभिकरण। उदाहरणार्थ शिक्षा मन्त्रालय से हम राष्ट्रीय स्तर पर जो छात्रवृत्तियां की योजनाएं हैं उनके सम्बन्ध में सूचनाएं प्राप्त कर सकते हैं जैसे शिक्षा मन्त्रालय द्वारा परीक्षा के आधार पर कुछ छात्रों का चयन किया जाता है व उन्हें सरकार के व्यय पर पब्लिक स्कूलों में पढ़ने की सुविधा दी जाती है। इसी प्रकार पिछड़ी जाति के छात्रों को उच्च शिक्षण देने हेतु समाज कल्याण विभाग की भी कुछ योजनाएं हैं इनसे सम्बन्धित सूचनाएं समाज कल्याण विभाग से प्राप्त की जा सकती हैं। इसी प्रकार राष्ट्रीय विज्ञान परिषद शिक्षा मन्त्रालय से हम साइंस टैलेन्ट सर्च (Science Talent Search) सम्बन्धी सूचनाएं प्राप्त कर सकते हैं। शिक्षा मन्त्रालय ने राष्ट्रीय स्तर पर एक सूची तैयार की है जिससे कहां कहां किस प्रकार की उच्च शिक्षण की व्यवस्था है उसकी सूचना प्राप्त हो सकती है।

(ख) व्यावसायिक सूचनाएं — व्यावसायिक सूचनाओं के लिए भी राष्ट्रीय स्तर के कुछ अभिकरण उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। केन्द्रीय श्रम पुनर्वास एवं नियोजन मन्त्रालय ने हमारे देश में जो विभिन्न व्यवसाय उपलब्ध हैं उनमें से कुछ व्यवसायों से सम्बन्धित सूचनाएं व्यवसाय पुस्तिकाओं (Career Pamphlets) के रूप में प्रकाशित की हैं। प्रत्येक पुस्तिका में एक व्यवसाय से सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण सूचनाओं का समावेश होता है। इन पुस्तिकाओं को मामूली दरों पर श्रम मन्त्रालय से अथवा स्थानीय नियोजन कार्यालय (Employment exchange) से प्राप्त किया जा सकता है। श्रम पुनर्वास एवं नियोजन मन्त्रालय से प्रत्येक राज्य में तकनीकी प्रशिक्षण की क्या सुविधाएं हैं इस सम्बन्ध में सूचनाएं प्राप्त की जा सकती हैं। प्रत्येक राज्य के लिये एक पुस्तिका हैण्ड बुक आफ ट्रेनिंग फसिलिटीज (Handbook of Training facilities) तैयार की गई है जिसमें उपरोक्त सूचनाएं प्राप्त हो सकती हैं। इसी प्रकार

एन सी ई आर टी (NCI RT) के डिपार्टमेन्ट आफ एजूकेशन साइकोलॉजी एण्ड फाउन्डेशन आफ एजूकेशन गाइडेंस के विभाग से हम कुछ अन्य श्रव्य सामग्री प्राप्त हो सकती है जिससे हम व्यावसायिक सूचनाएं छात्रों तक पहुँचा सकते हैं। इसी संस्थान के डिपार्टमेन्ट आफ टीचिंग एड्स (D partment of Teachin, aids) से हम व्यवसायों सम्बन्धी फिल्म मँगवा सकते हैं।

(४) राज्य स्तरीय अभिकरण

प्रत्येक राज्य के प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा निदेशालय से उस राज्य के गाइडेन्स ब्यूरो का पता मालूम किया जा सकता है तथा वहाँ से भी हम व्यावसायिक सूचनाएं प्राप्त की जा सकती हैं। राजस्थान का निर्देशन ब्यूरो बीकानेर में स्थित है। राजस्थान के निर्देशन कार्यकर्ता इस ब्यूरो से सम्पर्क स्थापित कर सूचनाएं प्राप्त कर सकते हैं। राज्य शिक्षा मन्त्रालयों से तथा समाज कल्याण मन्त्रालयों से छात्रों की शिक्षा हेतु आर्थिक योजनाओं की सूचनाएं प्राप्त की जा सकती हैं।

राज्य में स्थित सैनिक स्कूलों के प्राचार्यों से सम्पर्क स्थापित कर सैनिक स्कूलों के सम्बन्ध में सूचनाएं प्राप्त की जा सकती हैं। इनमें प्रवेश प्राप्त करने हेतु एवं छात्रवृत्तियाँ प्राप्त करने हेतु क्या करना होता है इसकी सूचनाएं पाँचवी कक्षा के छात्रों के लिए अत्यन्त उपयोगी हो सकती हैं।

राज्य विज्ञान शिक्षण संस्थान राष्ट्रीय स्तर पर जो साइन्स टेलेन्ट सर्च परीक्षा लेती है उसमें जो विद्यार्थी भाग लेना चाहता है उसकी सहायता उचित मार्ग दर्शन द्वारा करता है। इस सम्बन्ध में निदेशक राज्य विज्ञान शिक्षण संस्थान से पत्र व्यवहार किया जा सकता है।

(५) औद्योगिक प्रतिष्ठान एवं व्यापारिक संस्थाएं

विभिन्न औद्योगिक संस्थानों से हम हायर सैकण्डरी अथवा सैकण्ड्री पास छात्रों के लिए कौन कौनसी नौकरियाँ हो सकती हैं इस सम्बन्ध में सूचनाएं प्राप्त कर सकते हैं। प्रत्येक औद्योगिक प्रतिष्ठान में एक कार्मिक अधिकारी (Personnel officer) होता है उससे यह सूचनाएं प्राप्त हो सकती हैं। इसी प्रकार बैंक आदि व्यापारिक संस्थाओं से भी नियोजन सम्भावनाओं की सूचनाएं प्राप्त की जा सकती हैं। अनेक औद्योगिक प्रतिष्ठान अथवा व्यापारिक संस्थाएं तो उचित प्रत्याशियों का चयन कर उन्हें प्रशिक्षण भी देते हैं और फिर उन्हें उचित स्थान दिया जाता है। इस प्रकार के प्रशिक्षण सुविधाओं का पता भी इन अभिकरणों से लग सकता है।

(६) स्थानीय अभिकरण

एक सजग निर्देशन कार्यकर्त्ता को स्थानीय पर्यावरण से सम्बन्धित सूचनाएँ एकत्रित करने की सब सम्भावनाओं की खोज करनी चाहिए। अनेक बार हमारे आस पास जो शैक्षिक एवं व्यावसायिक सुविधाएं होती हैं उनकी भी पूरी सूचनाएँ हमारे पास नहीं होती। उदाहरण के तौर पर उदयपुर में जिंक स्मेल्टर सीमेन्ट

फैक्टरी डिस्टलरी आयुर्वेद सेवाश्रम रेलवे जोनल ट्रेनिंग स्कूल फिशरीज रिसर्च ट्रेनिंग सेन्टर इन्स्टियन ट्रेनिंग स्कूल एग्रीकल्चर कालेज मेडिकल कालेज कालेज ग्राफ एग्रीकल्चरल इन्जीनियरिंग एण्ड टेक्नोलाजी एस टी सी स्कूल आदि ऐसे अनेक सूचनाओं के स्रोत हैं जिनसे प्राप्त सूचनाएं छात्रों के लिए उपयोगी हो सकती हैं। उपरोक्त वर्णित स्थानीय औद्योगिक प्रतिष्ठानों में क्या व्यावसायिक सम्भावनाएं हैं इसकी भी जानकारी अनेक बार हमारे छात्रों को नहीं होती। इसी प्रकार स्थानीय शैक्षणिक संस्थाओं के सम्बन्ध में सूचनाएं भी छात्रों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं। अनेक बार हम यह मानकर चलते हैं कि स्थानीय शैक्षिक एवं व्यावसायिक सूचनाओं से तो छात्र परिचित है ही किन्तु आवश्यक नहीं कि हमारी यह धारणा ठीक हो। अतः इन स्थानीय बातों के प्रति हम उदासीन नहीं होना चाहिए।

जिला स्तरीय स्थानों पर नियोजन कार्यालयों (*Employment exchanges*) से यदि सम्पर्क रखा जाए तो छात्रों को रोजगार सम्बन्धी महत्वपूर्ण सूचनाएं समय समय पर उपलब्ध की जा सकती हैं।

पर्यावरणीय सूचनाओं के संकलन की विधियां

(1) व्यावसायिक सर्वेक्षण

स्थानीय पर्यावरण से पूर्णतया परिचित हो जाना एक निर्देशन कार्यकर्त्ता के लिए अत्यन्त आवश्यक है। स्थानीय व्यावसायिक जगत में जो रोजगार सम्बन्धी सम्भावनाएं हों उनकी निर्देशन कार्यकर्त्ता को यदि पूरी सूचनाएं हों तो वह अपने छात्रों का व्यावसायिक निर्देशन अधिक कुशलता से कर सकता है। स्थानीय व्यावसायिक पर्यावरण सम्बन्धी सूचनाएं प्राप्त करने की एक महत्वपूर्ण विधि हो सकती है व्यावसायिक सर्वेक्षण। व्यावसायिक सर्वेक्षणों से हम अनेकों महत्वपूर्ण तथ्यों का पता लग सकता है। व्यावसायिक सर्वेक्षणों से जिन महत्वपूर्ण तथ्यों की सूचनाएं मिल सकती हैं वह निम्नलिखित है—

(क) व्यावसायिक सर्वेक्षणों से प्राप्त महत्वपूर्ण सूचनाएं

(अ) व्यावसायिक झुकाव प्रवृत्ति — व्यावसायिक सर्वेक्षणों से हमें किसी भी समय की व्यावसायिक झुकाव प्रवृत्तियां क्या हैं इसका पता लग सकता है। अर्थात् किन व्यवसायों की अधिक मांग है अथवा किन व्यवसायों में रोजगार सम्भावनाओं का बाहुल्य है किन व्यवसायों में संतृप्तता आ गई है और रोजगार सम्भावनाएं बहुत कम हैं आदि तथ्य निर्देशन कार्यकर्त्ता के सामने आ सकते हैं जो कि व्यावसायिक निर्देशन के लिए और कुछ सीमा तक शैक्षिक निर्देशन के लिए भी उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

(आ) नए व्यवसायों से परिचय — व्यावसायिक सर्वेक्षणों के फलस्वरूप स्थानीय पर्यावरण की अनेक नई व्यावसायिक सम्भावनाएं एवं निर्देशन कार्यकर्त्ता के सम्मुख आ सकती हैं। अनेक बार स्थानीय व्यावसायिक सम्भावनाओं से हम पूर्ण

रूपण परिचित नहीं होते अत हमारे छात्रों को इनका पूरा-पूरा लाभ नहीं मिल पाता। उपरोक्त अनुच्छेदों में एक शहर का उदाहरण लेकर यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है कि स्थानीय पर्यावरण में ही कितनी अधिक व्यावसायिक सम्भावनाएं हो सकती है।

(इ) व्यवसायों के सम्बन्ध में विस्तृत परिचय — स्थानीय व्यवसायों के सम्बन्ध में व्यावसायिक सर्वेक्षणों के माध्यम से हम विस्तृत परिचय प्राप्त कर सकते हैं। व्यवसाय में प्रवेश हेतु अनिवार्य योग्यताएं व्यवसाय में उपलब्ध वेतन व्यवसाय में उन्नति की सम्भावनाएं व्यवसाय में कार्य की प्रकृति आदि महत्वपूर्ण व्यावसायिक पक्षों से सम्बन्धित विस्तृत सूचनाएं हम व्यावसायिक सर्वेक्षण में प्राप्त कर सकते हैं।

(ख) व्यावसायिक सर्वेक्षणों में छात्रों को संयुक्त करना — व्यावसायिक सर्वेक्षण व्यावसायिक सूचनाएं एकत्रित करने की विधि ही नहीं अपितु व्यावसायिक शिक्षा की भी एक प्रमुख विधि हो सकती है। अत इन सर्वेक्षणों में यथासम्भव छात्रों को संयुक्त करना अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकता है। सामाजिक ज्ञान अथवा अर्थशास्त्र के शिक्षक यदि छात्रों से व्यावसायिक सर्वेक्षण करवाएं तो उन्हें अनेक व्यवसायों से सम्बन्धित महत्वपूर्ण सूचनाएं प्राप्त हो सकती हैं। छात्रों को इस प्रकार से व्यावसायिक जगत के सम्पर्क में लाने से उनकी अच्छी व्यावसायिक शिक्षा हो सकती है।

(ग) व्यावसायिक सर्वेक्षण के संचालन से सम्बन्धित कुछ सिद्धान्त

(अ) योजना — व्यावसायिक सर्वेक्षण को सफल बनाने हेतु एवं इसके माध्यम से योजनाबद्ध रीति से सूचनाएं एकत्रित करने हेतु यह आवश्यक है कि स्थानीय व्यावसायिक जगत का सर्वेक्षण करने की एक सुसंगठित एवं समन्वयित योजना बनाई जाय अन्यथा एक ही प्रकार की सूचनाएं कई सर्वेक्षणों में एकत्रित हो जाने की और कुछ महत्वपूर्ण पक्षों के छूट जाने की आशंका हो सकती है।

योजना बनाते समय इन सब शिक्षकों को साथ लेना उपादेय होगा जो व्यावसायिक सर्वेक्षण के संचालन में भाग ले रहे हैं। कौन कौन से शिक्षक सर्वेक्षण का संचालन करेंगे सर्वेक्षण की विधि क्या होगी सर्वेक्षण से किस प्रकार की सूचनाएं एकत्रित करने का प्रयास किया जाएगा आदि प्रमुख बिन्दु इस समिति में स्पष्ट हो जाने चाहिए।

(आ) व्यापारिक एवं औद्योगिक संस्थानों से सम्पर्क — सफल व्यावसायिक सर्वेक्षण के लिए सर्वेक्षण विषय अर्थात् व्यापारिक एवं औद्योगिक संस्थानों का सहयोग अत्यन्त आवश्यक है अत सर्वेक्षण कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व इन संस्थानों के प्रमुख अधिकारियों से सम्पर्क स्थापित कर सर्वेक्षण के लिए उनकी अनुमति ले लेना अत्यन्त आवश्यक है। अनुमति लेते समय सर्वेक्षण की उपादेयता से उन्हें अवगत करा देना चाहिए।

(इ) आवश्यक सर्वेक्षण साधनों का निर्माण — सर्वेक्षण में प्रयुक्त प्रश्नावलियां साक्षात्कार सूचियां अथवा अन्य सूचियों का निर्माण यथार्थ सर्वेक्षण प्रारम्भ में करने से पूर्व हो जानी चाहिए। साथ ही यह भी निश्चित हो जाना चाहिए कि कौन सी सूचनाएं साक्षात्कार से प्राप्त होंगी कौनसी प्रश्नावलियों से प्राप्त हो सकती हैं तथा किन व्यक्तियों से साक्षात्कार करना होगा।

(ई) संकलित सूचनाओं का समेकित प्रतिवेदन — संकलित सूचनाओं को जबतक समन्वित रूप में प्रस्तुत नहीं किया जाता तबतक उनकी उपयोगिता सीमित ही रहती है। अतः व्यावसायिक सर्वेक्षणों से प्राप्त तथ्य को निम्न बिन्दुओं के आधार पर समन्वित करना चाहिए।

— व्यवसाय जो शाला के छात्रों के लिए उपयोगी हैं।

—व्यवसाय जिनमें रोजगार की सम्भावनाएं सर्वाधिक हैं।

—व्यवसाय जिनमें रोजगार की दृष्टि से संतृप्तता आ गई है।

—व्यवसाय जिनमें प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं है।

—व्यवसाय जिनमें प्रशिक्षण की आवश्यकता है।

—प्रत्येक व्यवसाय से सम्बन्धित निम्न सूचनाएं एकत्रित करनी चाहिए—

व्यावसाय व्यवसाय में प्रवेश हेतु शैक्षिक योग्यता एवं प्रशिक्षण वेतन व्यवसाय में प्रतिवर्ष होने वाले रिक्त स्थान व्यवसाय में प्रगति की सम्भावनाएं व्यवसाय की कार्य अवस्थाएं व्यवसाय में प्राप्त सुविधाएं व्यावसायिक खतरे (Occu pational H1 ard)

पर्यावर्णीय सूचनाओं का मिसीलीकरण एवं संग्रह

(१) सिद्धान्त —

पर्यावर्णीय सूचनाओं का संग्रह मात्र कर लेना पर्याप्त नहीं। जबतक उनका ठीक ढंग से मिसीलीकरण एवं संग्रह न किया जायगा वे अधिक उपयोगी सिद्ध न होंगी। संग्रह एवं मिसीलीकरण के दो प्रमुख सिद्धान्त हैं एक तो सूचनाओं की सुरक्षा एवं दूसरा उपयोग में सुविधा। अर्थात् पर्यावर्णीय सूचनाएं प्राप्त होते ही उनको इस प्रकार रखना चाहिए कि उनके खोने अथवा खराब होने की सम्भावना न हो। बार-बार उपयोग में आने वाली सूचनाओं की सुरक्षा पर तो विशेष ध्यान रखना होगा। ऐसी सूचनाएं जो बालकों द्वारा काम में ली जाती हैं उन्हें समय-समय पर जांच कर यह देखते रहना चाहिए कि वे उपयुक्त स्थिति में सुरक्षित हैं। सूचनाओं के संग्रह से हमारा अर्थ उन्हें किसी पेटी या आलमारी में बन्द करने से नहीं है। सूचनाओं का किसी योजना के आधार पर सूचीकरण करना चाहिए ताकि आवश्यक सूचनाएं कम से कम समय में उपलब्ध हो सकें। सूचनाओं का संग्रह भी ऐसे स्थान पर एवं इस ढंग से होना चाहिए कि उन्हें प्राप्त करने में कठिनाई न हो। सूचनाओं को जबतक छात्रों के सम्मुख प्रदर्शित नहीं किया जायगा वे इसका पूरा-पूरा लाभ नहीं उठा सकेंगे।

अत सचनाओ को किसी ऐसे स्थान पर एवं इस ढग से रखना चाहिए जहाँ उन पर छात्रो की दृष्टि पड़ने की अधिक से अधिक सम्भावना हो।

(2) कार्मिक

सचनाओ के संग्रह एवं मिसीलीकरण में यदि पुस्तकाध्यक्ष का सहयोग प्राप्त किया जा सके तो यह कार्य अधिक व्यवस्थित एवं प्रभावोत्पादक ढग से किया जा सकता है। अच्छा तो यह होगा कि यह कार्य पुस्तकाध्यक्ष को ही सौंपा जाए। इसके दो कारण हैं प्रथम तो पुस्तकाध्यक्ष को पुस्तको एवं अन्य दस्तावेजो के संग्रह मिसीलीकरण एवं सचीकरण का विशेष प्रशिक्षण प्राप्त होता है अत वह इस कार्य को अधिक अच्छे ढग से सचालित कर सकता है। दसरा कारण यह है कि हमारे देश में सामान्य शालाओ में पूर्णकालिक निर्देशन कार्यकर्ता नियुक्त नहीं किए जाते अत जब तक शाला के अन्य कार्यकर्त्ता निर्देशन कार्य के उत्तरदायित्वो में हाथ न बटावेंगे इस कार्य का सफल सचालन असम्भव होगा। इस कार्य को यदि पुस्तकाध्यक्ष ने ले तो वह इस अधिक प्रभावोत्पादक ढग से कर सकेगा। साथ ही निर्देशन कार्यकर्ता अपनी शक्ति एवं समय अन्य महत्वपूर्ण निर्देशन क्रियाकलापो में लगा सकेगा।

(3) स्थान

जब कि पर्यावर्णीय सूचनाओ के संग्रह की जिम्मेदारी पुस्तकाध्यक्ष को देना वाछनीय कहा गया है अत इसकी स्वाभाविक अनुमिति यह होगी कि इन सूचनाओ का संग्रह भी पुस्तकालय में ही। इन सूचनाओ को हम पुस्तकालय में ही किसी एक अलग निर्धारित स्थान पर रख सकते हैं और उस स्थान को निर्देशन कोण (Guidance Corner) कह सकते हैं। पुस्तकालय में सामान्यत छात्रो का आवागमन अधिक रहता है अत इस सामग्री के छात्रो के सम्मुख अभिदर्शन की अधिक सम्भावना हो सकती है।

पर्यावर्णीय सूचनाओं का सचरण

किसी वस्तु का अधिक से अधिक उपयोग लाभ करने हेतु व्यापारी उसका अधिक से अधिक प्रचार करते हैं। अच्छी से अच्छी वस्तु प्रचार के अभाव में लोगो तक नहीं पहुँच पाती है। यह सिद्धान्त पर्यावर्णीय सचनाओ पर भी लागू होता है। जब तक हम इन सचनाओ को छात्र के सम्मुख अभिदर्शित नहीं करेंगे तब तक अधिकाधिक उपयोग के मार्ग नहीं खोजेंगे इन सचनाओ का पूरा-पूरा लाभ छात्रो को नहीं पहुँचेगा। अत निर्देशन कार्यकर्ता को इन सचनाओ के विभिन्न सचरण विधियो से अवगत होना अत्यन्त आवश्यक है।

इन सचरण विधियो एवं अवसरो की चर्चा करने से पूर्व पर्यावर्णीय सूचनाओ के सचरण के कुछ मूलसिद्धान्तो का उल्लेख उपादेय सिद्ध हो सकता है।

(१) सचरण के सिद्धान्त

(क) प्रदर्शन— जितने प्रभावोत्पादक ढग से सूचनाओ का प्रदर्शन किया जायगा उनके उपयोग की उतनी ही अधिक सम्भावना होगी ।

(ख) सूचनाओ को प्राप्त करने की सुलभ व्यवस्था— सूचनाओ को प्राप्त करने की व्यवस्था जितनी सुलभ होगी उतनी ही सूचनाओ के उपयोग की सभावनाए बढ जाएगी । यह एक सामान्य अनुभव की बात है कि जिस पुस्तकालय मे खुली अलमारी व्यवस्था होती है वहा ऐसे पुस्तकालय से अधिक पुस्तके काम मे ली जाती हैं जहाँ पुस्तके ताला मे बन्द रहती है ।

(ग) समस्त अवसरों का उपयोग— निर्देशक यदि यह सोचे कि किसी विशेष समय पर छात्रो को बुलाकर उनको इन सूचनाओ से अवगत किया जायगा तो वह सूचनाओ का पूरा पूरा लाभ छात्रो को नही पहुँचा सकता । उसे तो कक्षा एव कक्षा के बाहर ऐसे सब अवसरो को ढूढना चाहिए जहा पर्यावरणीय सूचनाओ को सचारित किया जा सके और फिर ऐसे प्रत्येक अवसर का उसे लाभ उठाना चाहिए । किसी एक समय पर समस्त सूचनाओं को बालको तक पहुँचाना न तो सम्भव है न ही इस प्रकार से प्रभावोत्पादक ढग से सूचनाए छात्रो तक पहुँचाई जा सकती है ।

(घ) विभिन्न व्यक्तियो का सहयोग आवश्यक — हमने उपरोक्त सिद्धान्त मे कहा है कि सूचनाओ का सचरण हर सभावित परिस्थिति मे किया जाना चाहिए । अत इस बिंदु से एक और सिद्धान्त निकलता है और वह यह कि सूचनाओ के सचरण मे जबतक शिक्षक पुस्तकालयाध्यक्ष आदि विभिन्न व्यक्तियो का पूर्ण सहयोग नही होगा सचरण प्रभावोत्पादक ढग से नही किया जा सकता है । विज्ञान सामाजिक ज्ञान अर्थशास्त्र वाणिज्य एव अन्य विषयो के शिक्षक कक्षाध्यापन के माध्यम से भी इस सूचनाओ के सचरण मे सहयोग प्रदान कर सकते हैं ।

(२) सचरण विधियां

निर्देशन कार्यकर्त्ता को पर्यावर्णीय सूचनाओ को छात्रो तक पहुँचाने के अधिक से अधिक अवसरो का पता लगाना चाहिए । इस कार्य मे उसे अन्य व्यक्तियो के सहयोग की भी आवश्यकता पड सकती है । निम्नलिखित अनुच्छेदो मे पर्यावर्णीय सूचनाओ की विभिन्न सचरण विधियो की चर्चा की जाएगी ।

(क) अनुस्थापन वार्ताएं— अनुस्थापन वार्ताए विभिन्न पर्यावर्णीय सूचनाओ को छात्र तक पहुँचाने की एक उत्तम विधि है । अनुस्थापन का तात्पर्य किसी नई परिस्थिति से व्यक्ति को अवगत कराना अथवा किसी नवीन पर्यावरण मे समञ्जन हेतु उस पर्यावरण से व्यक्ति को अवगत कराना । अत अनुस्थापन वार्ताओ मे हम छात्रो को किसी नए वातावरण पाठ्यक्रम कार्य एव प्रवृत्ति से अवगत कराते हैं ताकि वह उस नई परिस्थिति मे कम से कम कठिनाइया अनुभव करे । अनुस्थापन वार्ताएँ निम्नलिखित प्रमुख उद्देश्यो से आयोजित की जा सकती हैं ।

(अ) शाला के वातावरण से परिचय— शाला में जो छात्र नए प्रवेश लेते हैं उनको शाला के भवन सुविधाओं सेवाओं नियम परम्पराओं आदि से अवगत कराना अत्यन्त आवश्यक है। अन्यथा वे शाला में समन्वयन की कठिनाई अनुभव कर सकते हैं। शाला सम्बन्धी इन सूचनाओं को नए छात्रों तक शीघ्रातिशीघ्र पहुँचना चाहिए। इस कार्य के लिए सत्रारम्भ में कुछ अनुस्थापन वार्ताओं का आयोजन उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

(आ) अध्ययन आदतों एवं कुशलताओं का ज्ञान— जब छात्र एक स्तर से दूसरे स्तर पर जाता है तो उसे कुछ नई अध्ययन आदतें विकसित करना होती हैं। प्राथमिक स्तर पर शायद नोटस लेना अथवा पुस्तकालय के उपयोग सम्बन्धी अध्ययन आदतें विकसित न की होती किन्तु माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्रों में यह आदत विकसित होना आवश्यक है। इसी प्रकार जब छात्र नए विषय लेता है तो उन विषयों से सम्बन्धित कुछ विशेष अध्ययन आदतों एवं कुशलताओं की आवश्यकता हो सकती है। अतः इन नई अध्ययन आदतों एवं कुशलताओं से छात्रों को अवगत कराने के लिए भी अनुस्थापन वार्ताएं आयोजित की जा सकती हैं। इन वार्ताओं में विषय अध्यापकों पुस्तकाध्यक्ष आदि का सहयोग प्राप्त किया जा सकता है।

(इ) नवीन विषयों का परिचय — कक्षा आठ के छात्रों के सम्मुख सबसे महत्वपूर्ण समस्या होती है अगली कक्षा में विषयों के चयन की। इन विषयों के चयन को अधिक से अधिक सफल बनाने हेतु यह आवश्यक है कि चयन से पूर्व छात्रों को नवीन विषयों से परिचित करवाया जाए। विषयों के सम्बन्ध में आवश्यक ज्ञान के अभाव में लिए गए निर्णय निराशा को जन्म दे सकते हैं। अतः आठवीं कक्षा के छात्रों के लिए नवीं कक्षा में उपलब्ध विभिन्न वैकल्पिक विषयों से सम्बन्धित अनुस्थापन वार्ताओं का आयोजन किया जाना चाहिए। इसमें भी विषय विशेषज्ञों का सहयोग प्राप्त किया जा सकता है।

(ई) व्यावसायिक अनुस्थापन—विषयों के उचित चयन के लिए एवं व्यवसाय में प्रवेश हेतु दोनों कार्यों के लिए व्यावसायिक अनुस्थापन आवश्यक है क्योंकि विषयों का चयन भी अन्ततोगत्वा किसी न किसी व्यवसाय में प्रवेश हेतु ही किया जाता है। यदि छात्रों को यह ज्ञात न हो कि अमुक विषयों के चयन से किस प्रकार के व्यवसायों में प्रवेश प्राप्त किया जा सकता है तो आगे चल कर उन्हें निराशा का मुख देखना पड़ सकता है। अतः आठवीं कक्षाओं के छात्रों के लिए पाठ्यक्रम अनुस्थापन के साथ साथ व्यावसायिक अनुस्थापन भी आवश्यक है। साथ ही दसवीं एवं ग्यारहवीं कक्षा के छात्रों के लिए भी इस अनुस्थापन की अत्यन्त आवश्यकता है इस स्तर पर अनेक छात्र ऐसे होंगे जो कि आगे अध्ययन चालू न रख कर जीविकोपार्जन का साधन ढूंढना चाहेंगे। इन छात्रों के लिए उचित व्यावसायिक अनुस्थापन अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकता है। व्यावसायिक अनुस्थापन वार्ताओं के लिए

व्यवसाय म काय करन वाले किसी व्यक्ति को बुलाया जा सकता है। ताकि वह व्यवसाय के सभी महत्वपूर्ण पक्षों से सम्बन्धित विश्वसनीय सूचनाएं दे सकता है। अनुच्छेद (द) एव (ई) म वर्णित अनुस्थापन वार्ताएं छात्रा के लिए तो महत्वपूर्ण ह ही साथ ही अभिभावकों क लिए भी इनका बहुत महत्त्व है। क्योंकि विषयों एव व्यवसायों के चयन मे अभिभावक भी महत्वपूर्ण स्थान रखत हैं। अभिभावकों की अनभिज्ञता से भी अनेक बार छात्रों को अनुपयुक्त विषय दिलवा दिए जाते हैं जिससे आगे चलकर उन्हें निराशा का सामना करना पड़ता है। अत अभिभावकों का भी इन दो प्रकार की अनुस्थापन वार्ताओं म आमन्त्रित किया जा सकता है।

(ख) व्यावसायिक सूचना सम्मेलन—व्यावसायिक सूचना सम्मेलन का आयोजन छात्रों को उनकी रुचि के व्यवसायों सम्बन्धी सूचनाएं प्रदान करने हेतु किया जाता है। अनुस्थापन वार्ताओं म तो अधिकतर वार्ताकार व्यवसायों सम्बन्धी सूचनाएं प्रस्तुत करते हैं जबकि व्यावसायिक सूचना-सम्मेलनों की विशेषता यह होती है कि इनमें छात्र भी वार्ताकार से अपनी शकाओं एव जिज्ञासाओं का निवारण करत हैं।

व्यावसायिक सूचना सम्मेलन आयोजित करने की दो प्रमुख विधियाँ हैं। एक विधि ■ अलग अलग व्यवसायों के विशेषज्ञों को अलग से अलग अलग समय पर बुला कर विभिन्न व्यवसायों सम्बन्धित चर्चा आयोजित की जा सकती है। इस विधि का लाभ यह है कि प्रत्येक बालक को प्रत्येक व्यवसाय सम्बन्धी चर्चा म भाग लेने का अवसर प्राप्त हो सकता है और इसके फलस्वरूप उसे कई व्यवसायों सम्बन्धी सूचनाएं प्राप्त हो सकती हैं। परन्तु इस रीति से वार्ताएं आयोजित करने म एक तो अधिक समय लगता है और दूसरा विद्यार्थी जिन व्यवसायों म रुचि नहीं रखते उन व्यवसायों के सम्मेलनों म उन्हें सम्मिलित होने म कोई रुचि नहीं होती। इस प्रकार उनका भी अधिक समय नष्ट होता है। इसकी अपेक्षा व्यावसायिक सूचना-सम्मेलन आयोजित करने की दूसरी विधि अधिक उपादेय सिद्ध हो सकती है। इस विधि के अन्तर्गत हम वर्ष मे किन्हीं दो या तीन दिनों को व्यावसायिक सूचना सम्मेलनों के लिए निर्धारित कर देते हैं। छात्रों की व्यावसायिक रुचियों का पता लगा कर उन्हें व्यावसायिक रुचि समूहों म बाँट दिया जाता है। प्रत्येक व्यावसायिक रुचि समूह के लिए उनसे सम्बन्धित व्यवसायों के विशेषज्ञों की वार्ताओं एव चर्चाओं का आयोजन किया जाता है ताकि छात्रों की वार्ताओं म रुचि बनी रहे। इस सम्मेलन का यदि उचित समन्वित समय चक्र बनाया जाए तो एक छात्र एक से अधिक चर्चाओं म भाग ले सकता है।

(अ) व्यावसायिक सूचना-सम्मेलन के आयोजन सम्बन्धी कुछ सुझाव—व्यावसायिक सूचना-सम्मेलनों को सफल बनाने हेतु उनको सुनियोजित रूप से आयोजित करना आवश्यक है। अत इसके आयोजन सम्बन्धी कुछ प्रमुख सुझाव प्र

किय जा रहे हैं।

—तिथि निर्धारण—इन सम्मेलनो के तिथि निर्धारण से पूर्व अनेक बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। सम्मेलनो की तिथि छात्र शाला तथा विशेषज्ञों की सुविधा का ध्यान म रखकर रखना सम्मेलन की सफलता के लिए आवश्यक है। शाला म कोई अन्य महत्वपूर्ण प्रवृत्ति चल रही हो ऐसे समय यदि व्यावसायिक सूचना सम्मेलनो का आयोजन किया जाए तो उसम हम न तो शाला का सहयोग मिलेगा न ही विद्यार्थियों का। इसी प्रकार यदि विद्यार्थी परीक्षाओं या किसी अन्य महत्वपूर्ण काय म व्यस्त हो या छुट्टियों म घर जाने के लिए आतुर हो ऐसे समय यदि हम इन सम्मेलनों का आयोजन करें तो इसकी उपादेयता कम हो जाएगी। अन्तिम किन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण बात तिथि निर्धारण म समय जो हम ध्यान म रखनी चाहिए वह है विशेषज्ञ की सुविधा। बिना विशेषज्ञ के तो सम्मेलन का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता।

—छात्रों के रुचि समूहों का गठन—व्यावसायिक सूचना सम्मेलनों के आयोजन से पूर्व हम प्रत्येक छात्र की व्यावसायिक रुचियों का पता लगाकर उन्हें व्यावसायिक समूहों म बाट देना चाहिए। समान रुचि वाले छात्रों को एक समूह म रख कर प्रत्येक समूह के लिए उनकी रुचि के अनुसार व्यावसायिक चर्चाओं का आयोजन किया जा सकता है।

—विशेषज्ञों से सम्पर्क—व्यावसायिक सूचना-सम्मेलन म भाग लेने वाले विशेषज्ञों से व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित कर उन्हें इन सम्मेलनों के उद्देश्य म अवगत करा देना चाहिए वक्ताओं को यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि एक घण्टे के समय म आधा घण्टा तो वार्ता के लिए रखा गया है और शेष समय छात्रों की जिज्ञासाओं एव शकाओं के निवारण हेतु रखा गया है। व्यवसाय विशेषज्ञ को छात्रों के स्तर से भी अवगत करा देना चाहिए ताकि वे उसी अनुसार अपनी वार्ता तयार करें। विशेषज्ञों से अनुरोध किया जा सकता है कि वे अपनी वार्ता म अपने व्यवसाय से सम्बन्धित निम्न परिचय देने का प्रयास करें। व्यवसाय की पृष्ठभूमि आवश्यक योग्यताए प्रशिक्षण कायपरिस्थितियाँ भविष्य में प्रगति की सम्भावनाए वेतन एव अन्य सुविधाए व्यवसाय म प्रवेश की विधि आदि।

—सम्मेलन का सचालन—व्यावसायिक सूचना सम्मेलन की सफलता कुशल सचालन पर निर्भर करेगी। अत इससे सम्बन्धित सब सावधानियाँ ध्यान म रखनी चाहिए। कुछ सुझाव यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं। सम्मेलन की सफलता के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण आवश्यकता है समय की पाबन्दी की। निर्धारित समय पर यदि एक विशेषज्ञ की वार्ता आरम्भ एव समाप्त न हुई तो अगली वार्ताओं का सारा चक्र अव्यवस्थित हो जाएगा।

प्रत्येक समूह की चर्चाओं का निर्धारित कक्ष एव उसमे आवश्यक भौतिक

सुविधाओं की व्यवस्था होनी चाहिए। निर्देशन कार्यकर्ता एक साथ सब समूहों में उपस्थित रह कर चर्चाओं का संचालन नहीं कर सकता। अतः कुछ वरिष्ठ एवं अनुभवी अध्यापकों का सहयोग इसमें उपादेय सिद्ध हो सकता है।

(आ) व्यावसायिक सूचना सम्मेलन का मूल्यांकन—व्यावसायिक सूचना सम्मेलनों के स्तर को सुधारने हेतु इनका मूल्यांकन वांछनीय है। मूल्यांकन द्वारा के मत ज्ञात कर लिया जा सकता है। मूल्यांकन हेतु छात्रों को एक प्रश्नावली दी जा सकती है जिसमें निम्न बिन्दुओं का समावेश किया जा सकता है।

—व्यावसायिक सूचना सम्मेलन का समय उपयुक्त था अथवा नहीं ?

—इसमें प्राप्त सूचनाएं उपादेय प्रतीत हुईं या नहीं ?

—सम्मेलन में सब आवश्यक सूचनाएं प्राप्त हो सकीं या नहीं।

—अपनी रुचि के सब व्यवसायों से सम्बन्धित सूचनाएं प्राप्त हो सकीं या नहीं ?

—क्या वार्ताकार की वार्ता समझने में कठिनाई हुई ?

—किन किन वार्ताओं को समझने में कठिनाई हुई ?

—कौन-कौनसी वार्ताएं अच्छी लगीं ?

—सम्मेलन को और अधिक प्रभावोत्पादक बनाने हेतु अन्य सुझाव छात्रों से प्राप्त सुझावों के आधार पर भविष्य में आयोजित व्यावसायिक सूचना सम्मेलनों को और अधिक प्रभावोत्पादक बनाया जा सकता है।

(इ) कक्षागत कार्य—कक्षागत कार्यों के माध्यम से भी व्यावसायिक सूचनाओं का संचरण सम्भव है। विभिन्न विषयों के शिक्षक समय-समय पर उनके विषयों का किन किन व्यवसायों से सम्बन्ध है यह स्पष्ट कर सकते हैं तथा उन व्यवसायों से सम्बन्धित आवश्यक जानकारी भी दे सकते हैं। इसी प्रकार अपने विषयों से सम्बन्धित उच्च शिक्षा की क्या सम्भावनाएं हो सकती हैं इन उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रमों से छात्रों को अवगत कराया जा सकता है। विज्ञान के शिक्षक कृषि विज्ञान पशु विज्ञान चिकित्सा शास्त्र इन्जीनियरिंग टक्नालोजी आदि पाठ्यक्रमों के सम्बन्ध में चर्चा कर सकते हैं। इसी प्रकार अन्य विषयों के शिक्षक भी आगे चल कर उनका विषय किन पाठ्यक्रमों एवं व्यवसायों में उपयोगी सिद्ध हो सकता है इसके सम्बन्ध में चर्चा कर सकते हैं।

(ई) पाठ्येत्तर क्रियाओं के माध्यम से— पाठ्येत्तर क्रियाओं के माध्यम से भी छात्रों को व्यावसायिक एवं शैक्षिक सूचनाएं प्रदान की जा सकती हैं। छात्रों को विषयानुसार समूहों में बांटकर कुछ औद्योगिक अथवा व्यापारिक प्रतिष्ठानों में ले जाया जा सकता है। इस प्रकार की भेंटों से छात्रों को व्यावसायिक जगत की जानकारी प्रत्यक्ष प्राप्त करने का अवसर प्राप्त हो सकता है। इन भेंटों को अधिक उपयोगी बनाने के लिए इनका आयोजन व्यवस्थित रूप से किया जाना चाहिए।

प्रयेक भेंट म पूव छात्रो को कुछ बिन्दु स्पष्ट हो जाने चाहिए तभी व भेंट का पूरा लाभ उठा सकते हैं। भेंट से पूव छात्रो को यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि भेंट का क्या उद्देश्य है। भेंट के दौरान किन किन पक्षों का अध्ययन करना है। भेंट के दौरान किन किन व्यक्तियों से किस प्रकार की सूचनाए प्राप्त की जा सकती हैं आदि बिन्दु पूर्णतया स्पष्ट हो जाने चाहिए।

भेंट के दौरान शिक्षको को आवश्यक निर्देश देने चाहिए एव महत्त्वपूर्ण सूचनाओं की ओर छात्रों का ध्यान आकर्षित करना चाहिए।

भेंट के पश्चात् भेंट का मनवलन काय भी आवश्यक है। प्रत्येक छात्र को भेंट के पश्चात् उसने जो सूचनाए प्राप्त की हैं उन्हें लिखने को कहा जाए तथा उन सूचनाओं म कुछ महत्त्वपूर्ण बिन्दु छूट गए हो तो उन्हें पूरा किया जाना चाहिए।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है छात्रों को व्यावसायिक सर्वेक्षणों म भी सम्मिलित किया जा सकता है। इन सर्वेक्षणों के माध्यम से भी उन्हें महत्त्वपूर्ण सूचनाए प्राप्त हो सकती हैं।

(ङ) अभिभावक दिवस—शक्षिक एव व्यावसायिक सूचनाओं का छात्रों के लिए तो महत्त्व है ही साथ ही अभिभावकों के लिए भी ये सूचनाए उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं। यदि अभिभावकों के पास पर्याप्त शक्षिक एव व्यावसायिक सूचनाएँ हों तो वे अपने बच्चों का विषय अथवा व्यवसायों के चयन म अधिक अच्छी तरह से मार्गदर्शन कर सकते हैं। भारत म तो अभिभावकों तक इन सूचनाओं का पहुँचाना और भी आवश्यक है क्योंकि हमारे यहा अधिकतम परिस्थितियों म माता पिता अथवा अभिभावक ही छात्र के विषय अथवा व्यवसाय के चयन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अत निदशन कायकर्ता को अभिभावक दिवसों के अवसर पर पर्यावर्णीय सूचनाए अभिभावकों तक पहुँचाने का प्रयास करना चाहिए। इन अवसरों पर वार्ताए प्रश्नोत्तर सत्र प्रदर्शनियाँ आदि का आयोजन किया जा सकता है जिनके द्वारा अभिभावकों तक पर्यावर्णीय सूचनाए पहुँचाई जा सकें।

(च) निदशन दिवस—निर्देशन दिवसों का आयोजन केवल पर्यावर्णीय सूचनाओं के सचरण के लिए ही नहीं अपितु समस्त निर्देशन कायक्रम को लोकप्रिय बनाने हेतु प्रयत्न महत्त्वपूर्ण है। निर्देशन दिवस के आयोजन से हम अभिभावकों समाज व सस्था एव छात्रों को इस बात से परिचित करवा सकते हैं कि निर्देशन सेवाओं के अन्तगत हम किन किन सेवाओं को छात्रों के लाभ हेतु उपलब्ध कर रहे हैं। निर्देशन दिवस के अवसर पर्यावर्णीय सूचनाओं की प्रदर्शनी फिल्म शो व्यावसायिक एव शक्षिक वार्ताए निर्देशन सेवाओं सम्बन्धी वार्ताए निर्देशन सेवाओं सम्बन्धी चार्ट स एव चित्र आदि अनेक प्रवृत्तियों का आयोजन कर सकते हैं। इस अवसर पर अभिभावकों एव समाज व सस्था का भी आमन्त्रित किया जा सकता है।

(छ) शाला मे उपलब्ध पर्यावर्णीय सूचना सामग्री का प्रचार—जैसाकि

पहले कहा जा चुका है छात्र पर्यावर्णीय सूचनाओं का अधिक से अधिक उपयोग करें इसके लिए यह आवश्यक है कि वे जान सकें कि शाला में कौन-कौन सी पर्यावर्णीय सूचना सामग्री उपलब्ध है। यह तभी सम्भव है जब पुस्तकाध्यक्ष एवं निर्देशन कार्यकर्ता इस सामग्री के प्रदर्शन एवं प्रचार के सब साधनों एवं अवसरों का पूरा पूरा लाभ उठाएं। पुस्तकालय में इस सामग्री के प्रदर्शन हेतु डिसप्ले रेक्स (Display racks) का प्रयोग किया जा सकता है। शाला के विभिन्न उत्सवों के अवसर पर निर्देशन प्रदर्शिनी का आयोजन, शाला पत्रिका में पर्यावर्णीय सूचनाओं सम्बन्धी जानकारी प्रकाशित करना तथा अन्य अनेक ऐसे माध्यम खोजे जा सकते हैं जिनके द्वारा पर्यावर्णीय सूचना सामग्री का अधिक से अधिक प्रचार एवं प्रदर्शन हो सके।

(ज) उच्चस्तरीय विद्यालयों से भेंट—पर्यावर्णीय सूचनाओं के अन्तर्गत एक महत्वपूर्ण सूचना उच्चस्तरीय विद्यालयों के जीवन सम्बन्धी हो सकती है। छात्रों को वे भाग न जानकर जिन विद्यालयों में पढ़ने जा रहे हैं उनसे अवगत कराया जाय तो उन्हें वहां जाने पर व्यवस्थापन सम्बन्धी कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ेगा। इसका सर्वोत्तम तरीका हो सकता है इन उच्चस्तरीय विद्यालयों से भेंट करना। छात्रों को छोटे छोटे समूहों में ले जाकर इन विद्यालयों के जीवन से अवगत कराया जा सकता है। अनुच्छेद छ में व्यापारिक प्रतिष्ठानों में भेंट के जो सिद्धान्तों की चर्चा की गई है उन्हीं सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुए हम विद्यालय भेंटों का आयोजन करना चाहिए।

उपसंहारात्मक कथन

निर्देशन का प्रमुख उद्देश्य है कि व्यक्ति में बुद्धिमत्तापूर्ण आत्मनिर्णय ले सकने की क्षमता विकसित करना। यह क्षमता व्यक्ति में तभी विकसित हो सकती है जब व्यक्ति दो प्रकार की सूचनाओं के समुच्चयों का अध्ययन कर दोनों के बीच तालमेल बढ़ा सके। इन दो सूचना समुच्चयों में एक समुच्चय तो है व्यक्ति के स्वयं की विशिष्टताओं-सीमितताओं सम्बन्धी सूचनाओं का और दूसरा समुच्चय है व्यक्ति जिस पर्यावरण से सम्बन्धित निर्णय ले रहा है अथवा समस्या सुलझाने का प्रयास कर रहा है उससे सम्बन्धित सूचनाओं का। निर्देशन के अन्तर्गत हम जो विभिन्न सेवाएं व्यक्ति को प्रदान करते हैं उनमें से दो प्रमुख सेवाएं इन सूचनाओं के संकलन संग्रह मिसीलीकरण निर्वचन एवं संचरण से सम्बन्धित हैं। वैयक्तिक सूचना सेवा तो व्यक्ति को उसके स्वयं की क्षमताओं सीमितताओं से सम्बन्धित वैध एवं विश्वसनीय सूचनाएं प्रदान करती है और पर्यावर्णीय सूचना सेवा व्यक्ति के शैक्षिक व्यावसायिक एवं आर्थिक-सामाजिक पर्यावरण से सम्बन्धित सूचनाएं प्रदान करती है। इस अध्याय में पर्यावर्णीय सूचनाओं के स्रोतों संकलन एवं संचरण विधियों से सम्बन्धित तथ्य प्रस्तुत किए गए हैं। संकलन एवं संचरण दोनों को प्रभावोत्पादक बनाने हेतु जो प्रमुख सिद्धान्त ध्यान में रखे जा सकते हैं उसका भी यथास्थान वर्णन किया गया है। निर्देशन कार्यकर्ताओं की सामान्य कठिनाई यह होती है कि हमारे देश में

व कौनसे अभिकरण हैं जिनसे पर्यावरण से सम्बन्धित विश्वसनीय सूचनाएं प्राप्त हो सकती हैं। अतः इस कठिनाई को ध्यान में रखते हुए भारत में पर्यावर्णीय सूचनाएं प्राप्त करने के जो अभिकरण हो सकते हैं उनके सम्बन्ध में भी इस अध्याय में चर्चा की गई है।

पर्यावर्णीय सूचना सेवा हमारे देश के बालकों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण सेवा सिद्ध हो सकती है क्योंकि हमारे बालकों में क्षमताएं होते हुए भी अनेक बार साधन सुविधाओं की जानकारी के अभाव में वे इन क्षमताओं का पूर्णतया विकसित नहीं कर पाते। सरकार द्वारा अनेक ऐसी योजनाएं प्रारम्भ की गई हैं जिनके अन्तर्गत निर्धन किन्तु मेधावी छात्रों को उत्तम शिक्षा की व्यवस्था है। किन्तु जब तक इन योजनाओं की जानकारी उन जरूरतमन्द बालकों को नहीं होगी तब तक सरकार की इच्छा होते हुए भी वे इन योजनाओं का लाभ नहीं उठा पावेंगे। हमारे अनेक मेधावी बालकों की प्रतिभा इन अवसरों से अनभिज्ञता के कारण ही कुंठित हो जाती है अतः हर निर्देशन कार्यकर्ता को पर्यावर्णीय सूचनाओं को संकलित कर बालकों तक पहुँचाने का प्रयास करना चाहिए।

उपरोक्त उदाहरण से हम यह न समझें कि केवल गरीब छात्रों को ही पर्याप्त पर्यावर्णीय सूचनाओं का ज्ञान नहीं होता। आजकल हम जिस पर्यावरण में रहते हैं वह उत्तरोत्तर रूप से जटिल होता जा रहा है। इतने अधिक प्रकार के पाठ्यक्रम प्रशिक्षण व्यवसाय प्राप्ति उपयुक्त एवं विकसित हो रहे हैं कि एक अच्छे पढ़े लिखे अभिभावक के लिए भी सब प्रकार की पर्यावर्णीय सूचनाओं का ज्ञान हो ही यह आवश्यक नहीं। अतः उनके लिए भी इस प्रकार की विशेष सेवा उपादेय सिद्ध हो सकती है। इस अध्याय में इसी सेवा के प्रमुख पक्षों पर प्रकाश डाला गया है।

निर्देशन कार्यकर्ताओं का प्रशिक्षण

(निर्देशन प्रशिक्षण के विभिन्न स्तर — (१) प्रधानाध्यापकों एवं प्रशासकों के लिए (२) सामान्य शिक्षकों के लिए (३) करियर मास्टरों के लिए (४) शिक्षक उपबोधकों के लिए निर्देशन प्रशिक्षण के अभिकरण —(१) राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (२) स्टेट ब्यूरो आफ गाइडेंस (३) शिक्षक महाविद्यालय प्रशिक्षण कार्यक्रम (१) प्रधानाध्यापकों एवं प्रशासकों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम (क) उद्देश्य (ख) अवधि (ग) अभिकरण (घ) पाठ्यक्रम की अन्तर्वस्तु (ङ) प्रशिक्षण विधियां – (२) शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम (क) उद्देश्य (ख) अवधि (ग) अभिकरण (घ) पाठ्यक्रम की अन्तर्वस्तु (ङ) प्रशिक्षण विधियां (३) करियर मास्टरों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम – (क) उद्देश्य (ख) अवधि (ग) अभिकरण (घ) पाठ्यक्रम की अन्तर्वस्तु (ङ) प्रशिक्षण विधियां (४) शिक्षक उपबोधकों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम (क) उद्देश्य (ख) अवधि (ग) अभिकरण (घ) पाठ्यक्रम की अन्तर्वस्तु (ङ) प्रशिक्षण विधियां (५) प्रथम – उपबोधकों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम (क) उद्देश्य (ख) अवधि (ग) अभिकरण (घ) पाठ्यक्रम की अन्तर्वस्तु (ङ) प्रशिक्षण विधियां उपसंहारात्मक कथन)

निर्देशन कार्यक्रम की सफलता एक बहुत बड़ी सीमा तक इस कार्यक्रम को संचालित करने वाले कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण पर निर्भर करता है। निर्देशन जैसे अत्यन्त तकनीकी कार्य को यदि अप्रशिक्षित एवं अपरिपक्व व्यक्तियों को सौंप दिया जाए तो इससे छात्रों को अपेक्षित लाभ नहीं पहुँच सकता। इस समस्त अध्याय में निर्देशन कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण के विभिन्न स्तरों एवं प्रशिक्षण की व्यवस्थाओं का विवेचन किया गया है। भारत में तो निर्देशन कार्यकर्ताओं के अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन प्रशिक्षणों की अत्यन्त आवश्यकता है। इसके दो कारण हैं। प्रथम–हमारे देश में निर्देशन अभी भी एक नई विचारधारा है अतः इस क्षेत्र में प्रशिक्षित व्यक्तियों की कमी है। दूसरा—यदि हम भारतवर्ष की प्रत्येक शाला में निर्देशन कार्यक्रम प्रारम्भ करना चाहें तो हमें इतने अधिक निर्देशन कार्यकर्ताओं की आवश्यकता होगी कि जबतक हम प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन नहीं करेंगे तबतक इस माँग की पूर्ति नहीं की जा सकती। इन कार्यक्रमों को हम सेवारत कार्यक्रमों एवं ग्रीष्म

कालीन कार्यक्रमों के रूप में भी चलाना होगा ताकि इनका लाभ अधिक अध्यापक उठा सकें।

निर्देशन प्रशिक्षण के विभिन्न स्तर

निर्देशन प्रशिक्षण केवल अंशकालिक अथवा पूर्णकालिक निर्देशन कार्यकर्ताओं के लिए ही आवश्यक नहीं अपितु इस कार्यक्रम में भाग लेने वाले समस्त कार्यकर्ताओं के लिए आवश्यक होता है। इस प्रशिक्षण का स्तर एवं इसकी विधि अवश्य भिन्न भिन्न स्तर के कार्यकर्ताओं के लिए भिन्न होगी। निर्देशन कार्यक्रम के विभिन्न स्तरों का एक दूसरा भी कारण है। प्रत्येक शाला में हम पूर्णकालिक निर्देशन कार्यकर्ता की अथवा शाला उपबोधक की कल्पना नहीं कर सकते। अतः भारतीय परिस्थितियों का ध्यान में रखते हुए हम अंशकालिक निर्देशन कार्यकर्ताओं अथवा करियर मास्टर्स के प्रशिक्षण का भी प्रावधान रखना होगा। उपरोक्त कारणों से निर्देशन प्रशिक्षण विभिन्न स्तरों पर विविध कार्मिकों के लिए आयोजित किया जा सकता है। निर्देशन कार्यक्रम के विभिन्न स्तरों को निम्नलिखित अनुच्छेद में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

(१) प्रधानाध्यापकों एवं शाला प्रशासकों के लिए

जैसा कि पहले भी कई बार कहा जा चुका है कि जबतक प्रधानाध्यापक तथा अन्य प्रशासक निर्देशन कार्यक्रम के महत्व को नहीं समझते और से शाला की एक आवश्यक एवं महत्वपूर्ण प्रवृत्ति के रूप में स्वीकार नहीं करते तबतक निर्देशन कार्यक्रम सफल नहीं हो सकता। अतः सर्वप्रथम हमें कुछ अल्पकालीन कार्यक्रमों का आयोजन करना होगा जिनके द्वारा प्रधानाध्यापकों एवं शाला प्रशासकों में इस कार्यक्रम के प्रति प्रशंसन (Appreciation) विकसित किया जा सके। इन कार्यक्रमों को प्रशंसन पाठ्यक्रम (Appreciation Courses) का रूप दिया जा सकता है। इस स्तर के व्यक्तियों के लिए जो प्रशंसन पाठ्यक्रम आयोजित किए जाएं उनका स्वरूप अन्य स्तरीय कार्यक्रमों से बिलकुल भिन्न होगा तथा इनके संचालन की विधि भी भिन्न होगी। इसकी चर्चा हम आगे करेंगे। यहाँ तो हम केवल इस बात पर बल देना चाहते हैं कि निर्देशन कार्यक्रम के प्रति प्रशासकों एवं प्रधानाध्यापकों के मन में उचित दृष्टिकोण एवं प्रशंसन विकसित करने हेतु हमें कुछ अल्पकालीन कार्यक्रम आयोजित करने होंगे।

(२) सामान्य शिक्षकों के लिए

शाला में किसी भी नई प्रवृत्ति को प्रारम्भ करने से पूर्व शाला के शिक्षक समुदाय को उस प्रवृत्ति से अवगत कराना आवश्यक होता है। फिर निर्देशन कार्यक्रम तो एक बिलकुल नई प्रवृत्ति है अतः इसके विषय में शिक्षकों को अनुस्थापित करने की आवश्यकता तो और भी अधिक है। इस प्रवृत्ति की एक और विशेषता यह है कि इसके सफल संचालन के लिए पद पद पर सभी शिक्षकों का सहयोग आवश्यक

होता है। कुछ शिक्षकों को तो इस प्रवृत्ति से सम्बन्धित विशिष्ट उत्तरदायित्वों का भी भार वहन करना पड़ सकता है। अतः शाला के समस्त शिक्षकों के लिए भी एक सामान्य अनुस्थापन पाठ्यक्रम की आवश्यकता होती है। यह कार्यक्रम कई स्वरूपों में आयोजित किया जा सकता है जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

(३) करियर मास्टरों के लिए

अधिकतर भारतीय शालाओं में निर्देशन कार्यकर्ता करियर मास्टर के रूप में ही होते हैं। इनका कार्य मूलतः व्यावसायिक सूचनाओं का संकलन, विश्लेषण, विशोधीकरण एवं संचरण होता है। इस कार्य को कुशलतापूर्वक करने के लिए विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। किसी भी ऐसे शिक्षक को इस प्रशिक्षण हेतु भेजा जा सकता है जिसकी निर्देशन में रुचि एवं आस्था हो। करियर मास्टर को निर्देशन की समस्त सेवाओं का भार नहीं सौंपा जाता अतः इनका प्रशिक्षण भी अल्पकालीन ही हो सकता है। प्रत्येक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में जिसमें लगभग ५०० छात्र पढ़ते हों उसमें एक करियर मास्टर का होना आवश्यक है जो कि छात्रों को व्यावसायिक सूचनाएं उपलब्ध करा सके।

(४) शिक्षक उपबोधकों के लिए

शिक्षक उपबोधक भी एक अंशकालिक निर्देशन कार्यकर्ता होता है। जिस प्रकार करियर मास्टर का कार्य व्यावसायिक सूचनाओं का संग्रह एवं संचरण है उसी प्रकार शिक्षक-उपबोधक अन्य पर्यावरणीय सूचनाओं तथा वैयक्तिक सूचनाओं के संकलन का कार्यभार सम्भाल सकता है तथा कुछ सीमा तक छात्रों की समस्याओं का समाधान प्राप्त करने में सहायता प्रदान कर सकता है। किन्तु इस अंशकालिक निर्देशन कार्यकर्ता से हम वैयक्तिक उपबोधन की अपेक्षा नहीं कर सकते। शिक्षक उपबोधक मूलतः सामूहिक निर्देशन विधियों द्वारा ही छात्रों की सामूहिक समस्याओं को सुलझाने में सहायता प्रदान कर सकता है। अतः इस कार्यकर्ता के प्रशिक्षण में भी पक्ष पर अधिक बल होना चाहिए।

(५) शाला उपबोधकों के लिए

पूर्णकालिक शाला उपबोधक भारतीय शालाओं में साधारणतया नहीं पाए जाते—यद्यपि एक अच्छे उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के लिए एक पूर्णकालिक उपबोधक होना आवश्यक है। साधारणतः लगभग १ छात्र संख्या वाले विद्यालयों में यदि एक पूर्णकालिक उपबोधक रखा जाए तो वाञ्छनीय होगा। अभी राजस्थान के कुछ प्रमुख नगरों में कई उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के लिए सम्मिलित रूप से एक पूर्णकालिक उपबोधक का प्रावधान किया गया है। यह कोई आदर्श स्थिति नहीं है फिर भी इस प्रान्त में निर्देशन के महत्त्व को समझ कर यह प्रावधान किया गया यह एक सन्तोष का विषय है। इन पूर्णकालिक उपबोधकों के लिए काफी विस्तृत प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। इन उपबोधकों से लगभग सभी निर्देशन

सेवाओं के आयोजन की अपेक्षा की जा सकती है। इन उपबोधकों व व्यक्तित्व उपबोधन की भी अपेक्षा की जा सकती है अतः उनके प्रशिक्षण में उन्हें इन कला में दक्ष करने का प्रावधान होना चाहिए।

निर्देशन प्रशिक्षण के अभिकरण

भारत में यद्यपि निर्देशन अभी भी एक नई विचारधारा है फिर भी हमारे देश में निर्देशन कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण के लिए विभिन्न अभिकरण क्रियाशील हैं। इनमें से कुछ प्रमुख अभिकरणों का यहाँ वर्णन किया जा रहा है।

(१) राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (N C E R T)

इस केन्द्रीय संस्था के डिपार्टमेन्ट आफ एजुकेशनल साइकोलोजी एण्ड फाउण्डेशन आफ एजुकेशन (D E P F E) के निर्देशन विभाग द्वारा एक पाठ्यक्रम चलाया जाता है जिसमें निर्देशन का उच्चस्तरीय प्रशिक्षण दिया जाता है। यह पाठ्यक्रम एक वर्षीय पाठ्यक्रम है तथा इसे एसोसिएटशिप आफ नेशनल इन्स्टीट्यूट आफ एजुकेशन का नाम दिया गया है।

(२) स्टेट ब्यूरो आफ गाइडेन्स

लगभग प्रत्येक राज्य में निर्देशन ब्यूरो स्थापित किए गए हैं जिनमें विभिन्न स्तरीय प्रशिक्षण प्रदान किए जाते हैं। इन प्रशिक्षण कार्यक्रमों का प्रमुख ध्येय करियर मास्टर तथा शाला उपबोधक तैयार करना है। राज्य निर्देशन ब्यूरो समय-समय पर प्रशिक्षण शिविर सगोष्ठियाँ आदि आयोजित करके भी प्रशिक्षण कार्य सचालित करते हैं।

( ) शिक्षक महाविद्यालय

शिक्षक महाविद्यालय भी निर्देशन के प्रशिक्षण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं। आजकल स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तर के पाठ्यक्रमों में निर्देशन का समावेश किया जाता है। बी० एड० के पाठ्यक्रम में लगभग सभी विषयों में निर्देशन के किसी न किसी पक्ष का समावेश किया जाता है जिससे सामान्य शिक्षकों को इस विचारधारा से अवगत होने का अवसर प्राप्त होता है। विशेष प्रशिक्षण के बी० एड० कार्यक्रम में निर्देशन में विशेषज्ञता पाठ्यक्रमों का भी प्रावधान होता है। इसी प्रकार एम० एड० स्तर पर भी शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन के क्षेत्र में विशेषज्ञता पाठ्यक्रम रखे जाते हैं।

शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय अपने सेवा प्रसार विभागों के माध्यम से भी अल्प प्रशिक्षणों का आयोजन कर सकते हैं।

प्रशिक्षण कार्यक्रम

उपर्युक्त अभिकरण विभिन्न स्तरीय प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करते हैं। इन कार्यक्रमों की अवधि अन्तर्वस्तु एवं विधियों की चर्चा निम्नांकित अनुच्छेदों में की जायगी —

(१) प्रधानाध्यापकों एवं प्रशासकों के लिए आश्वसन पाठ्यक्रम

जैसाकि पहले कहा जा चुका है निर्देशन कार्यक्रम की सफलता के लिए प्रधानाध्यापकों एवं प्रशासकों को इस कार्यक्रम की उपयोगिता से अवगत कराना आवश्यक है। इस अनुस्थापन कार्यक्रम को प्रशिक्षण की अपेक्षा आश्वसन पाठ्यक्रम कहना अधिक उचित होगा। क्योंकि इसके फलस्वरूप हम कोई स्वयं निर्देशन कार्यकर्ताओं का निर्माण करने की अपेक्षा नहीं रखते। प्रधानाध्यापकों एवं प्रशासकों के लिए प्रायोजित आश्वसन पाठ्यक्रम के निम्नलिखित उद्देश्य हो सकते हैं।

(क) उद्देश्य— इस कार्यक्रम के द्वारा हम कोई कुशल निर्देशन कार्यकर्ताओं का निर्माण नहीं करना चाहते। अतः इस पाठ्यक्रम में ज्ञान पक्ष पर एवं कुशलताओं पर कम बल रहना चाहिए तथा उचित दृष्टिकोण विकसित करने पर तथा आश्वसन पर अधिक बल दिया जाना चाहिए। ज्ञान पक्ष का प्रस्तुतिकरण भी इस प्रकार किया जाना चाहिए कि प्रशासकों एवं प्रधानाध्यापकों के मन से निर्देशन के विषय की भ्रामक धारणाएं निकल जाएं और वे इसे उचित परिप्रेक्ष्य में देख सकें। इन उद्देश्यों को व्यवस्थित रूप से निम्न प्रकार लिखा जा सकता है —

—निर्देशन की विकासात्मक पृष्ठभूमि से अवगत कराना।
—निर्देशन के स्वरूप एवं महत्त्व से अवगत कराना।
—निर्देशन की विविध सेवाओं से अवगत कराना।
—निर्देशन से सम्बन्धित कुछ भ्रामक धारणाओं को दूर करना।
—एक शाला के लिए न्यूनतम निर्देशन कार्यक्रम की रूपरेखा प्रस्तुत करना।
—निर्देशन कार्यक्रम के संगठन के सिद्धान्तों की चर्चा करना।
—इस कार्यक्रम के आर्थिक पक्ष की चर्चा करना।

इन सब उद्देश्यों के पीछे एक प्रमुख उद्देश्य निरन्तर क्रियाशील रहना चाहिए वह यह कि प्रधानाध्यापकों एवं प्रशासकों के मन में इस कार्यक्रम के प्रति आस्था विकसित करना एवं उनको इसके बढ़ते हुए महत्त्व से परिचित करवाना।

(ख) अवधि— प्रशासकों एवं प्रधानाध्यापकों की व्यस्तता को देखते हुए हम उनसे किसी दीर्घकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम में सम्मिलित होने की अपेक्षा नहीं कर सकते। फिर इस प्रशिक्षण कार्यक्रम का उद्देश्य भी कोई विशेषज्ञ कार्यकर्ता निर्माण करना नहीं है। अतः इस कार्यक्रम की अवधि अल्प ही होनी चाहिए। तीन दिन की किसी संगोष्ठि में उपयुक्त उद्देश्यों की पूर्ति की जा सकती है। अवधि के साथ साथ इन आश्वसन पाठ्यक्रमों का समय भी ऐसा होना चाहिए जब ये अधिकारी कुछ कम व्यस्त हों।

(ग) अभिकरण— प्रधानाध्यापकों एवं प्रशासकों के लिए आश्वसन पाठ्यक्रम के संचालन का उत्तरदायित्व राज्य निर्देशन ब्यूरो ही सबसे उत्तम रीति से निभा सकता है। इस राज्य स्तरीय अभिकरण के पास उपयुक्त विशेषज्ञ भी होते हैं और

आवश्यक सत्ता भी। जिन शिक्षक महाविद्यालयों में निर्देशन के विशेषज्ञ हों एवं सेवारत प्रशिक्षण के लिए साधन हों व महाविद्यालय भी अपने सेवा प्रसार विभागों के माध्यम से प्रधानाध्यापकों एवं अन्य प्रशासकों के अनुस्थापन हेतु अल्पकालीन सगोष्ठियों का आयोजन कर सकते हैं।

(घ) पाठ्यक्रम की अन्तवस्तु— प्रधानाध्यापकों एवं अन्य प्रशासकों को निर्देशन की विचारधारा एवं इसकी गतिविधियों से अवगत कराने हेतु जो पाठ्यक्रम बनाया जाय उसकी अन्तवस्तु क्या हो यह इस पाठ्यक्रम के उद्देश्यों पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट हो सकता है। हमने अनुच्छेद ... में इन उद्देश्यों की चर्चा की है। इन उद्देश्यों के सन्दर्भ में यदि हम पाठ्यक्रम की अन्तवस्तु की व्याख्या करने का प्रयत्न करें तो कदाचित् उसका स्वरूप निम्न प्रकार से उभरेगा—

— निर्देशन का विकासात्मक स्वरूप।
— आधुनिक जटिल समाज में निर्देशन की आवश्यकता।
— विभिन्न निर्देशन सेवाएं।
— निर्देशन सम्बन्धी कुछ भ्रामक सम्प्रत्यय – निर्देशन का अनुचित अथ मापन पर आवश्यकता से अधिक बल।
— निर्देशन में शिक्षकों का उत्तरदायित्व।
— निर्देशन सेवाओं का प्रशासनिक एवं वित्तीय पक्ष।
— निर्देशन कार्यकर्ताओं के उत्तरदायित्व एवं उनके लिए पर्याप्त सुविधाएं।

उपयुक्त बिन्दुओं पर यदि संक्षिप्त में किन्तु प्रभावोत्पादक ढंग से प्रकाश डाला जाय तो शाला प्रशासकों को निर्देशन कार्यक्रम को उचित परिप्रेक्ष्य में देखने तथा इसके आयोजन में सहायता प्रदान की जा सकती है।

(ङ) प्रशिक्षण विधियाँ— इस स्तर के प्रशिक्षण कार्यक्रम में लम्बे भाषणों का कम से कम प्रावधान हो तथा चर्चाओं श्रव्य दृश्य सामग्री के उपयोग एवं साहित्य अध्ययन आदि विधियों पर अधिक बल दिया जाय। पाठ्यक्रम के भाग आदियों के साथ विद्यार्थियों की तरह व्यवहार करने की अपेक्षा उन्हें यह आभास कराया जाय कि उनके साथ चर्चा के माध्यम से शाला की प्रगति एवं छात्रों के विकास हेतु शिक्षा के एक नए आयाम की सम्भावनाओं को खोजा जा रहा है। इस नयी विचारधारा के व्यावहारिक पक्षों की उपादेयता को उभारते हुए इन प्रशासकों को इसे अपनाने के लिए प्रवृत्त किया जाना चाहिए ताकि वे अपनी शालाओं में इस नई प्रवृत्ति को प्रारम्भ कर उसको सफल बनाने का कर सकें।

(२) शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम

शाला में कोई नया प्रयोग प्रारम्भ करने से पूर्व यह आवश्यक हो जाता है कि शाला के समस्त अध्यापक उससे पूर्णतया अवगत हों। यह सिद्धान्त निर्देशन के साथ भी लागू होता है। हमारी शालाओं के लिए निर्देशन एक नूतन प्रयोग है अतः इसकी

सफलता हेतु शाला के प्रत्येक अध्यापक को इसके उद्देश्यों प्रवृत्तियों उपादेयता आदि से अवगत कराना आवश्यक हो जाता है। शिक्षकों के लिए आयोजित प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रधानाध्यापकों एवं प्रशासकों के लिए आयोजित प्रशिक्षण कार्यक्रम से उद्देश्यों विधियों अन्तर्वस्तु तथा अवधि में भिन्न होगा। प्रधानाध्यापक को तो निर्देशन के प्रशासकीय पक्ष से अधिक सम्बन्ध रहता है जबकि शिक्षकों का इस कार्यक्रम में सक्रिय रूप से सहयोग अपेक्षित होता है। छात्रों के सम्बन्ध में सूचनाएं शिक्षकों द्वारा प्राप्त की जा सकती हैं। वैयक्तिक सूचना सेवा एवं पर्यावरणीय सूचना सेवाओं के संगठन में पर्यावरणीय सूचनाओं के संचरण में व्यावसायिक एवं शैक्षिक समस्याओं को हल करने में तथा अन्य अनेक परिस्थितियों में शिक्षकों का सहयोग प्राप्त किया जा सकता है। यह सहयोग तभी प्राप्त किया जा सकता है जब शिक्षकों की इस कार्यक्रम में आस्था हो वे इससे पूर्णरूप से परिचित हों एवं वे इस कार्यक्रम को महत्वपूर्ण समझते हों। यह तभी सम्भव हो सकता है जब इन अध्यापकों का निर्देशन कार्यक्रम के प्रति उचित अनुस्थापन किया जाए। इस कार्यक्रम के उद्देश्य अन्तर्वस्तु विधियां आदि के सम्बन्ध में निम्नलिखित अनुच्छेद में चर्चा की जावेगी।

(क) उद्देश्य — शिक्षकों के लिए जो प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किया जाए उसमें निर्देशन के प्रकार्यात्मक पक्ष पर अधिक बल दिया जाना चाहिए। इसमें प्रशासकीय एवं वित्तीय पक्ष पर अधिक बल देने की आवश्यकता नहीं होगी। इस कार्यक्रम के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हो सकते हैं —

—निर्देशन के इतिहास एवं तात्कालिक स्वरूप से अवगत करना।
—आधुनिक जटिल समाज में निर्देशन के महत्व को स्पष्ट करना।
—निर्देशन की विभिन्न सेवाओं का परिचय देना।
—भारतीय शालाओं के लिए न्यूनतम निर्देशन कार्यक्रम की रूपरेखा प्रस्तुत करना।
—निर्देशन कार्यक्रम में शिक्षकों की अपेक्षित भूमिकाओं से अवगत करना।
—निर्देशन सेवाओं के फलस्वरूप अध्यापन कार्य के उन्नयन में क्या सहायता मिल सकती है इससे शिक्षकों को अवगत करना।

(ख) अवधि — शिक्षकों के लिए जो प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाया जाए उसकी अवधि कम से कम एक सप्ताह की हो सकती है। हम लगातार एक सप्ताह का कार्यक्रम आयोजित कर सकते हैं अथवा तीन दिनों के दो-तीन कार्यक्रम आयोजित कर उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति कर सकते हैं।

(ग) अभिकरण — शिक्षकों को प्रशिक्षित करने का कार्य कई अभिकरणों द्वारा सम्पन्न किया जा सकता है। निर्देशन कार्यकर्त्ता स्वयं शाला में इस कार्यक्रम का संचालन कर सकता है। राजकीय ब्यूरो के किसी विशेषज्ञ से इस कार्य में सहायता ली जा सकती है अथवा शिक्षक महाविद्यालयों के सेवा प्रसार विभागों के द्वारा

भी इस प्रकार के कार्यक्रमों का आयोजन किया जा सकता है। आजकल तो शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों में भी निर्देशन के मूल तत्त्वों का समावेश सामान्यतः किया जाता है जिससे प्रत्येक प्रशिक्षित अध्यापक को निर्देशन के मूल तत्त्वों से परिचित होने का अवसर मिलता है।

(घ) पाठ्यक्रम की वस्तु — शिक्षकों के लिए निर्देशन का जो प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किया जाय उसमें निम्नलिखित प्रमुख बिन्दुओं का समावेश किया जाना चाहिए। इस पाठ्यक्रम में निर्देशन में शिक्षक के स्थान पर अधिक विस्तार से चर्चा होनी चाहिए। साथ ही निर्देशन के महत्त्व की चर्चा करते समय इस कार्यक्रम की छात्रों के लिए क्या उपयोगिता है तथा शिक्षकों के लिए यह कार्यक्रम किस प्रकार महत्त्वपूर्ण है इन बिन्दुओं पर भी प्रकाश डालना चाहिए। इस पाठ्यक्रम की रूपरेखा का प्रस्तावित स्वरूप नीचे दिया जा रहा है।

—निर्देशन का इतिहास एवं इसका विकासात्मक स्वरूप।
—निर्देशन दर्शन।
—*निर्देशन का आधुनिक जटिल समाज में महत्त्व।*
—*निर्देशन की प्रमुख सेवाएं।*
—निर्देशन सेवाओं में शिक्षकों का स्थान।
—वैयक्तिक सूचना संकलन के प्रमापीकृत साधन एवं शिक्षकों द्वारा इनका उपयोग।
—पाठ्यक्रम एवं पाठ्येतर क्रियाओं द्वारा व्यावसायिक सूचनाओं का संचरण।
—छात्रों की सामान्य शैक्षिक समस्याएं।

(ङ) प्रशिक्षण विधियाँ — शिक्षकों के लिए जो प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जाए उसमें वार्ताएं, चर्चाएं, श्रव्य दृश्य साधनों आदि का प्रयोग तो हो ही किन्तु कुछ व्यावहारिक कार्य का भी प्रावधान होना चाहिए। शिक्षकों को उपाख्यान वृत्तों को लिखने का अभ्यास दिया जाए। कुछ विद्यालयों में सुविधा का प्रयोग करने का अवसर दिया जाए अथवा संचित अभिलेख भरने का अभ्यास करवाया जाए।

( ) करियर मास्टरों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम

छोटी अर्थात् ऐसी शालाओं में जिनमें ५ से कम छात्र हो करियर मास्टरों का ही प्रावधान किया जा सकता है। कम साधन सुविधाएं यदि उपलब्ध हो तो शाला उपबोधक अथवा पूर्ण कालिक उपबोधक भी रखा जाए तो प्रसन्नता का ही विषय होगा। किन्तु सामान्य परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए तो हम छोटी शालाओं में प्रारम्भ में करियर मास्टर की ही कल्पना कर सकते हैं। करियर मास्टर का प्रमुख कार्य व्यावसायिक निर्देशन के क्षेत्र में होता है। वह व्यावसायिक सूचनाओं का संकलन एवं संचरण करता है और जहाँ सम्भव हो

व्यावसायिक निर्देशन देने का प्रयास करता है। किन्तु इस कार्यकर्ता से हम वैयक्तिक उपबोधन की अपेक्षा नहीं कर सकते। इसका प्रमुख कार्य पर्यावर्णीय सूचनाएं एकत्रित करना उनका वर्गीकरण मिसीनीकरण आदि करना एवं संवरण करना है। इन सूचनाओं को बालकों तक पहुँचाने के लिये व्यावसायिक वार्तायें आयोजन व्यावसायिक प्रदर्शनियों का आयोजन शिक्षक अभिभावक सम्मेलनों आदि का आयोजन भी इसी कार्यकर्ता को करना होता है इन प्रमुख उत्तरदायित्वों को ध्यान में रखते हुए हम इनके लिये आयोजित प्रशिक्षण कार्यक्रम के उद्देश्य का प्रतिपादन करना चाहिये। यहाँ इस कार्यक्रम के कुछ प्रस्तावित उद्देश्य दिये गये हैं।

(क) उद्देश्य

—निर्देशन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से अवगत करना।
—निर्देशन की आधुनिक धारणा से अवगत करना।
—निर्देशन की प्रमुख सेवाओं का सामान्य परिचय।
—पर्यावर्णीय सूचना सेवा का विस्तृत परिचय देना।
—करियर मास्टर के उत्तरदायित्वों से अवगत कराना।
—विभिन्न सूचना स्रोतों से अवगत करना।
—सूचनाओं की संकलन संगठन एवं संवरण विधियों से अवगत करना।
—सूचना सेवा से सम्बद्ध प्रमुख प्रवृत्तियों से अवगत करना एवं उनके आयोजन की क्षमता विकसित करना।

(ख) अवधि — करियर मास्टरों के प्रशिक्षण की अवधि कम से कम दो मास की होनी चाहिये। इस प्रशिक्षण के लिये ग्रीष्मावकाश का उपयोग किया जा सकता है।

(ग) अभिकरण — इस प्रशिक्षण का उत्तरदायित्व सामान्यतया राज्य निर्देशन ब्यूरो को लेना चाहिये क्योंकि ब्यूरो के पास आवश्यक विशेषज्ञ उपलब्ध होते हैं तथा यह एक राजकीय एवं राज्यस्तरीय अभिकरण होने के कारण इसके द्वारा दिये गये प्रमाणपत्रों को सुगमता से मान्यता प्राप्त हो सकती है। फिर ब्यूरो की विभिन्न गतिविधियों में निर्देशन कार्मिकों का प्रशिक्षण भी एक प्रमुख प्रवृत्ति है।

(घ) पाठ्यक्रम की अन्तर्वस्तु — करियर मास्टरों के उत्तरदायित्वों को देखते हुए उनके प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में पर्याप्त व्यावहारिक कार्य होना चाहिए। या यों कहें कि यह समस्त कार्यक्रम ही पूर्णतया व्यावहारिक होना चाहिये। पर्यावर्णीय सेवा के विविध आयामों से सम्बन्धित अनेक प्रवृत्तियों के संगठन संचालन की वास्तविक कुशलता निर्माण करना इस पाठ्यक्रम का ध्येय है। पुस्तकालय में निर्देशन कोण की स्थापना से लेकर सूचनाओं के संवरण की विविध विधियों के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी इन कार्मिकों को दी जानी चाहिए तथा इन उत्तरदायित्वों को कुशलतापूर्वक निभाने की इनमें क्षमता उत्पन्न की जानी चाहिए। इन निर्देशन

सिद्धान्तो को ध्यान म रखते हुए हमने करियर मास्टरो के प्रशिक्षण कायक्रम की रूपरेखा प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

—निर्देशन की एतिहासिक पृष्ठभूमि।
—निदशन का आधुनिक सप्रत्यय।
—निर्देशन का महत्व।
—निदशन की प्रमुख सवाम्रों का परिचय।
—पर्यावर्णीय सूचनाम्रो के स्रोत।
—पर्यावर्णीय सेवा का विस्तृत ज्ञान।
—निर्देशन काण का आयोजन।
—पर्यावर्णीय सूचनाम्रो के सङ्कलन के सिद्धान्त एव विधियाँ।
—पर्यावर्णीय सूचनाम्रो के सचरण की विधियाँ।
—व्यावसायिक वार्ताम्रो तथा व्यावसायिक दिवसो का आयोजन।
—निर्देशन दिवस तथा अभिभावक दिवसो का आयोजन।
—व्यावसायिक सर्वेक्षण।

व्यावसायिक कार्य

(१) निर्देशन कोण का सगठन।
(२) पर्यावर्णीय सूचनाम्रो की समीक्षा।
(३) व्यावसायिक सूचना पत्रो का निर्माण।
(४) व्यावसायिक वार्ता की रूपरेखा बनाना।
(५) व्यावसायिक सर्वेक्षण।

(६) प्रशिक्षण की विधियाँ — स प्रशिक्षण म भी सद्धान्तिक काय के अतिरिक्त पर्याप्त मात्रा म व्यावहारिक काम होना चाहिए। जो काय करियर मास्टर को करते हैं उनका पूरा अभ्यास उसे प्रशिक्षण काल म करवाया जाना चाहिए। विविध पर्यावर्णीय सूचनाम्रो स उसे अवगत किया जाना चाहिए। सम्प्रेषण विधियो का भी उसे प्रशिक्षण प्राप्त होना चाहिए क्योकि पर्यावर्णीय सूचनाम्रो के सचरण हेतु उस इन विधियो का उपयोग करना पड़ता है।

(४) शिक्षक उपबोधको के लिए प्रशिक्षण कायक्रम

प्राय शिक्षक उपबोधक भी एक अशकालिक निर्देशन कायकर्ता होता है किन्तु उसका कार्यक्षेत्र करियर मास्टर से अधिक विस्तृत होता है। अत इसके प्रशिक्षण का भी स्तर अधिक ऊचा होना चाहिए। इसका काय केवल व्यावसायिक सूचनाम्रो का सङ्कलन – सचरण तक ही सीमित नही रहता। यह शक्षिक निर्देशन तथा कुछ सीमा तक व्यक्तित्व निर्देशन का भी काय करता है। इसम हम फिर भी वयक्तिक उपबोधन की अपेक्षा नहीं कर सकते। यह सामान्यतया सामूहिक निर्देशन विधियो को अपनाकर छात्रो की सामूहिक समस्याम्रो को सुलझाने का प्रयत्न करता

है। इस पृष्ठभूमि में यदि हम इस प्रशिक्षण कार्यक्रम के उद्देश्य प्रतिपादित करने का प्रयास करें तो अधिक उपयुक्त होगा।

(क) उद्देश्य —

—निर्देशन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से अवगत करना।

—निर्देशन के आधुनिक सम्प्रत्यय से अवगत करना।

—निर्देशन के प्रमुख सिद्धान्तों से अवगत करना।

—निर्देशन सेवाओं के संगठन के सिद्धान्तों एवं विधियों से अवगत करना।

—शिक्षक उपबोधक के उत्तरदायित्वों एवं गुणों से अवगत करना।

—भारतीय शालाओं के लिए न्यूनतम आवश्यक निर्देशन कार्यक्रम से अवगत करना।

—वैयक्तिक सूचनाओं को संकलित करने के प्रमापीकृत साधनों से परिचित कराना।

—पर्यावरणीय सूचनाओं के स्रोतों संकलन एवं वितरण विधियों से अवगत कराना।

—सामूहिक निर्देशन की विधियों से अवगत कराना।

(ख) अवधि— शाला उपबोधकों का कार्यक्षेत्र करियर मास्टरों की अपेक्षा अधिक विस्तृत होता है अतः इनके प्रशिक्षण की अवधि भी अधिक होना स्वाभाविक है। कुछ ब्यूरो के प्रशिक्षण कार्यक्रमों के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इन कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण की अवधि कम से कम ६ माह की होनी चाहिए। इसमें लगभग आधा समय व्यावहारिक कार्य (On the job Training) के लिए तथा प्रत्यक्ष व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिए दिया जाना चाहिए।

(ग) अभिकरण— इस कार्यक्रम को भी चलाने का उत्तरदायित्व राज्य निर्देशन ब्यूरो को ही सम्भालना चाहिए। वैसे शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों के बी० एड० पाठ्यक्रम में भी निर्देशन में विशेषज्ञता प्राप्त करने हेतु कुछ पाठ्यक्रम रखे जाते हैं किन्तु इनमें व्यावहारिक कार्य नहीं के बराबर होता है और न ही बी० एड० के व्यस्त कार्यक्रम में हम इसकी अधिक अपेक्षा ही कर सकते हैं। अतः इन पाठ्यक्रमों के आधार पर हम एक सफल शिक्षक उपबोधक के निर्माण की अपेक्षा नहीं कर सकते।

(घ) पाठ्यक्रम की अन्तर्वस्तु

(अ) सैद्धान्तिक —

(१) निर्देशन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि।

(२) निर्देशन का आधुनिक सम्प्रत्यय।

(३) निर्देशन का आधुनिक जटिल समाज में महत्त्व।

(४) निर्देशन सेवाओं का परिचय।

(५) निर्देशन सेवाओं के संगठन के सिद्धान्त।

(६) सामान्य भारतीय बालकों की निर्देशन आवश्यकताएं।

(७) न्यूनतम निर्देशन कार्यक्रम।

(८) व्यक्तिक सूचना संकलन के अमानकीकृत साधन एवं प्रविधियों तथा मानकीकृत सामूहिक परीक्षण।

(९) मानकीकृत एवं अमानकीकृत साधनों के उपयोग के सिद्धान्त।

(१०) पर्यावर्णीय सूचनाओं के प्राप्त संकलन एवं संचरण विधियाँ।

(११) सामूहिक निर्देशन की विधियाँ।

(आ) व्यावहारिक काम —

(१) मनोवैज्ञानिक सामूहिक परीक्षणों का उपयोग।

(२) अमानकीकृत साधनों का निर्माण।

(३) पर्यावर्णीय सूचनाओं का अध्ययन एवं समीक्षा।

(४) पर्यावर्णीय सूचनाओं के प्रदर्शन हेतु श्रव्य दृश्य सामग्री का निर्माण।

(५) व्यावसायिक वार्ताओं की रूपरेखा का निर्माण।

(६) व्यावसायिक सर्वेक्षण।

(७) सामूहिक निर्देशन का अभ्यास।

(इ) प्रशिक्षण विधियाँ— सैद्धान्तिक काम के लिए वार्ताओं चर्चाओं तथा श्रव्य दृश्य विधियों का प्रयोग किया जाना चाहिए। इस समस्त कार्यक्रम को तीन सोपानों में बाँटा जा सकता है।

(अ) प्रथम सोपान— इस सोपान में प्रशिक्षार्थी को निर्देशन के सैद्धान्तिक पक्ष से पूर्णतया अवगत कराना चाहिए तथा व्यावहारिक पक्ष से संबंधित ज्ञान प्रदान करना चाहिए। इसी सोपान में जिन विधियों साधनों अथवा उपकरणों की हम चर्चा कर उनका प्रत्यक्ष उपयोग भी करवाया जाना चाहिए ताकि प्रशिक्षार्थी में इनके सम्बन्ध का ज्ञान ही विकसित न हो किन्तु क्षमता भी विकसित हो। इस सोपान में लगभग तीन मास का समय लगाया जाना चाहिए।

(आ) द्वितीय सोपान— प्रथम तीन मास के प्रशिक्षण के पश्चात् प्रशिक्षार्थी को किसी शाला में पूर्णकालिक निर्देशन का काम करने के लिये रखा जाना चाहिए एवं उसका विशेषज्ञ के निर्देशन में निर्देशन कार्यक्रम संचालित करने का अवसर दिया जाना चाहिये। इस अवधि में प्रशिक्षार्थी को छात्रों की निर्देशन आवश्यकताओं के अध्ययन सामूहिक निर्देशन पर्यावर्णीय सूचनाओं के संकलन तथा उन संचरण अमानकीकृत साधनों के प्रयोग व्यावसायिक वार्ताओं के आयोजन शिक्षक अभिभावक सम्मेलन आयोजन आदि महत्वपूर्ण निर्देशन प्रवृत्तियों का अनुभव प्राप्त होना चाहिये। इस महत्वपूर्ण सोपान के लिये लगभग दो या ढाई मास की अवधि रखी जा सकती है।

(३) तृतीय सोपान — उपयुक्त सोपान के पश्चात् प्रशिक्षार्थी पुनः एकत्रित होकर अपने अनुभवों की चर्चा कर सकते हैं तथा अपनी अपनी शालाओं के लिए एक न्यूनतम निर्देशन कार्यक्रम की रूपरेखा बना सकते हैं। इस अन्तिम सोपान में प्रशिक्षार्थियों से कुछ क्षेत्र कार्य (Field work) करवाया जा सकता है जैसे व्यावसायिक सर्वेक्षण स्थानीय व्यावसायिक जगत का अध्ययन कुछ शिक्षक निर्मित साधनों का निर्माण आदि।

इसी सोपान के अन्त में प्रशिक्षार्थियों का मूल्यांकन भी हो जाना चाहिये।

(४) शाला उपबोधकों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम

इस श्रेणी में वे निर्देशन कार्यकर्त्ता आते हैं जिनका एकमेव कार्य निर्देशन एवं उपबोधन है। अतः इन कार्यकर्त्ताओं का प्रशिक्षण अत्यन्त गहन एवं व्यावहारिक होना चाहिये। इन से हम यह अपेक्षा कर सकते हैं कि वे निर्देशन की हर सेवा को कुशलतापूर्वक सचालित कर सकें। इनसे वैयक्तिक उपबोधन की भी अपेक्षा की जा सकती है। इन सब अपेक्षाओं को ध्यान में रखते हुए हमें इनके प्रशिक्षण के उद्देश्यों को प्रतिपादित करना चाहिये।

(अ) ज्ञानात्मक

—निर्देशन के इतिहास विकासात्मक स्वरूप महत्त्व एवं सिद्धान्तों से प्रशिक्षार्थी को अवगत करना।

—निर्देशन की प्रमुख सेवाओं के सम्बन्ध में जानकारी देना।

—वैयक्तिक सूचनाओं के संकलन की मानकीकृत एवं अमानकीकृत विधियों से अवगत करना।

—पर्यावरणीय सूचनाओं के स्रोतों संकलन एवं संचरण विधियों से अवगत करना।

—उपबोधन की प्रक्रिया से अवगत करना।

—व्यक्तित्व एवं समंजन के मनोविज्ञान से अवगत करना।

(आ) क्रियात्मक

निर्देशन सेवाओं के संचालन का अनुभव प्रदान करना।

उपबोधन साक्षात्कार सचालित करने की क्षमता उत्पन्न करना।

मानकीकृत एवं अमानकीकृत साधनों का उपयोग कर सकने की क्षमता उत्पन्न करना।

पर्यावरणीय सूचनाओं का समीक्षा कर सकने की क्षमता उत्पन्न करना।

निर्देशन कोण निर्देशन प्रदर्शिनिया निर्देशन दिवस अभिभावक दिवस आदि आयोजित कर सकने की क्षमता उत्पन्न करना।

पर्यावरणीय सूचनाओं के संचरण हेतु श्रव्य-दृश्य सामग्री का निर्माण कर सकने की क्षमता उत्पन्न करना।

व्यावसायिक वार्ताएं दे सकने की क्षमता उत्पन्न करना।

सामूहिक तथा वैयक्तिक निर्देशन विधियों को काम में ला सकने की क्षमता उत्पन्न करना।

(ख) अवधि— इस विस्तृत प्रशिक्षण कार्यक्रम की अवधि कम से कम एक वर्ष की होनी चाहिए तभी इतने विस्तृत सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक उद्देश्यों की पूर्ति की हम अपेक्षा कर सकते हैं। एक वर्ष की अवधि में से लगभग आधा समय व्यावहारिक कार्य *(On the job training)* तथा प्रत्यक्ष व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिए रखा जाना चाहिए।

(ग) अभिकरण—यह प्रशिक्षण राज्य निर्देशन ब्यूरो अथवा राष्ट्रीय अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद् के निर्देशन एवं उपबोधन विभाग द्वारा ही उत्तम रीति से दिया जा सकता है। यद्यपि शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में भी एम० एड० स्तर पर निर्देशन एवं उपबोधन में विशेषज्ञता पाठ्यक्रमों का आयोजन होता है। किन्तु इन पाठ्यक्रमों में एक तो पर्याप्त व्यावहारिक प्रशिक्षण नहीं मिल पाता और दूसरा इस विषय के अतिरिक्त अन्य विषयों का भी अध्ययन करना होता है। अतः एक कुशल उपबोधक के प्रशिक्षण में जितनी गहराई आनी चाहिए वह नहीं आ पाती। फिर शिक्षक महाविद्यालयों के पास समुचित व्यावहारिक प्रशिक्षण हेतु आवश्यक साधन सुविधाएं भी नहीं होतीं। अतः प्रारम्भ में उल्लिखित राज्य स्तरीय एवं राष्ट्रीय अभिकरण ही इस प्रशिक्षण को ठीक ढंग से संचालित कर सकते हैं।

(घ) पाठ्यक्रम की अन्तर्वस्तु—इस पाठ्यक्रम की सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों ही अन्तर्वस्तुएं पर्याप्त विस्तृत होनी चाहिए। उपबोधक को निर्देशन के दार्शनिक सिद्धान्तों एवं आधारों से तो पूर्णरूपेण परिचित होना ही चाहिए साथ ही उसमें निर्देशन की विविध प्रवृत्तियों का सफल संचालन कर सकने की भी क्षमता होनी चाहिए। शाला उपबोधकों के लिए आयोजित विभिन्न प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों के विश्लेषण के फलस्वरूप हम निम्नलिखित पाठ्यक्रम प्रस्तावित करना चाहेंगे।

(अ) सैद्धान्तिक

निर्देशन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि।

निर्देशन का विकासात्मक स्वरूप एवं आधुनिक सम्प्रत्यय।

निर्देशन के दार्शनिक आर्थिक सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक आधार।

शिक्षा एवं निर्देशन।

मूलभूत निर्देशन सेवाएं एवं इनके संगठन के सिद्धान्त।

सामूहिक निर्देशन की विधियाँ।

वैयक्तिक उपबोधन एवं उपबोधन साक्षात्कार।

वैयक्तिक सूचना संकलन के साधन एवं प्रविधियाँ।

(अ) मानकीकृत (आ) अमानकीकृत।

मानकीकृत एवं अमानकीकृत साधनों के प्रयोग के सिद्धान्त।

पर्यावर्णीय सूचनाओं के स्रोत।

पर्यावर्णीय सूचनाओं के सकलन संगठन एवं संचरण के सिद्धान्त एवं विधियाँ।

भारतीय शालाओं के लिए न्यूनतम आवश्यक निर्देशन कार्यक्रम।

(आ) व्यावहारिक

सामूहिक निर्देशन का अनुभव।

वैयक्तिक उपबोधन तीन या अधिक बालकों को उपबोधन देना।

मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के प्रयोग का पर्याप्त अनुभव।

अ-मानकीकृत साधनों का निर्माण।

पर्यावर्णीय सूचनाओं की समीक्षा।

पर्यावर्णीय सूचनाओं के संचरण हेतु श्रव्य दृश्य सामग्री का निर्माण।

व्यावसायिक वार्त्ताओं का आयोजन।

निर्देशन दिवस निर्देशन प्रदर्शिनियों अभिभावक दिवस आदि प्रवृत्तियों का आयोजन।

व्यावसायिक सर्वेक्षण।

स्थानीय व्यावसायिक जगत का अध्ययन।

कुछ समय तक किसी शाला में उपबोधक के रूप में प्रत्यक्ष कार्य करने का अनुभव।

(ड) प्रशिक्षण विधियां—शाला उपबोधक के प्रशिक्षण को भी तीन सोपानों में बाँटा जा सकता है।

(अ) प्रथम सोपान—इसमें प्रशिक्षार्थियों को पर्याप्त सैद्धान्तिक जानकारी वार्त्ताओं चर्चाओं श्रव्य दृश्य सामग्री द्वारा साहित्य के अध्ययन के माध्यम से दी जानी चाहिए। इसी सोपान में यथास्थान व्यावहारिक कार्य भी करवाया जाना चाहिए। जैसे मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की चर्चा के साथ प्रशिक्षार्थियों को उनके प्रयोग का व्यावहारिक अनुभव भी दिया जाना चाहिए।

(आ) द्वितीय सोपान—इस सोपान में प्रशिक्षार्थियों को कुछ शालाओं के साथ संयुक्त कर उपबोधक के रूप में कार्य करने का अनुभव प्रदान किया जाना चाहिए। यहाँ मार्गदर्शन हेतु आवश्यक विशेषज्ञों का भी प्रावधान होना आवश्यक है। यह अनुभव एक सफल उपबोधक बनने के लिए आवश्यक है।

(इ) तृतीय सोपान—इस अंतिम सोपान में प्रशिक्षार्थियों के अनुभव के आधार पर कुछ प्रमुख सिद्धान्तों की चर्चा की जा सकती है तथा उनकी कठिनाइयों के निराकरण पर चर्चा हो सकती है। इसी सोपान में प्रशिक्षार्थियों से व्यावसायिक सर्वेक्षण व्यावसायिक जगत का अध्ययन आदि कार्य भी करवाये जा सकते हैं। इस

सोपान के अन्त में प्रशिक्षार्थियों की क्षमताओं के मूल्यांकन का भी प्रावधान होना चाहिए।

उपसंहारात्मक कथन

निर्देशन कार्यक्रम की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि इस कार्यक्रम का संचालन उपयुक्त प्रशिक्षित व्यक्तियों द्वारा किया जाए। निर्देशन कार्यक्रम के संचालन में अनेक व्यक्तियों द्वारा सहयोग लिया जाता है किन्तु प्रत्येक व्यक्ति का प्रशिक्षण एक समान हो यह आवश्यक नहीं। इस अध्याय में इन्हीं विभिन्न स्तरीय निर्देशन प्रशिक्षण कार्यक्रमों की चर्चा की गई है। प्रत्येक कार्यक्रम के उद्देश्य उनका स्वरूप एवं उसके संचालन की विधियों में अन्तर होना स्वाभाविक है। अतः इन विविध स्तरीय कार्यक्रमों की चर्चा निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत की गई है—उद्देश्य, अवधि, अभिकरण, पाठ्यक्रम की विषयवस्तु एवं प्रशिक्षण विधियाँ। इस अध्याय में वर्णित प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों की रूपरेखा प्रस्तुत करते समय विभिन्न राज्य स्तरीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर प्रचलित पाठ्यक्रमों तथा शिक्षक महाविद्यालय में प्रचलित निर्देशन पाठ्यक्रमों को ध्यान में रखा गया है।

भारत मे निदेशन अभिकरण

(अन्तर्राष्ट्रीय अभिकरण राष्ट्रीय स्तर के अभिकरण) (१) केन्द्रीय शैक्षिक एव व्यावसायिक ब्यूरो (२ डायरेक्टरेट जनरल आफ रीसेटलमेन्ट एण्ड एम्प्लायमेन्ट (३) अभिकरण जिनसे फिल्म तथा फिल्मस्ट्रिप प्राप्त की जा सकती हैं। (४) प्रकाशन विभाग (भारत सरकार) (५) विभिन्न केन्द्रीय मत्रालय (६) अखिल भारतीय शैक्षिक एव व्यावसायिक निर्देशन सघ

राज्य स्तरीय अभिकरण—(१) राज्य शैक्षिक एव व्यावसायिक निर्देशन ब्यूरो (२) राज्य मनोवैज्ञानिक ब्यूरो (३) शिक्षक महाविद्यालय (४) विश्व विद्यालय (५) नियोजन कार्यालय (६) रेडियो प्रसारण

अन्य अभिकरण—(उपसहारात्मक कथन)

निर्देशन की विचारधारा को आगे बढ़ाने के लिए हमारे देश मे विभिन्न अभिकरण क्रियाशील हैं। अनेक सरकारी अभिकरण तो निर्देशन के क्षेत्र म कार्यरत हैं ही किन्तु कुछ गैर सरकारी अभिकरण भी इस दिशा म महत्वपूर्ण कार्य कर रहे है। इस अध्याय म इन निर्देशन अभिकरणो के सम्बन्ध म चर्चा की जाएगी। निर्देशन अभिकरण निर्देशन के क्षेत्र म अनेक कार्य कर सकते हैं। इन कार्यों म प्रशिक्षण प्रकाशन अनुस्थापन परीक्षण निर्माण अनुसधान एव प्रत्यक्ष निर्देशन सम्मिलित है। आवश्यक नही कि प्रत्येक अभिकरण इन सब कार्यों को हाथ मे ले। हम इन अभिकरणो को चार स्तरो म बाँट सकते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के अभिकरण राष्ट्रीय स्तर के अभिकरण राज्य स्तरीय अभिकरण एव अन्य अभिकरण। अब हम इन अभिकरणो की चर्चा निम्नलिखित अनुच्छेदो म करेगे।

अन्तर्राष्ट्रीय अभिकरण

यद्यपि इस अध्याय का शीर्षक भारत म निर्देशन अभिकरण है फिर भी भारतीय निर्देशन कार्यकर्त्ताओ के प्रशिक्षण हेतु अन्तरराष्ट्रीय अभिकरण किस प्रकार सहायक हो सकते हैं इसकी यहा चर्चा करना अनुपयुक्त नहीं होगा। U S E F I U N E S C O British Council U S I S आदि ऐसी सस्थाएं हैं जिनके सहयोग से भारतीय निर्देशन कार्यकर्त्ताओ को निर्देशन की नवीनतम विचार धाराओ एव कार्यपद्धतियो से अवगत करने हेतु कुछ कार्यक्रम आयोजित किए जा सकते है। इन कार्यक्रमो के अन्तर्गत भारतीय निर्देशन कार्यकर्त्ताओ को विदेशो म

भेजकर प्रशिक्षित करने का प्रावधान रखा जा सकता है साथ ही विदेशी निर्देशन विशेषज्ञों को भारत में बुलाकर यहां के कार्यकर्ताओं को अनुस्थापित करने की योजना बनाई जा सकती है। इस प्रकार निरंतर प्रशिक्षण कार्यक्रम की योजना कार्यान्वित करने से निदेशन कार्यक्रम पुरानी विचारधाराओं पर चलने की आशंका कम हो सकती है।

प्रशिक्षण एवं अनुस्थापन के अतिरिक्त भी अन्य अन्तर्राष्ट्रीय अभिकरणों से हम निदेशन सम्बन्धी सूचनाएं तथा अन्य दृश्य सामग्री प्राप्त कर सकते हैं।

राष्ट्रीय स्तर के अभिकरण

निर्देशन के क्षेत्र में प्रमुख राष्ट्रीय स्तर का अभिकरण केन्द्रीय शिक्षा एवं निर्देशन ब्यूरो है। इस केन्द्रीय अभिकरण से राज्य स्तरीय अभिकरणों को निर्देशन एवं प्रेरणा प्राप्त हो सकती है। इसके अतिरिक्त विभिन्न मन्त्रालय भी प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से निर्देशन कार्यक्रम का सफल संचालन हेतु किसी न किसी रूप में सहायता प्रदान कर सकते हैं।

निम्नलिखित अनुच्छेदों में इन अभिकरणों के कार्यों का संक्षिप्त परिचय दिया जाएगा।

(१) केन्द्रीय शैक्षिक एवं व्यावसायिक ब्यूरो—Central Bureau of Educational and Vocation Guidance C B E V G)

इस केन्द्रीय ब्यूरो की स्थापना १९५४ ई० में हुई थी और इसका प्रमुख कार्य है भारत में निर्देशन की विचारधारा को क्रियात्मक रूप देकर इसके संचालन में सहायता प्रदान करना। प्रारम्भ में यह ब्यूरो सेन्ट्रल इंस्टीट्यूट आफ एजूकेशन देहली के एक अंग के रूप में कार्य करता रहा फिर नेशनल इन्स्टीटयूट आफ एजूकेशन (एन सी ई आर टी) के एक स्वतन्त्र विभाग के रूप में इस संस्था ने कार्य किया और अब एन सी ई आर टी के डिपार्टमेंट आफ एजूकेशनल साइकालोजी एण्ड फाउंडेशन आफ एजूकेशन के एक विभाग के रूप में यह ब्यूरो कार्य कर रहा है। इस ब्यूरो ने निर्देशन की विचारधारा को सफल बनाने हेतु अनेक प्रकार की गतिविधियों को हाथ में लिया है। इस ब्यूरो की लगभग सभी क्षेत्रों में महत्वपूर्ण देन रही है।

(क) प्रकाशन—केन्द्रीय ब्यूरो के कुछ महत्वपूर्ण प्रकाशन है जिनमें गाइडेंस न्यूज नामक एक पत्रिका विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह त्रैमासिक पत्रिका निःशुल्क प्रकाशित की जाती है एवं प्रत्येक निर्देशन कार्यकर्ता के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकती है। इसमें निर्देशन सम्बन्धी उपयोगी सूचनाएं प्राप्त की जा सकती है। इसी प्रकार इस ब्यूरो द्वारा प्रकाशित गाइडेंस रिव्यू भी एक उपयोगी त्रैमासिक प्रकाशन है। इसमें निर्देशन से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण लेख अनुसंधान समीक्षाएं एवं समाचार प्रकाशित किए जाते हैं। इन त्रैमासिक पत्रिकाओं के अतिरिक्त ब्यूरो

निर्देशन सम्बन्धी अन्य सूचनाएं भी प्रकाशित करता है जैसे You and your future Know your air force Know your Navy आदि। केन्द्रीय ब्यूरो ने भारत सरकार के फिल्म डिवीजन को कुछ फिल्म बनाने में भी सहयोग दिया है। इस अभिकरण से हम निर्देशन से सम्बन्धित अनेक फिल्म भी प्राप्त हो सकती हैं।

(ख) प्रशिक्षण—केन्द्रीय ब्यूरो का दूसरा प्रमुख प्रवृत्ति है निर्देशन कार्य कर्ताओं का प्रशिक्षण। ब्यूरो पूर्वकालिक उपबोधकों के लिए एक वर्षीय डाइप्लेमा डिप्लोमा पाठ्यक्रम सचालित करता है जिसमें एम एड की उपाधि प्राप्त किए हुए व्यक्ति प्रशिक्षण प्राप्त कर सकते हैं। इस एक वर्षीय कार्यक्रम के अतिरिक्त भी ब्यूरो ने संवारत शिक्षकों के अनुस्थापन के लिये अनेक अल्पकालीन पाठ्यक्रमों का सचालन किया है।

(ग) अनुसंधान—केन्द्रीय ब्यूरो एक राष्ट्रीय संस्था होने के कारण भारत में निर्देशन का क्या स्वरूप हो इस कार्यक्रम के सचालन में आने वाली कठिनाइयों का क्या हल निकाला जाय आदि विषयों पर अनुसंधान करने का भी उत्तरदायित्व इस संस्था पर आता है।

(2) डाइरेक्टरेट जनरल आफ रीसेटलमेंट एण्ड एम्प्लायमेट (D G R & E)

डी जी आर एण्ड ई केन्द्रीय एवं श्रम पुनर्वास एवं नियोजन मन्त्रालय का एक अंग है। यह भी निर्देशन का महत्त्वपूर्ण अभिकरण है। डी जी आर एण्ड ई ने निर्देशन के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। राष्ट्र में जितने नियोजन कार्यालय (Employment exchanges) हैं वे इसी विभाग के अन्तर्गत आते हैं। इन नियोजन कार्यालयों की स्थापना के समय इनका प्रमुख कार्य पाकिस्तान से आये हुए विस्थापितों को पुनर्वासित करना था। इन विस्थापितों के अतिरिक्त सेना से सेवानिवृत्त कार्मिकों को असैनिक जीवन में पुनर्वासित करने का कार्य भी इन कार्यालयों ने किया। तत्पश्चात् इन नियोजन कार्यालयों ने विभिन्न राज्य सरकारों को पिछड़ी जाति तथा अनुसूचित जाति के व्यक्तियों की भर्ती में सहायता प्रदान की। आज सब राज्यों के प्रत्येक जिले में एक नियोजन कार्यालय स्थापित किया गया है जिसका कार्य नौकरी चाहने वाले व्यक्तियों को नौकरी प्राप्त करने में सहायता प्रदान करना तथा नियोक्ताओं को उचित कर्मचारियों के चयन में सहायता प्रदान करना है। यह भी निर्देशन की एक महत्त्वपूर्ण सेवा है। इस प्रक्रिया में नियोजन कार्यालय यदि प्रार्थियों को व्यावसायिक उपबोधन भी दे सकें तो और उपादेय होगा।

डी जी आर एण्ड ई का निर्देशन के क्षेत्र में एक और महत्त्वपूर्ण योगदान इस विभाग के प्रकाशन हैं। इस विभाग ने लगभग ८९ भारतीय व्यवसायों के सम्बन्ध में सम्पन्न सूचना प्रदान करने वाले व्यवसाय सूचनापत्र (Career Pamphlets) प्रकाशित किए हैं। इन्हें सीधे इस विभाग से अथवा स्थानीय नियोजन

कार्यालयों में प्राप्त किया जा सकता है। इस विभाग ने देश में जो प्रशिक्षण सुविधाएं हैं उनकी सूचनाओं को एक "हैन्डबुक आफ ट्रेनिंग फसिलिटीज" नामक पुस्तिका में प्रकाशित किया है। इस विभाग ने व्यावसायिक सर्वेक्षण भी प्रकाशित किए हैं जिनमें व्यवसायों से सम्बन्धित अधिक विस्तृत सूचनाएं सम्मिलित हैं। ये सर्वेक्षण प्रतिवेदन प्रत्येक निर्देशन ब्यूरो तथा निर्देशन केन्द्रों के लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

डी० जी० ई० आर० टी० ने निर्देशन के क्षेत्र में कई महत्त्वपूर्ण अनुसंधान कार्य भी किए हैं जिनमें राष्ट्रीय व्यवसायों का वर्गीकरण (National Classification of occupation) एक महत्त्वपूर्ण देन है।

डी० जी० ई० आर० टी० ने नियोजन कार्यालयों के कार्यक्षेत्र को अधिक व्यापक बनाने हेतु द्वितीय पंचवर्षीय योजना में युवक नियोजन सेवाओं (Youth Employment Service) की स्थापना की। विभिन्न नियोजन कार्यालयों में व्यावसायिक निर्देशन केन्द्र स्थापित किए गए। इन केन्द्रों के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं (i) युवकों को सम्भावित व्यावसायिक सम्भावनाओं से अवगत करना (ii) व्यवसायों से सम्बन्धित उच्च शिक्षण की सम्भावनाओं से अवगत करना (iii) युवकों को उचित व्यवसाय में प्रवेश प्राप्त करने में सहायता प्रदान करना तथा (iv) नियोजन एवं प्रशिक्षण से सम्बन्धित विविध समस्याओं के हल में सहायता प्रदान करना। इन व्यावसायिक निर्देशन केन्द्रों में व्यक्तिगत एवं सामूहिक दोनों ही विधियों से युवकों को उपबोधन सेवा प्रदान की जाती है।

डी० जी० ई० आर० एण्ड ई० निर्देशन के क्षेत्र में प्रकाशन, अनुसंधान, प्रत्यक्ष निर्देशन के अतिरिक्त प्रशिक्षण का भी कार्य किया गया है। इस विभाग ने कई निर्देशन कार्यकर्त्ताओं को प्रशिक्षण दिया है जो नियोजन कार्यालयों अथवा व्यावसायिक निर्देशन केन्द्रों को संचालित कर रहे हैं।

( ) अभिकरण जिनसे फिल्में तथा फिल्मस्ट्रिप्स प्राप्त की जा सकती हैं

करियर मास्टर तथा शाला उपबोधकों को पर्यावर्णीय सूचनाओं को प्रसारित करने हेतु फिल्म तथा फिल्मस्ट्रिप्स का प्रयोग करना चाहिए। श्रव्य दृश्य सामग्री के उपयोग से सूचनाएं प्रभावोत्पादक रूप से प्रस्तुत की जा सकती हैं। फिल्म तथा फिल्मस्ट्रिप्स केन्द्रीय सूचना तथा प्रसारण मंत्रालय के फिल्म डिवीजन, राज्य शिक्षा विभागों के श्रव्य-दृश्य विभागों, केन्द्रीय शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन ब्यूरो, डिपार्टमेन्ट आफ टीचिंग ऐड्स (एन० सी० ई० आर० टी०) आदि अभिकरणों से प्राप्त की जा सकती हैं। इनके अतिरिक्त एल० मारविन, इंडिया, ७६ गोधा स्ट्रीट फोर्ट बम्बई-१, आमा लिमिटेड, दादाभाई नौरोजी रोड बम्बई १ तथा नेशनल एज्यूकेशनल एण्ड इनफारमेशन फिल्म लिमिटेड नेशनल हाउस अपोलो बन्दर, बम्बई १ व्यापारिक संस्थाओं से निर्देशन सम्बन्धी फिल्म खरीदी जा सकती हैं। निर्देशन

स सम्बंधित उपयोगी फिल्म तथा फिल्मस्टिप की सूची हैण्डबुक फार वरियर मास्टस (एन सी इ आर टी) नामक पुस्तिका म स प्राप्त की जा सकती है।

(४) प्रकाशन विभाग (भारत सरकार)

निर्देशन क लिए उपयोगी सूचना सामग्री प्रकाशन विभाग भारत सरकार ओल्ड सेक्रेट्रिएट देहली-६ द्वारा भी प्रकाशित की जाती है। निर्देशन कार्यकर्ताओ को इस अभिकरण से भी सम्पर्क बनाए रखना चाहिए। इस विभाग क प्रकाशनो मे प्रमुख प्रकाशन निम्नलिखित हैं —

1 Government of India Scholarships for Students in India

2 Scholarships for Study Abroad

3 Directory of Institutions for Higher Education in India

उपयुक्त प्रकाशन को प्रत्येक निर्देशन कार्यकर्ताओ को अपनी शालाओ के लिये अवश्य मगवा लेने चाहिए।

(५) विभिन्न केन्द्रीय मन्त्रालय

छात्रो को व्यावसायिक एव शक्षिक सूचनाए प्रदान करने हेतु विभिन्न मन्त्रालयो स सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है। शिक्षा मन्त्रालय प्रतिरक्षा मन्त्रालय रेल मन्त्रालय आदि इस दिशा म योगदान दे सकते हैं। हमारे छात्रो के लिए इन क्षेत्रो में क्या शक्षिक अथवा व्यावसायिक सम्भावनाए हैं यह सूचनाए इन मन्त्रालयो स प्राप्त की जा सकती हैं।

(६) अखिल भारतीय शक्षिक एव व्यावसायिक निदशन सघ

(All India Educational and Vocational Guidance Association)

इस सस्था का भी निर्देशन की विचारधारा को आगे बढाने म योगदान रहा है। इस सघ क प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं —

(क) समस्त भारत म हो रह निर्देशन कार्यों का समन्वय करना।

(ख) निर्देशन की गतिविधिया का स्तर निर्धारण करना।

(ग) निर्देशन की विचारधारा को लोकप्रिय बनाना।

(घ) निर्देशन क क्षेत्र म कायरत कार्यकर्ताओ को एकत्रित कर विचारो का आदान प्रदान करना तथा क्षेत्र म हो रह अनुसन्धान एव अन्य कार्यों का प्रसारित करना।

यह सघ जरनल आफ वोकेशनल एण्ड एज्युकेशनल गाइडेन्स नामक पत्रिका भी प्रकाशित करता रहा है जिसम निर्देशन सम्बन्धी उपयोगी अनुसधान सामग्री एव अन्य सूचनाए प्रकाशित होती हैं।

प्रत्येक निर्देशन कायकर्ता को इस अखिल भारतीय सघ का सदस्य बन व्यावसायिक गतिविधिया स अवगत रहने का प्रयास करना चाहिए।

राज्य स्तरीय अभिकरण

(१) राज्य शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन ब्यूरो

माध्यमिक शिक्षा आयोग (१९५२) ने बहुउद्देशीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों की स्थापना की सिफारिश की और इस सिफारिश को कई राज्यों में कार्यान्वित भी किया गया। बहुउद्देशीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय की स्थापना के फलस्वरूप शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन की अधिकाधिक आवश्यकता अनुभव की जाने लगी। निर्देशन की इस आवश्यकता को अनुभव करने के फलस्वरूप कई राज्यों ने अपने राज्य में निर्देशन कार्यक्रम के सफल संचालन हेतु राज्य निर्देशन ब्यूरो स्थापित किए। अब लगभग सभी राज्यों में निर्देशन ब्यूरो पाए जाते हैं। राजस्थान शिक्षा विभाग ने भी सन १९५८ मे राज्य निर्देशन ब्यूरो की स्थापना की जिसका कार्यालय बीकानेर में स्थित है।

इन राज्य स्तरीय निर्देशन ब्यूरो के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं —

(क) निर्देशन कार्यकर्ताओं का प्रशिक्षण— राज्य निर्देशन ब्यूरो करियर मास्टर तथा शाला उपबोधकों के प्रशिक्षण हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करते हैं। इन प्रशिक्षण कार्यक्रमों के अतिरिक्त अनुस्थापन कार्यक्रम, संगोष्ठियाँ, सम्मेलन आदि आयोजित करना भी इन ब्यूरो की सामान्य गतिविधियाँ हैं।

(ख) प्रकाशन— राज्य निर्देशन ब्यूरो निर्देशन सम्बन्धी विविध सूचनाओं का भी प्रकाशन समय समय पर करते हैं। राजस्थान ब्यूरो 'राजस्थान गाइडेंस न्यूज लैटर' नामक पत्रिका भी प्रकाशित करता है जिसमें निर्देशन सम्बन्धी नवीन राज्य में इस क्षेत्र में हो रही गतिविधियों का वर्णन, उपबोधकों के लिए आवश्यक सूचनाएँ आदि महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रकाशित की जाती है। प्रत्येक शाला में इस पत्रिका को मँगवाना चाहिए।

(ग) अनुसन्धान— निर्देशन के क्षेत्र में अनुसन्धान करना भी इस अभिकरण का एक प्रमुख उत्तरदायित्व है। यहाँ पूर्णकालिक निर्देशन कार्मिक होते हैं जो अनेक क्षेत्रों में अनुसन्धान कार्य हाथ में ले सकते हैं।

(घ) साधनों का निर्माण— भारतीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए उपयुक्त मानकीकृत एवं प्रमाणीकृत साधनों का भी निर्माण कई राज्य ब्यूरोज ने किया है। संचित अभिलेख पत्र, व्यावसायिक अभिरुचि सूचियाँ, अभिभावक व्यावसायिक सम्पत्ति पत्र आदि ऐसे प्रमाणीकृत साधन हैं जो लगभग सभी ब्यूरोज द्वारा निर्मित किए गए हैं। कुछ ब्यूरोज ने मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का भी निर्माण अथवा अनुकूलन किया है। जैसे उड़ीसा ब्यूरो ने एक शाब्दिक मानसिक परीक्षण का निर्माण किया है इसी प्रकार बिहार ब्यूरो ने वेक्सलर इन्टेलीजेन्स स्केल, बेल एडजस्टमेंट इन्वेन्टरी, रेन की स्टडी हैबिट इनवेन्टरी आदि परीक्षणों के भारतीय अनुकूलनों का निर्माण किया है तथा कुछ नये परीक्षण भी बनाए हैं। इसी प्रकार

न्य ब्यूरोज की भी इस क्षेत्र म महत्वपूर्ण दन रही है।

(ग) राज्य मे निर्देशन कायक्रमों का समन्वय तथा मार्गदर्शन—शालाओं म जो निर्देशन कायकर्ता काय करते हैं व मार्गदर्शन की अपेक्षा ब्यूरो मे ही करते हैं। अत ब्यूरो अपना विभिन्न सेवाओं के माध्यम से इन कायकर्ताओं का मार्गदर्शन करता है। राजस्थान म बड़े नगरो म एक पूर्णकालिक उपबोधक का प्रावधान किया गया है। इसे प्रायमिक दृष्टि से तो ये उपबोधक जिस शाला म इनका कायक्रम चलता है वहा के प्रधानाध्यापक के अधीन होते हैं किन्तु इन्हे मार्गदर्शन देने का काय एव सारी गतिविधियों के समन्वय का काय ब्यूरो द्वारा ही किया जाता है।

(घ) प्रत्यक्ष निर्देशन—कई राज्य ब्यूरो भी बालकों को प्रत्यक्ष शैक्षिक एव व्यावसायिक निर्देशन देने का भी काय सचालित करते हैं। राजस्थान राज्य ब्यूरो छात्रों को विषय चयन मे निर्देशन का काय करता है।

(२) राज्य मनोविज्ञान ब्यूरो

कुछ राज्यो म मनोविज्ञान ब्यूरो भी हैं जो कुछ सीमा तक निर्देशन काय मे सहायता प्रदान करते हैं। उत्तरप्रदेश के इलाहाबाद मनोवैज्ञानिक ब्यूरो का मान कीकृत परीक्षण निर्माण के क्षेत्र म महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इसी प्रकार इन ब्यूरोज द्वारा किए गए शोध कार्यों का भी लाभ निर्देशन कायकर्ता उठा सकते हैं।

(३) शिक्षक महाविद्यालय

शिक्षक महाविद्यालय भी अपने सेवा प्रसार विभागो के माध्यम से प्रशासन एव प्रशिक्षण का काय करते हैं जिनका कि लाभ निर्देशन कायकर्ताओं को मिल सकता है। इन महाविद्यालय के पुस्तकालयो मनोवैज्ञानिक प्रयोगशालाओं तथा अनुसंधान विभागो का लाभ भी निर्देशन कायकर्ताओं को मिल सकता है।

(४) विश्वविद्यालय

जिन विश्वविद्यालयो म मनोविज्ञान विभाग हैं वहा से भी निर्देशन काय कर्ताओं को सहायता मिल सकती है। मानकीकृत साधनो अथवा इन विभागो द्वारा किये गए शोध कार्यों के रूप मे हम इनका लाभ उठा सकते हैं।

(५) नियोजन कार्यालय

स्थानीय नियोजन कार्यालयो से सहयोग प्राप्त कर शाला के निर्देशन काय क्रम को सबल बनाया जा सकता है। इन कार्यालयो म सूचना सामग्री श्रव्य दृश्य सामग्री आदि प्राप्त की जा सकती है तथा छात्रो को नौकरी प्राप्त करने म सहायता प्रदान करने म इन कार्यालयो का सहयोग प्राप्त किया जा सकता है।

(६) रेडियो प्रसारण

आजकल रेडियो लगभग सभी ग्रामीण क्षेत्रो तक पहुँच गए हैं अत रेडियो प्रसारणो का उपयोग व्यावसायिक वार्ताओं को तथा अन्य छात्रोपयोगी सूचनाओं

को प्रसारित करने के लिए किया जा सकता है। इससे ग्रामीण छात्रों को भी निर्देशन सेवाओं का कुछ लाभ मिल सकेगा। अभी इस अभिकरण के उपयोग की समस्त सम्भावनाओं को हमारे देश में नहीं खोजा गया है।

अन्य अभिकरण

उपरोक्त अनुच्छेदों में हमने जिन राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरीय अभिकरणों का उल्लेख किया उनमें से अधिकतर राजकीय अभिकरण हैं। किन्तु इन अभिकरणों के अतिरिक्त कुछ अराजकीय अभिकरण भी निर्देशन के क्षेत्र में क्रियाशील हैं और इनका योगदान भी इस क्षेत्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। देखा जाए तो भारत में निर्देशन सेवाओं का प्रारम्भ पारसी पंचायत नामक एक अराजकीय अभिकरण द्वारा ही किया गया था। अराजकीय अभिकरणों द्वारा मुख्यतः निर्देशन सूचना सामग्री के प्रकाशन का कार्य किया जाता है। कुछ अराजकीय अभिकरण प्रत्यक्ष व्यावसायिक निर्देशन का भी कार्य करते हैं। भारत में प्रमुख अराजकीय निर्देशन अभिकरणों में वाई एम सी ए (Y M C A) रोटरी क्लब ऐसे अभिकरण हैं जिनके निर्देशन सम्बन्धी प्रकाशन महत्वपूर्ण हैं। इनके अतिरिक्त गुजरात रिसर्च सोसायटी बम्बई वोकेशनल एण्ड एज्यूकेशनल गाइडेंस सर्विस जलन्धर पंजाब ये ऐसे अराजकीय अभिकरण हैं जो निर्देशन एवं उपबोधन का कार्य भी करते हैं।

उपसंहारात्मक कथन

एक कुशल निर्देशन कार्यकर्ता को अपने देश में जो भी निर्देशन अभिकरण हों उनसे परिचित होना चाहिए तथा उनसे सम्पर्क स्थापित करने का प्रयास करना चाहिए। इन अभिकरणों से उसे अनेक प्रकार की सम्पन्न सामग्री प्राप्त हो सकती है तथा अपने कार्यक्रम को सफल बनाने हेतु आवश्यक मार्गदर्शन भी प्राप्त हो सकता है। उपर्युक्त अभिकरणों में से अनेक अभिकरणों से निःशुल्क सूचना सामग्री तथा अन्य आवश्यक सहायता प्राप्त कर कम व्यय में निर्देशन कार्यक्रम के स्तर को ऊँचा उठाया जा सकता है। आल इण्डिया एज्यूकेशनल एण्ड वोकेशनल गाइडेन्स एसोसियेशन का सदस्य बन कर निर्देशन कार्यकर्ता आत्म विकास के लिए क्रियाशील रह सकते हैं। इस अध्याय में अन्तर्राष्ट्रीय से लेकर राज्य स्तरीय एवं अराजकीय अभिकरणों का यथासम्भव परिचय देने का प्रयास किया गया है।

१०

एक भारतीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के लिए न्यूनतम आवश्यक निदेशन कार्यक्रम की रूपरेखा

निर्देशन कार्यक्रम प्रारम्भ करने की कुछ पूर्वावश्यकताएं

(१) प्रशासन को निर्देशन कार्यक्रम की आवश्यकता का आभास करवाना (२) अनुस्थापन कार्यक्रम (क) शिक्षकों का अनुस्थापन (ख) छात्रों का अनुस्थापन (ग) *माता पिताओं का अनुस्थापन* (३) छात्रों की *निर्देशन आवश्यकताओं* का अध्ययन (४) उपलब्ध साधनों का सर्वेक्षण (५) निर्देशन समिति का निर्माण (६) निर्देशन कार्यकर्ताओं को निर्देशन के लिए पर्याप्त समय का प्रावधान (७) कर्मचारी संख्या का प्रावधान (८) निर्देशन कार्यक्रम के लिए कुछ न्यूनतम भौतिक सुविधाओं का प्रावधान (च) निर्देशन कक्ष (छ) सूचनाओं के संकलन एवं संचरण हेतु साधन।

भारतीय विद्यालयों के लिए आवश्यक निर्देशन सेवाएं

(१) वैयक्तिक सूचना सेवा का भारतीय परिस्थितियों में विशेष स्वरूप (क) संचित अभिलेख पद्धति का उपयोग (ख) संचित अभिलेखों का अनुरक्षण (ग) अध्यापकों का वैयक्तिक सूचना सेवा के संगठन में योगदान (घ) अमानकीकृत साधनों के उपयोग पर बल (ङ) वैयक्तिक सूचना सेवा का उपयोग– (अ) शिक्षकों के लिए उपयोगिता (आ) छात्रों के लिए उपयोगिता (इ) माता पिताओं के लिए उपयोगिता।

(२) पर्यावरणीय सूचना का भारतीय परिस्थितियों में विशेष स्वरूप (क) पुस्तकाध्यक्ष का सहयोग (ख) पर्यावरणीय सूचनाओं के संकलन का व्यावहारिक पक्ष (अ) ऐसे सूचना स्रोतों का पता लगाना जहाँ से निःशुल्क अथवा कम व्यय में सूचनाएं प्राप्त हो सकें (आ) राज्य मार्गदर्शन ब्यूरो एवं अभिकरणों से सम्पर्क (ई) व्यावसायिक सूचना पत्रों का निर्माण (ग) प्रत्येक शाला के लिए उपयोगी न्यूनतम पर्यावरणीय सूचनाएं (घ) पर्यावरणीय सूचनाओं के संचरण के अवसर।

शाला निर्देशन कार्यकर्त्ता के उत्तरदायित्व

(१) सत्र के कार्यक्रम की योजना (२) निर्देशन उपसमितियों के काम का समन्वयन (३) मनःस्थापन कार्य (४) व्यावसायिक-वार्ताओं व्यावसायिक सम्मेलनों एवं निर्देशन दिवसों का आयोजन (५) नए छात्रों का अनुस्थापन (६) अध्ययन आदतों के विषय में मार्गदर्शन (७) विषयों के चयन में सहायता (८) व्यवसायों के चयन में सहायता (९) छात्रों को महाविद्यालयों में प्रवेश प्राप्त करने में सहायता (१०) औद्योगिक एवं व्यापारिक प्रतिष्ठानों महाविद्यालयों आदि में भेंट का आयोजन (११) स्थापन कार्य (१२) अभिभावक शिक्षक संगमों का संचालन

उपसंहारात्मक कथन

विगत दो अध्यायों में हमने निर्देशन कार्यक्रम के आयाम तथा विविध प्रवृत्तियों का चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इन अध्यायों में निर्देशन के क्षेत्र में विश्व में जो आधुनिकतम विचारधाराएं एवं प्रवृत्तियाँ प्रचलित हैं उनमें सम्बन्धित विषय चर्चा की गई है। निर्देशन की प्रत्येक सम्भावित सेवाओं से पाठकों को अवगत कराने का आशय यह रहा है कि यदि किसी शाला में सुविधाएं हों और वहाँ के कार्यकर्त्ताओं की इस कार्यक्रम में निष्ठा हो तो वे इन सेवाओं को विधिवत वैज्ञानिक ढंग से आयोजित एवं संचालित कर सकें। जब हमने इन सेवाओं का एक आदर्श रूप प्रस्तुत किया तब हमारे सम्मुख सामान्य भारतीय शालाओं की सीमितताएं स्पष्ट न हों ऐसी बात नहीं। हमारा उद्देश्य सर्वप्रथम पाठकों को निर्देशन कार्यक्रम के एक आदर्श स्वरूप से अवगत कराना था ताकि उनके मन में निर्देशन का एक साफ चित्र बन सके। इसके पश्चात् हम भारतीय परिस्थितियों में क्या हो सकता है इसकी भी चर्चा प्रस्तुत अध्याय में करेंगे। इस सम्पूर्ण अध्याय में इसी विषय की चर्चा की जाएगी। एक सामान्य भारतीय विद्यालय को सामने रखकर उसमें कौन-सी न्यूनतम एवं आवश्यक निर्देशन प्रवृत्तियाँ प्रारम्भ की जा सकती हैं इसकी एक रूपरेखा यहाँ प्रस्तुत की जाएगी। रूपरेखा प्रस्तुत करते समय हमारे विद्यालयों में साधन सुविधाओं की सीमितताओं को विशेषकर ध्यान में रखा गया है। यही कारण है कि इसे बहुत अधिक महत्त्वाकांक्षी न बनाते हुए भी यह ध्यान रखा गया है कि निर्देशन कार्यक्रम की प्रमुख प्रवृत्तियाँ ठीक से चल सकें। जहाँ भी सम्भव हो शालाओं में सामान्यतया उपलब्ध सेवाओं-सुविधाओं का निर्देशन कार्यक्रम में किस प्रकार उपयोग किया जा सकता है इस पक्ष पर चिन्तन किया गया है। ताकि निर्देशन कार्यक्रम का शाला पर कम से कम अतिरिक्त आर्थिक भार हो। जो सुझाव दिए गए हैं वे इस प्रकार के हैं कि निर्देशन कार्यक्रम शाला की प्रमुख धारा के साथ समरूप हो सके। इस कार्यक्रम की रूपरेखा प्रस्तुत करते समय हमारे विद्यालयों के छात्रों की क्या विशेष आवश्यकताएं हो सकती हैं इसका विशेष ध्यान रखा गया है। इस रूपरेखा को प्रस्तुत करने से पूर्व यह कह देना आवश्यक होगा कि यह रूपरेखा कोई जड़ रूपरेखा

नहीं है। यह तो एक प्रस्तावित लचीली रूपरेखा है जिसमें स्थानीय परिस्थितियों सुविधाओं एवं आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए आवश्यक परिवर्तन किए जा सकते हैं और किए जाने चाहिए।

निर्देशन कार्यक्रम प्रारम्भ करने की कुछ पूर्वावश्यकताएं

भारतीय शालाओं के लिए एक निर्देशन कार्यक्रम की रूपरेखा प्रस्तुत करने से पूर्व इस कार्यक्रम की सफलता की कुछ पूर्वावश्यकताएं हैं उनकी हम सर्वप्रथम चर्चा करना चाहेंगे। इन पूर्वावश्यकताओं को ध्यान में रखकर एवं इनकी पूर्ति होने पर ही निर्देशन कार्यक्रम शालाओं में प्रारम्भ करना चाहिए।

(१) प्रशासकों को निर्देशन कार्यक्रम की आवश्यकता का आभास करवाना

अच्छी से अच्छी शैक्षिक योजना भी असफल हो सकती है यदि शाला प्रशासकों की उसमें आस्था न हो और वे यदि उसे महत्त्वपूर्ण न समझें। यह सिद्धान्त निर्देशन कार्यक्रम के लिए भी लागू होता है। जबतक शाला प्रशासक निर्देशन कार्यक्रम को आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण न समझेंगे और जबतक उनकी इस कार्यक्रम में पूर्ण आस्था न होगी तबतक इस कार्यक्रम की सफलता अनिश्चित ही रहेगी। यदि प्रधानाध्यापक ने आस्था न होते हुए केवल दिखावे के लिए इस कार्यक्रम को प्रारम्भ करना स्वीकार कर भी लिया तो न तो इस कार्यक्रम को शाला जीवन में कोई महत्त्वपूर्ण स्थान मिल पाएगा न ही इसके सफल सञ्चालन हेतु आवश्यक साधन सुविधाएं भी प्राप्त हो पायेंगी। जिस योजना को शाला प्रमुख का आशीर्वाद प्राप्त नहीं है उस योजना के सञ्चालन में शाला के अन्य कार्मिकों का भी सहयोग मिलना कठिन है जिसकी कि निर्देशन सेवाओं जैसे कार्यक्रम की सफलता हेतु अत्यन्त आवश्यकता रहती है। शाला प्रशासकों के मन में अनेक शंकाएं उत्पन्न हो सकती हैं जैसे शाला के सीमित आर्थिक एवं अन्य साधनों में यह नया कार्यक्रम प्रारम्भ करना कहां तक वाञ्छनीय है? शाला के पहले ही व्यस्त जीवन में इस नयी प्रवृत्ति का जोड़ना कहां तक उपादेय हो सकता है? इस प्रकार की शंकाओं का समाधान करते हुए निर्देशन कार्यक्रम की आवश्यकता से शाला प्रमुख को अवगत कराना आवश्यक है।

(२) अनुस्थापन कार्यक्रम

निर्देशन कार्यक्रम को सफल बनाने हेतु इसके सञ्चालन में सहायक व्यक्तियों अर्थात् शिक्षक, पुस्तकाध्यक्ष आदि कार्यकर्ताओं, छात्रों एवं अभिभावकों का समुचित अनुस्थापन आवश्यक है। निर्देशन हमारे विद्यालयों, छात्रों एवं अभिभावकों के लिए एक नई सेवा है अतः इसका लाभ छात्रों को तभी मिल सकता है जब सभी सम्बन्धित व्यक्ति इस कार्यक्रम के उद्देश्य एवं प्रवृत्तियों से पूर्णरूपेण परिचित हों।

(क) शिक्षकों का अनुस्थापन—शाला में जब भी कोई नया कार्यक्रम प्रारम्भ किया जाए तो उसकी सफलता के लिए शिक्षकों का समुचित अनुस्थापन

आवश्यक है। शिक्षकों को इस कार्यक्रम की दार्शनिक पृष्ठभूमि उद्देश्य महत्त्व एवं इसके अभिप्रेत अर्थों से पूर्णतया अवगत करा देना चाहिए। इस कार्यक्रम से शिक्षण कार्यक्रम को अधिक सबल बनाने में किस प्रकार सहायता मिल सकती है यह बात शिक्षकों को स्पष्ट करने से उनकी सम्मति एवं सहयोग प्राप्त करने में सुविधा हो सकती है। शिक्षकों के अनुस्थापन में हमें निर्देशन कार्यक्रम में शिक्षकों का सामान्य उत्तरदायित्व क्या होगा यह स्पष्ट करना चाहिए। साथ ही प्रधानाध्यापक के माध्यम से किन किन शिक्षकों को कौन कौन सी विशिष्ट जिम्मेदारी देनी होगी यह भी इस अनुस्थापन कार्यक्रम के दौरान स्पष्ट करना चाहिए।

(ख) छात्रों का अनुस्थापन—निर्देशन कार्यक्रम प्रमुखतया छात्रों को अपनी शैक्षिक व्यावसायिक एवं व्यक्तिगत समस्याओं का हल करने में सहायता करने के उद्देश्य से प्रारम्भ किया जाता है। अतः छात्रों को इस कार्यक्रम से सम्बन्धित समुचित जानकारी होना अत्यन्त आवश्यक है। निर्देशन कार्यक्रम के अन्तर्गत छात्रों के लिए कौन कौन-सी सेवाएँ प्रदान की जा रही हैं तथा इन सेवाओं का समुचित लाभ उठाने हेतु छात्रों से क्या अपेक्षाएँ हैं यह इस अनुस्थापन कार्यक्रम में छात्रों को समझाना आवश्यक है। निर्देशन कार्यक्रम की सफलता के लिए हमारे छात्रों की कुछ रूढ़िगत एवं परम्परागत मान्यताओं को बदलने की आवश्यकता होगी। सामान्यतया यह देखा जाता है कि हमारे बालक अपनी समस्याओं के सम्बन्ध में मुक्त रूप से बात करने में संकोच का अनुभव करते हैं। कदाचित अपनी सीमाओं समस्याओं के सम्बन्ध में अन्य व्यक्तियों से विचार विमर्श करने में संकोच करना हमारी संस्कृति में ही निहित है। इस सांस्कृतिक शीलगुण को जबतक हम परिवर्तित करने में सफल नहीं होंगे तबतक शायद छात्र निर्देशन सेवाओं का पूरा-पूरा लाभ नहीं उठा सकेंगे। दूसरी सांस्कृतिक विशेषता जो हमारे बालकों में पाई जाती है वह है स्वयं निर्णय लेने की कमी। सामान्यतया हमारे बालक अधिकतर निर्णय लेने में अपने माता पिताओं पर निर्भर रहते हैं। या यों कहें कि अधिकतम परिस्थितियों में माता पिता बालकों के सम्बन्ध में निर्णय ले लेते हैं। बालक कौन-से विषय लेगा या कौन-सा व्यवसाय चुनेगा यह माता पिताओं की इच्छाओं पर निर्भर करता है। किसी तरह अनुस्थापन कार्यक्रम में हम बालकों को आत्मनिर्भर बनाने एवं आत्मनिर्णय लेने की ओर प्रवृत्त कर सकें तो शायद निर्देशन कार्यक्रम अधिक लाभप्रद सिद्ध हो सकेगा।

तीसरी विशेषता हमारे बालकों में जो पाई जाती है वह है विशेषज्ञों से अथवा विशेषज्ञ अभिकरणों से सूचनाएँ प्राप्त करने की ओर उदासीनता। उदाहरण के रूप में यदि किसी छात्र को किसी इन्जीनियरिंग कॉलेज में प्रवेश प्राप्त करने से सम्बन्धित सूचनाएँ चाहिए हों तो वह कई मित्रों एवं सम्बन्धियों से इस सम्बन्ध में पूछताछ करेगा बजाय इसके कि वह सम्बन्धित कालेज से लिखकर सूचनाएँ मँगाए। निर्देशन सेवाओं में पर्यावर्णीय सूचना सेवा एक महत्त्वपूर्ण सेवा है अतः छात्रों को

इन सूचनाओं का लाभ उठाने के लिए प्रवृत्त करना चाहिए।

(ग) माता पिताओं का अनुस्थापन—जैसाकि उपरोक्त अनुच्छेद में कहा गया है कि हमारे यहाँ अधिकतर माता पिता अपने बच्चों से सम्बन्धित निर्णय स्वयं लेते हैं और उन निर्णयों को बच्चों पर थोप देते हैं। कभी कभी बच्चों पर माता पिता की ऐसी इच्छाएं आकांक्षाएं थोप दी जाती हैं कि जिनका उन बच्चों की क्षमताओं अभिरुचियों एवं अभिक्षमताओं से कोई तालमेल नहीं बैठता। फलतः छात्रों को प्रत्येक बार असफलताओं का मुँह देखना पड़ता है। अतः यह आवश्यक है कि छात्रों के अभिभावकों को अनुस्थापन में यह समझाया जाय कि हमारी इच्छाएं बालकों पर थोपने की बजाय यदि हम बालक को उसकी क्षमताओं अभिरुचियों एवं अभिक्षमताओं के आधार पर निर्णय लेने में सहायता दें तो शायद यह उनके विकास की दृष्टि से अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकता है। माता पिताओं को इस सन्दर्भ में निर्देशन सेवाओं का क्या योगदान हो सकता है यह भी स्पष्ट किया जाना चाहिए। फिर शाला में निर्देशन कार्यक्रम के अन्तर्गत छात्र की सहायता हेतु कौन कौन सी सेवाएं प्रारम्भ की जा रही हैं इससे भी माता पिताओं को अवगत कराना आवश्यक होगा।

(३) छात्रों की निर्देशन आवश्यकताओं का अध्ययन

भारतीय शालाओं में निर्देशन कार्यक्रम अभी भी एक नई प्रवृत्ति है अतः प्रारम्भिक अवस्था में हम इस कार्यक्रम को एक छोटे पैमाने पर प्रारम्भ करके इसकी उपयोगिता को सिद्ध करने का प्रयास करना चाहिए। इस कार्यक्रम में हम कौन सी गतिविधियों को प्रधानता दें यह हमें सर्वप्रथम निश्चित करना होगा। इन प्राथमिकताओं को निर्धारित करने में छात्रों की आवश्यकताओं को प्रधानता देनी चाहिए। कोई भी कार्यक्रम तभी सफल हो सकता है जब वह छात्रों की मूलभूत अनुभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करता हो। यदि एक विद्यालय में केवल वाणिज्य एवं कला सकाय है तो उसमें साइन्स टेलेन्ट सर्च स्कीम (Science Talent Search Scheme) इंजीनियरिंग कालेज तथा मेडिकल कालेजों सम्बन्धी सूचनाएं एकत्रित करने में धन राशि व्यय करना निरर्थक होगा। निर्देशन कार्यक्रम की हर सेवा की योजना बनाते समय छात्रों की आवश्यकताओं का ज्ञान उपयोगी सिद्ध हो सकता है। अतः इन आवश्यकताओं के अध्ययन को एक महत्त्वपूर्ण पूर्वावश्यकता माना गया है।

(४) उपलब्ध साधनों का सर्वेक्षण

हमारी शालाओं के लिए निर्देशन कार्यक्रम की रूपरेखा बनाते समय इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि इसे कम से कम खर्चीला किस प्रकार बनाया जाए। यदि हम अपनी भौतिक साधन सुविधाओं की सूची बहुत लम्बी बना दें तो सम्भवतः इसके आर्थिक बोझ के कारण हमारे कार्यक्रम को स्वीकृति मिलने में कठिनाई होगी अतः निर्देशन कार्यकर्ता को इस दिशा में अपनी सूझबूझ का प्रयोग करना चाहिए कि किस तरह से उपलब्ध साधन-सुविधाओं का अधिक से अधिक

उपयोग पर रहा न कम अतिरिक्त सुविधाओं की माँग करते हुए निर्देशन कार्यक्रम को प्रारम्भ किया जाए। पुस्तकालय का उपयोग सूचना सेवा के लिए कम किया जा सकता है। शाला में उपलब्ध किसी कमरे का ही निर्देशन कक्ष का रूप दे दिया जाता है। इन बातों की ओर हमारा स्पष्ट ध्यान रहना चाहिए।

जब हम शाला में उपलब्ध साधनों के आधार पर निर्देशन सेवाओं के सृजन की बात करते हैं तो हमारा आशय केवल भौतिक साधनों से ही नहीं है। हमें यह भी देखना चाहिए कि शाला की किन किन प्रवृत्तियों का निर्देशन कार्यक्रम से समन्वय किया जा सकता है। जैसा कि पहले के अध्यायों में कहा जा चुका कि शाला की सक्रिय अभिनव पद्धति एवं पद्धति अनिवार्यीय समायोजन आदि को निर्देशन कार्यक्रम के साथ समन्वित किया जा सकता है। शिक्षक के तात्कालिक कार्यभार में कम से कम उत्तरदायित्व जोड़ते हुए तथा उसके तात्कालिक कार्यों का ही लाभ उठाते हुए यदि हम निर्देशन कार्यक्रम की योजना बनायेंगे तो उसमें अधिक सफलता मिलने की सम्भावना होगी।

अधिकतर शालाओं में हम अंशकालिक निर्देशन कार्यकर्त्ता की ही सेवाएं प्राप्त हो सकती हैं। प्रत्येक शाला में पूर्णकालिक शाला उपबोधक की न तो कल्पना की जा सकती है न ही इसकी स्वीकृति मिलना सम्भव है। अतः शाला के अन्य शिक्षकों की सहायता किस प्रकार निर्देशन कार्यक्रम में ली जा सकती है इसके सम्बन्ध में भी चिन्तन करना आवश्यक है। हम इस सीमा को ध्यान में रखते यदि निर्देशन कार्यक्रम की रूपरेखा बनावेंगे तो हम निराशा का सामना नहीं करना पड़ेगा।

(४) निर्देशन समिति का निर्माण

जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है निर्देशन कार्यक्रम के आयोजन एवं सफल संचालन के लिए एक निर्देशन समिति का गठन आवश्यक। इस समिति की अध्यक्षता प्रधानाध्यापक को करनी चाहिए। इस समिति में निर्देशन कार्यकर्त्ता पुस्तकालयाध्यक्ष तथा ऐसे अन्य अध्यापकों को रखना चाहिए जिनकी इस कार्य में रुचि हो। निर्देशन समिति शाला की आवश्यकताओं साधन-सुविधाओं आदि को ध्यान में रखते हुए निर्देशन कार्यक्रम की रूपरेखा बना सकती है। निर्देशन समिति के प्रमुख उत्तरदायित्व निम्न हो सकते हैं—

शाला की निर्देशन आवश्यकताओं का अध्ययन।

शाला में उपलब्ध साधन-सुविधाओं का अध्ययन एवं उनका निर्देशन कार्यक्रम में कब और कहाँ पर उपयोग किया जा सकता है इसकी आयोजना।

उपर्युक्त दो बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए निर्देशन कार्यक्रम की रूपरेखा का निर्माण।

निर्देशन कायक्रम म अध्यापकों के उत्तरदायित्वों का निर्धारण।
निर्देशन कायक्रम से सम्बन्धित नीति निर्धारण।
निर्देशन तथा अन्य शाला कायक्रमों म समन्वयन स्थापन।
निर्देशन कायक्रम का अनुगमन (Follow up)

निर्देशन समिति निर्देशन कायक्रम क सफल सचालन के लिए कुछ उप समितियों का निर्माण कर सकती हैं जिनको कि निर्देशन कायक्रम के विभिन्न पक्षों का उत्तरदायित्व सौंपा जा सकता है। उदाहरणार्थ एक उपसमिति को वयक्तिक सूचना सेवा का काय सौंपा जा सकता है। दूसरी उपसमिति को व्यावसायिक सूचना सेवा का काय सौंपा जा सकता है। इसी प्रकार आवश्यकतानुसार अन्य उपसमितियों का भी गठन किया जा सकता है। प्रत्येक उपसमिति का भी एक सयोजक होना चाहिए। समय समय पर निर्देशन समिति मिलकर न उपसमितियों द्वारा किए गए कार्यों का सिंहावलोकन कर सकती है।

(६) निर्देशन कायकर्ता को निर्देशन काय के लिए पर्याप्त समय का प्रावधान

यद्यपि हमारे अधिकतर विद्यालयों म अशकालिक निर्देशन कायकर्ता की ही कल्पना की जा सकती है फिर भी निर्देशन काय की सफलता हेतु यह आवश्यक है कि जिस किसी भी अध्यापक को यह काय सौंपा जाय उसे अन्य कार्यों से यथा सम्भव मुक्त रखा जाय ताकि वह निर्देशन कायक्रम का सचालन प्रभावोत्पादक ढग से कर सके। अन्य शिक्षकों की अपेक्षा उसे अध्यापन काय भी कम मिलना चाहिए। उसे कितना अध्यापन काय दिया जाय यह तो विद्यालय विशेष की परिस्थितियों पर निभर करेगा इससे सम्बन्धित कोई सामान्य नियम प्रतिपादित नहीं किया जा सकता। जिस शाला म पर्याप्त अध्यापक हैं वहा निर्देशन कायकर्ता को अध्यापन काय स अधिक मुक्त रखा जा सकता है। जहा अध्यापकों की कमी है वहा निर्देशन कायकर्ता को उतनी सुविधाए नहीं दी जा सकती। हम यहा तो केवल इस सामान्य सिद्धान्त की ओर ध्यान दिलाना चाहते हैं कि जिस सीमा तक निर्देशन कायकर्ता को निर्देशन कायक्रम के लिए समय दिया जायगा उस सीमा तक निर्देशन कायक्रम की सफलता निभर करेगी।

निर्देशन कायकर्ता के काय को प्रभावशाली बनाने के लिए हम एक ओर बात से सावधान रहना चाहिए। सामान्यतया विद्यालयों मे यह प्रवृत्ति पाई जाती है कि जिस अध्यापक के अध्यापन कालांश कम होते हैं उसे या तो किसी अन्य क्लर्कीय काय सौंप दिया जाता है अथवा किसी अनुपस्थित शिक्षक के कालांशों म कक्षाओं म भेज दिया जाता है। यदि निर्देशन कायकर्ता को भी हमने इसी प्रवृत्ति का शिकार बना दिया तो शाला म निर्देशन कायक्रम सफलतापूवक नहीं चल सकता। निर्देशन कायकर्ता को अन्य कार्यों से मुक्त रखने का आशय ही यह है कि वह अपने

कार्य का सचालन सफलतापूर्वक कर सके। वास्तव में देखें तो उसका कार्यभार अन्य शिक्षकों के समान ही नहीं उनसे अधिक है।

(७) क्लर्कीय सहायता का प्रावधान

किसी भी योजना के सफल सचालन हेतु न्यूनतम क्लर्कीय सहायता की आवश्यकता होती है। यदि विशेषज्ञों को क्लर्कीय कार्यों में समय देना पड़े तो यह उनकी क्षमताओं का दुरुपयोग है। यह सिद्धान्त निर्देशन कार्य के लिए भी लागू होता है। यदि निर्देशन कार्यकर्ता को अनेक क्लर्कीय कार्यों में अपना समय एवं शक्ति लगानी पड़े तो उस सीमा तक वह अपनी सेवाएं निर्देशन कार्य को नहीं दे सकेगा। अतः इस कार्यक्रम की सफलता के लिए कुछ न्यूनतम क्लर्कीय सहायता की आवश्यकता होगी जिसका कि यथासम्भव प्रावधान होना चाहिए। उदाहरणार्थ सचित अभिलेख फाइल फोल्डर्स बनाना उन पर छात्रों के नाम आदि लिखना उन्हें सुव्यवस्थित ढग से रखने की व्यवस्था करना निर्देशन कार्यक्रम से सम्बन्धित पत्र व्यवहार का अभिलेख रखना आदि अनेक ऐसे कार्य हैं जिनके लिए यदि उचित क्लर्कीय सहायता मिल सके तो निर्देशन कार्यकर्ता के समय एवं शक्ति की बचत हो सकती है जिसे वह अधिक महत्वपूर्ण कार्यों में लगा सकता है। इस बिन्दु का विशेषकर यहां उल्लेख करने की आवश्यकता इसलिए अनुभव की गई है क्योंकि हमारे विद्यालयों में क्लर्कीय कार्य अध्यापकों पर थोपने की एक सामान्य प्रवृत्ति पाई जाती है।

(८) निर्देशन कार्यक्रम के लिए कुछ न्यूनतम भौतिक सुविधाओं का प्रावधान

हमने इस बात पर कई बार आग्रह रखा है कि निर्देशन कार्यक्रम के आयोजन में विद्यालय में उपलब्ध साधन सुविधाओं का अधिक से अधिक उपयोग करने का प्रयास करना चाहिये। इसका अर्थ यह नहीं कि इस कार्यक्रम के सफल सचालन हेतु कुछ भी अतिरिक्त साधनों की आवश्यकता नहीं होगी। इस प्रवृत्ति प्रारम्भ करने हेतु कुछ न्यूनतम साधन-सुविधाओं का उपलब्ध करना तो स्वाभाविक ही है। अब हमें देखना यह चाहिये कि न्यूनतम अतिरिक्त साधन सुविधाओं की कम से कम मांग करते हुए हम निर्देशन कार्यक्रम का सचालन कैसे कर सकते हैं।

निर्देशन कार्यक्रम के लिए कुछ आवश्यक भौतिक साधन सुविधाओं की सूची यहां प्रस्तुत की जा रही है इसमें विद्यालय विशेष की परिस्थिति के अनुरूप परिवर्तन किया जा सकता है।

(क) निर्देशन कक्ष—निर्देशन कार्यक्रम का केन्द्र ही निर्देशन कक्ष है। निर्देशन कार्यक्रम को सफलतापूर्वक चलाने हेतु एक निर्देशन कक्ष का प्रावधान आवश्यक है। छात्रों को ज्ञात होना चाहिये कि इस कक्ष में आकर हम अपनी समस्याओं के समाधान हेतु सहायता प्राप्त कर सकते हैं। निर्देशन कक्ष के लिए

एक टेबल एक उपबोधक के लिए कुर्सी अतिथियों के लिए कुछ कुर्सियां सामान्य लेखन सामग्री दो अलमारियाँ एक सूचनापट्ट एक छात्रा के सुझावों एवं समस्याओं के लिए पटी तथा एक समस्या वृत्त पेटी आदि कुछ अनिवार्य भौतिक सुविधाएं हैं। इनके अतिरिक्त कक्ष के वातावरण का सुंदर बनाने हेतु जो भी कुछ किया जाय सराहनीय होगा।

(ख) सूचनाओं के सकलन एवं सवरण हेतु साधन—पुस्तकालय में निर्देशन कार्य के निर्मित्त हेतु कुछ अलमारियां डिस्प्ले रेक बुलेटीन बोर्ड आदि का प्रावधान अनिवार्य है। डिस्प्ले रेक एवं बुलेटीन बोर्ड सूचनाओं के सवरण को प्रभावोत्पादक बनाने हेतु आवश्यक है।

भारतीय विद्यालयो के लिए आवश्यक निर्देशन सेवाएं

जैसाकि हम पहले भी कई बार कह चुके हैं हमारे विद्यालयों मे निर्देशन कार्यक्रम एक नई प्रवृत्ति है तथा अधिकतर विद्यालयों मे साधन सुविधाएं भी सीमित हैं अतः प्रारम्भ मे एक व्यापक निर्देशन कार्यक्रम की कल्पना करना निरर्थक होगा। हमारे लिए तो वाछनीय यह होगा कि हम छोटे पैमाने पर इस कार्यक्रम को प्रारम्भ करें और जो भी थोड़ा बहुत कार्य हम कर सकते है उसे अधिक प्रभावोत्पादक ढग से करने का प्रयास करें। बहुत अधिक करने के प्रयास में हो सकता है कि हम कुछ भी उपलब्ध न हो। निर्देशन की सब सेवाएं इन सीमित साधनों में न तो सम्भव है न अनिवार्य भी। प्रारम्भ में तो हम दो प्रमुख निर्देशन सेवाओं को प्रत्येक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय मे प्रारम्भ कर सकते हैं और ये दो सेवाएं हैं (१) वैयक्तिक सूचना सेवा एवं (२) पर्यावरणीय सूचना सेवा। इसका अर्थ यह नहीं कि जिन विद्यालयों में सम्भव हो सके उनमें अन्य सेवाएं प्रारम्भ नहीं करनी चाहिए। उपरोक्त दो सेवाएं तो प्रत्येक विद्यालय में प्रारम्भ की जा सकती हैं। ध्यान रहे कि यहां हम न्यूनतम आवश्यक निर्देशन की चर्चा कर रहे हैं। निर्देशन की समुचित सेवाओं का वर्णन तो हम पहले ही अध्याय चार में कर चुके हैं।

(१) वैयक्तिक सूचना सेवा का भारतीय परिस्थितियों में विशिष्ट स्वरूप

वैसे तो अध्याय ४ में प्रत्येक निर्देशन सेवा के संगठन सम्बन्धी आधारभूत सिद्धांतों की विस्तृत चर्चा की गई है। वे सब सिद्धात तो भारतीय विद्यालयों में प्रारम्भ की जाने वाली निर्देशन सेवाओं के सगठन के समय ध्यान में रखने ही चाहिए। किन्तु भारतीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए इन सेवाओं के संगठन एवं संचालन के समय जो बिंदु विशेषकर ध्यान में रखने योग्य हैं उनकी यहां चर्चा करना आवश्यक होगा। उपयुक्त अनुच्छेदों में पूर्वावश्यकताओं के रूप में कुछ सामान्य सिद्धांतों की तो चर्चा की गई है किन्तु प्रत्येक सेवा से सम्बन्धित कुछ और विशिष्ट निर्देशक तत्त्व होसकते हैं उनकी यहां चर्चा करना कदाचित अनुपयुक्त नहीं होगा। प्रथम हम वैयक्तिक सूचना सेवा के संगठन संचालन

के समय जो बिन्दु ध्यान में रखने योग्य हैं उनकी चर्चा करेंगे तत्पश्चात् पर्यावर्णीय सूचना सेवा से सम्बन्धित बिन्दुओं का उल्लेख करेंगे।

(क) संचित अभिलेख पद्धति का उपयोग—जैसा कि पहले हम उल्लेख कर चुके हैं निर्देशन सेवाओं का निर्माण शाला में उपलब्ध मानवीय सेवाओं के आधार पर होना चाहिए। इससे धन शक्ति एवं समय की बचत हो जाती है। साथ ही निर्देशन कार्यक्रम को शाला समुदाय द्वारा स्वीकृति मिलने में सरलता हो सकती है। संचित अभिलेख पद्धति (Cumulative Record System) आजकल प्रत्येक प्रगतिगामी शाला में अपनाई जाती है। बालकों के व्यक्तित्व के विविध आयामों से सम्बन्धित सूचनाएं एकत्रित करने की कोई न कोई विधि लगभग सभी शालाओं में पाई जाती है। इसी को आधार बनाकर हम व्यक्तिगत सूचना सेवा का निर्माण करना चाहिए। शाला में प्रचलित संचित अभिलेख प्रपत्र में आवश्यकतानुसार सुधार आवश्यक किया जा सकता है।

(ख) संचित अभिलेखों की अनुरक्षण—संचित अभिलेखों के अनुरक्षण के लिए किसी एक शिक्षक को इसका उत्तरदायित्व सौंपना आवश्यक होगा। निर्देशन समिति द्वारा नियुक्त संयोजक अथवा उपसमिति के किसी सदस्य को यह काम दिया जा सकता है। इस शिक्षक को देखना चाहिए कि सम्बन्धित शिक्षक उनसे सम्बन्धित बालकों के संचित अभिलेख समय पर पूरे करते हैं या नहीं। यदि किसी बालक का संचित अभिलेख पूरा न हो तो सम्बन्धित अध्यापक से मिलकर उसे पूरा करवाना भी इसी संयोजक का उत्तरदायित्व होगा। जब विभिन्न शिक्षक इन संचित अभिलेखों को कई बार काम में लेंगे तो उनकी सुरक्षा की ओर विशेष रूप से ध्यान देना आवश्यक होगा। इन अभिलेखों को सस्ती किन्तु मजबूत फाइलों में रखा जा सकता है ताकि ये उपयोग से गन्दे न हों तथा सुरक्षित रहें। इन सब फाइल फोल्डर्स को किसी एक निर्धारित सुरक्षित स्थान पर रखना चाहिए।

(ग) अध्यापकों का वैयक्तिक सूचना सेवा के संगठन में योगदान—भारतीय शालाओं में कक्षाध्यापक पद्धति अथवा दल पद्धति पाई जाती है जिसके अन्तर्गत एक अध्यापक एक कक्षा अथवा एक दल का प्रमुख होता है। इस पद्धति को और अधिक विकसित कर इसका उपयोग निर्देशन कार्यक्रम हेतु किया जा सकता है। प्रत्येक कक्षा अध्यापक अथवा दलपति को उसकी देखरेख में जो बालक हैं उनका वैयक्तिक अध्ययन करने को कहा जा सकता है और उसी शिक्षक को उसकी कक्षा अथवा दल के छात्रों के संचित अभिलेख को पूरा करने का उत्तरदायित्व सौंपा जा सकता है। कक्षा अध्यापक अथवा दलपतियों का कुछ छात्रों से अधिक निकट का सम्बन्ध होता है अतः वे इन छात्रों के संचित अभिलेख अधिक अच्छी तरह से भर सकते हैं। माह में एक शनिवार को अन्तिम दो कालांश संचित अभिलेखों की पूर्ति हेतु रखे जा सकते हैं।

(घ) अमानकीकृत साधनो के उपयोग पर बल— हमने अध्याय ६ मे वयक्तिक सूचना सकलन हेतु प्रयुक्त की जाने वाली विभिन्न प्रविधियो एव उपकरणो की चर्चा की है। किन्तु अधिकतर भारतीय विद्यालयो की परिस्थितियो को ध्यान म रखत हुए यदि हम यह कहे कि हम मनोवैज्ञानिक परीक्षणो पर कम तथा शिक्षक निर्मित अथवा अन्य अमानकीकृत उपकरणो एव प्रविधियो पर अधिक आग्रह रखना चाहिए तो कदाचित अनुचित न होगा। अधिकतर भारतीय विद्यालयो के लिए न तो बहुत अधिक मनोवैज्ञानिक परीक्षणो के लिए धन उपलब्ध करना सम्भव होगा न ही हमारे विद्यालयो म इन परीक्षणो के प्रयोग हेतु प्रशिक्षित व्यक्ति मिलेंगे। फिर इनके क्षेत्र म तो अभी हमारे देश म अच्छे कोटि के मानकीकृत परीक्षा का अभाव भी पाया जाता है। एसी परिस्थितियो म वयक्तिक सूचना सेवा के सगठन के समय निर्देशन कार्यकर्ताओ को ऐसे अमानकीकृत साधन खोजते रहना चाहिए जिनसे व्यक्ति की प्रतिभाओ-अभिरुचियो का पता लग सके। इन साधनो म उपाख्यान वृत्त समाजमितिकी साधन निरीक्षण साक्षात्कार आत्मचरित्र वणन विशिष्ट घटना वर्णन आदि उल्लेखनीय हैं जिनकी अध्याय ६ म पर्याप्त विस्तृत चर्चा की जा चुकी है। इनके अतिरिक्त अनिवारीय सभाओ सास्कृतिक कार्यक्रमो भ्रमणो आदि म बालक के व्यवहारो का अवलोकन कर उनके व्यक्तित्व के विविध आयामो सम्बन्धी सूचनाओ का सकलन किया जा सकता है।

(ङ) वयक्तिक सूचना सेवा का उपयोग —

(अ) शिक्षको के लिए उपयोगिता— यदि हम हमारे विद्यालयो म वयक्तिक सूचना सेवा की स्थापना कर तो इस सेवा का उपयोग अनेको अवसरो पर किया जा सकता है। अध्यापक छात्र एव अभिभावक सभी इस सेवा का उपयोग कर सकते हैं। इस सेवा म उपलब्ध छात्र से सम्बन्धित सम्पन्न वयक्तिक सूचनाओ का उपयोग छात्रो से सम्बन्धित अनेक समस्याओ का हल करने हेतु किया जा सकता है। शिक्षक इस सूचना सेवा का उपयोग कक्षा म नए छात्रो की पृष्ठभूमि को समझने हेतु कर सकते है। छात्रो के समस्यात्मक व्यवहारो को समझने म भी वयक्तिक सूचना सेवा महत्वपूर्ण रूप प्रदान कर सकती है। कक्षा म कौन से छात्र प्रतिभावान हैं कौन पिछडे हुए हैं किन्हे शास्त्रिक पुनःस्थापन की आवश्यकता है आदि एसी महत्वपूर्ण सूचनाए है जिनका उपयोग शिक्षक अध्यापन काय मे कर सकते है।

(आ) छात्रों के लिए उपयोगिता—छात्रो की दृष्टि से तो यह सेवा अत्यन्त महत्वपूर्ण है ही क्योकि छात्र इस सेवा के अन्तगत अपनी क्षमताओ सीमाओ स परिचित हो सकते हैं। यह ज्ञान उन्हे हर महत्वपूर्ण निर्णय लेने मे उपयोगी सिद्ध हो सकता है। विषयो एव व्यवसायो के चयन से पूर्व तो छात्रो को अपनी क्षमताओ अभिरुचियो अभिक्षमताओ एव सीमाओ का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। अत आठवीं कक्षा एव दसवीं तथा ग्यारहवीं कक्षा के छात्रो के लिए यह सेवा विशेष रूप

से उपयोगी सिद्ध हो सकती है। छात्र जब नवमी कक्षा में विषयों का चयन करें तो उपबोधक को वह उनकी क्षमताओं सीमितताओं से अवगत करा देना चाहिए।

(इ) माता पिताओं के लिए उपयोग—माता पिताओं को भी अपने बालकों के विषय में विश्वसनीय एवं सम्पन्न सूचनाएं प्राप्त हो सकें तो इन सूचनाओं का वे अन्य परिस्थितियों में उपयोग कर सकते हैं। समय पर माता पिताओं को यदि अपने बच्चे की दुर्बलताओं का ज्ञान हो जाय तो वे इन न्यूनताओं को दूर करने के उपाय कर सकते हैं। अनेक बार अभिभावक आपत्ति उठाते हैं कि उन्हें उनके बच्चे की कमजोरियों का आभास समय पर नहीं करवाया जाता केवल वर्ष के अन्त में जब बालक किसी विषय में असफल होता है उसी समय उन्हें अपने बच्चे की सीमाओं का पता लगता है। अतः समय समय पर अभिभावक दिवसों का आयोजन कर अभिभावकों को उनके बच्चों की वैयक्तिक सूचनाओं से अवगत कराया जा सकता है। अभिभावक इन वैयक्तिक सूचनाओं का उपयोग छात्रों को विषय अथवा व्यवसाय चयन में सहायता प्रदान करने हेतु कर सकते हैं।

(२) पर्यावर्णीय सूचना सेवा का भारतीय परिस्थितियों में विशेष स्वरूप

अध्याय पांच में पर्यावर्णीय सूचनाओं के संकलन, विश्लेषण, मिमीलीकरण एवं संचरण के सामान्य सिद्धान्तों की चर्चा की गई है। किन्तु भारतीय शालाओं की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए इस सेवा का क्या स्वरूप हो सकता है, अध्याय पांच में वर्णित विधियों में किन पर अधिक आग्रह होना चाहिए आदि बिन्दुओं का स्पष्टीकरण इस अध्याय के कलेवर की दृष्टि से असंगत नहीं होगा।

(क) पुस्तकाध्यक्ष का सहयोग— जैसाकि अध्याय ५ में कहा जा चुका है पर्यावर्णीय सूचनाओं के संकलन विश्लेषण एवं मिमीलीकरण का कार्य पुस्तकाध्यक्ष को सौंपना श्रेयस्कर होगा। हमारे अधिकतर विद्यालयों में अंशकालिक निर्देशकों की ही कल्पना की जा सकती है अतः ऐसी परिस्थिति में तो पुस्तकाध्यक्ष के सहयोग की आवश्यकता और भी अधिक बढ़ जाती है। पुस्तकाध्यक्ष को यह कार्य सौंपने से पूर्व उनको इस कार्य के उद्देश्यों एवं प्रकृति से अवगत कराना आवश्यक होगा। निर्देशन कार्यकर्ता को इस अनुस्थापन कार्य का उत्तरदायित्व लेना चाहिए। पुस्तकाध्यक्ष को उनके उत्तरदायित्वों से पूर्णतया अवगत करा देना चाहिए जिससे इस सेवा का संचालन सुचारु रूप से हो सके। पुस्तकाध्यक्ष के निम्नलिखित उत्तरदायित्व हो सकते हैं —

निर्देशन कार्यकर्ता द्वारा जो सूचना सामग्री की सूची दी जाय उसे सम्बन्धित स्रोतों से उपलब्ध करना।

जैसे ही सामग्री प्राप्त हो उसकी जाँच कर उसका निर्धारित रजिस्टर में खतान करना।

विद्यालय में उपलब्ध समस्त सूचना सामग्री का वर्गीकरण करना एवं

ऐसी सूची बनाना जिससे आवश्यक सामग्री शीघ्रातिशीघ्र उपलब्ध हो सके ।
पुस्तकालय म एक आवश्यक निर्देशन कोण का निर्माण करना ।
नई सूचना सामग्री का प्रदशन करना ।
अनावश्यक एव पुरानी सूचना सामग्री को छाँटकर अलग करना ।
सामग्री के सचरण म सहायता प्रदान करना ।

(ख) पर्यावर्णीय सूचनाओं के सकलन का आर्थिक पक्ष— पर्यावर्णीय सूचनाओं के सकलन हेतु सामान्य विद्यालयो म अधिक धनराशि के प्रावधान की अपेक्षा नहीं की जा सकती । अत निर्देशन कार्यकर्त्ता को सदव इस बात के लिए प्रयास करना होगा कि कम स कम धनराशि म अधिक स अधिक सूचनाओं का सकलन कसे किया जा सकता है । इस दिशा म निम्नलिखित सुझाव उपादेय सिद्ध हो सकने है —

(अ) ऐसे सूचना स्रोतों का पता लगाना जहाँ से नि शुल्क अथवा कम व्यय म सूचनाएं प्राप्त हो सकें— भारतीय शालाओं म काय करने वाले निर्देशन काय कर्त्ताओं को एक बात सदव ध्यान मे रखनी होगी और वह यह कि निर्देशन काय क्रम को कसे कम से कम खर्चीला बनाया जाय । यह बात पर्यावर्णीय सूचना सग्रह के लिए भी लागू होती है । निर्देशन कार्यकर्त्ता को उन सभी स्रोतो का पता लगा कर उनसे लाभ उठाना चाहिए जहाँ स नि शुल्क अथवा कम खर्चीली सूचनाए प्राप्त हो सकती हैं । शिक्षा एव समाज कल्याण मन्त्रालय श्रम एव पुनर्वास मन्त्रालय प्रति रक्षा मन्त्रालय राष्ट्रीय निर्देशन ब्यूरो (एन सी ई आर टी) । राज्य निर्देशन ब्यूरो बाई एम सी ए पब्लिशिंग हाउस कलकत्ता–१६ आदि ऐसे स्रोत हैं जहाँ से कम व्यय म सूचनाए प्राप्त की जा सकती हैं । मसूर स्टेट ब्यूरो आफ एजूकेशनल एण्ड वोकेशनल गा डेंस ने कई शक्षिक एव व्यावसायिक क्षेत्रो स सम्बन्धित सूचनाओं को प्रकाशित किया है जिन्ह नि शुल्क प्राप्त किया जा सकता है । इसी प्रकार महाराष्ट्र सरकार की बम्बई स्थित इस्टीट्यूट आफ वोकेशनल गाइडेंस ने भी कई पर्यावर्णीय सूचनाओं का प्रकाशन किया है जिन्ह इस सस्था से बिना मूल्य प्राप्त किया जा सकता है । भारतवष मे किन किन स्थानो से कौन-कौन सी सूचनाए प्राप्त हो सकती हैं इसकी विस्तृत जानकारी हेतु प्रत्येक निर्देशन कार्यकर्त्ता को एन० सी० ई० आर० टी० से प्रकाश्य पुस्तिका लेनी चाहिए । इस पुस्तिका का नाम है Hand Book for Career Masters इस पुस्तिका को मसूर सर कार के निर्देशन ब्यूरो ने तयार किया है तथा राष्ट्रीय शक्षिक अनुसन्धान एव प्रशि क्षण परिषद् (National Council of Educational Research and Training) ने प्रकाशित किया है । इसे एन सी ई आर टी के पब्लिकेशन यूनिट ६ इस्टन एविन्यू महारानी बाग न्यू देहली–१४ से प्राप्त किया जा सकता है । इसी प्रकार स एक और पुस्तिका Practical Hand Book of Guidance in Seco

ndary Schools भारतीय निर्देशन कार्यकर्त्ताओं के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकती है। इसका निर्माण डा एम एम मोहसीन ने किया है। और बिहार स्टेट ब्यूरो आफ एजुकेशन एण्ड गा डे स ने इसे प्रकाशित किया है उपरोक्त दोनों पुस्तिकाए केवल पर्यावर्णीय सूचना सेवा के संगठन में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण निर्देशन कार्यक्रम के संगठन एवं संचालन में सहायक सिद्ध हो सकती हैं।

(आ) राज्य गाइडेन्स ब्यूरो एवं अन्य अभिकरणों से सम्पर्क —पर्यावर्णीय सूचना पर व्यय कम करने हेतु निर्देशन कार्यकर्ता को राज्य गाइडेन्स ब्यूरो से निरंतर सम्पर्क बनाए रखना चाहिए एवं वहाँ से जो भी सामग्री नि शुल्क प्राप्त हो सके प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। इसी प्रकार स्थानीय नियोजन कार्यालय से सम्पर्क स्थापित कर वहाँ से भी नि शुल्क सामग्री प्राप्त की जा सकती है। स्थानीय एवं प्रान्तीय स्तर पर व्यापारिक एवं औद्योगिक प्रतिष्ठानों तथा शिक्षण संस्थाओं से भी नि शुल्क सूचना सामग्री प्राप्त की जा सकती है।

(इ) व्यावसायिक सूचना स्रोतों का निर्माण—व्यावसायिक सर्वेक्षण के आधार पर शाला मे ही विभिन्न व्यवसायों से सम्बन्धित सूचना पत्रों का निर्माण किया जा सकता है। इसमें छात्रों का भी सहयोग प्राप्त किया जा सकता है। प्रत्येक सूचना पत्र में व्यवसाय के विविध पक्षों से सम्बन्धित सूचनाओं का समावेश होना चाहिए जैसे—व्यवसाय का नाम व्यवसाय के लिए आवश्यक योग्यताए वेतन उन्नति के अवसर कार्य अपेक्षाए आदि। इस प्रकार शाला में व्यवसाय सूचना पत्रों के निर्माण से पर्यावर्णीय सूचना संकलन पर व्यय कम किया जा सकता है।

(ग) प्रत्येक शाला के लिए उपयोगी न्यूनतम पर्यावर्णीय सूचनाए — वैसे तो हमारे पास पर्यावर्णीय सूचनाओं का संचय जितना सम्पन्न होगा छात्रों के सम्मुख हम भविष्य योजना हेतु उतने ही विविध विकल्प प्रस्तुत कर सकेंगे। किन्तु वस्तु स्थिति को ध्यान में रखते हुए हम न्यूनतम अनिवार्य सूचनाओं की सूची बनाकर कम से कम उन्हें एकत्रित करने का प्रयास करना चाहिए। सामान्य रूप से एक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के लिए निम्नलिखित सूचनाए आवश्यक मानी जा सकती हैं।

- शाला में उपलब्ध विषयों से सम्बन्धित उच्च शिक्षण की सुविधाओं सम्बन्धित सूचनाए।
- विभिन्न विषयों के अध्ययन फलस्वरूप व्यावसायिक सम्भावनाओं से सम्बन्धित सूचनाए।
- विभिन्न व्यवसायों से सम्बन्धित सूचनाए। विशेषकर उन व्यवसायों की सूचनाए जो शाला मे पढाए जाने वाले विषयों से सम्बन्धित हों।
- स्थानीय पर्यावरण की व्यावसायिक सम्भावनाओं के विषय में सूचनाए।
- प्रशिक्षण सुविधाओं से सम्बन्धित सूचनाए।
- निर्धन किन्तु मेधावी छात्रों के लिए छात्रवृत्तियों अथवा अन्य शिक्षण

सुविधाओ से सम्बन्धित सूचनाए ।

उपरोक्त सूचनाओ के सकलन के साधन एव प्राप्ति के अभिकरणो का विशद् विवेचन अध्याय ७ म कर दिया गया है अत उसकी यहा पुनरावृत्ति नही की गई है।

(घ) पर्यावर्णीय सूचनाओ के सचरण के अवसर — जैसाकि हम इस अध्याय के प्रारम्भ म कह चुके हैं एक सफल निर्देशन कायकर्ता को शाला की विभिन्न प्रवत्तियो का लाभ निर्देशन उद्देश्यो की पूर्ति हेतु कैसे उठाया जा सकता है इस ओर सदव चिन्तनशील रहना चाहिए। पर्यावर्णीय सूचनाओ के सचरण म भी यह सिद्धान्त लागू होता है। शाला की विभिन्न प्रवत्तियो के मा यम स पर्यावर्णीय सूचनाओ का सचरण अधिक से अधिक करने से एक तो समय की बचत होगी तथा निर्देशन कायक्रम शाला के अन्य कायक्रमो का एक अविभाज्य अग बन जायगा। शनिवारीय सभाए शाला का वार्षिकोत्सव शाला पत्रिका शिक्षक अभिभावक सम्मेलन आदि कुछ ऐसी प्रवत्तिया हैं जो सामान्यतया प्रत्येक भारतीय शाला म पाई जाती हैं। इन अवसरो अथवा प्रवत्तियो का लाभ उठाकर व्यावसायिक वार्ताओ व्यावसायिक सम्मेलनो व्यावसायिक प्रदर्शनियो आदि के माध्यम से पर्यावर्णीय सूचनाओ का सचरण किया जा सकता है। शाला पत्रिका के कुछ सामयिक निर्देशन विशेषाक निकाल कर उनम पर्यावर्णीय सूचनाए प्रसारित की जा सकती हैं। उदाहरणस्वरूप सत्र के प्रारम्भ मे नए छात्रो के लिए शाला के नियमो परम्पराओ सुविधा सेवाओ के सम्बन्ध म सूचनाए दी जा सकती हैं तथा नवमी कक्षा के छात्रो के लिए विषय चयन से सम्बन्धित कुछ उपयोगी जानकारी प्रकाशित की जा सकती है। सत्र के मध्य म अध्ययन आदतो से सम्बन्धित सूचनाए छात्रो के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं। परीक्षा से पूव परीक्षा की तयारी से सम्बन्धित कुछ सुझाव प्रस्तुत किए जा सकते हैं। इसी प्रकार सत्रान्त म उच्च शिक्षा की सुविधाओ शिक्षण सस्थाओ म प्रवेश प्राप्ति कि विधिया व्यावसायिक अवसरो आदि पर प्रकाश डाला जा सकता है।

यदि शाला म सुविधा हो तो इस काय के लिए निर्देशन केन्द्र म एक निर्देशन प्रकाशन विभाग अलग से प्रारम्भ किया जा सकता है जो समय समय पर सचरण बुलेटिन प्रसारित करने का उत्तरदायित्व सम्भाल सकता है।

सूचनाओ की सचरण विधियो की विषय चर्चा अध्याय ७ म भी जा चुकी है अत उनका यहा पुन वर्णन करना अनावश्यक होगा।

शाला निर्देशन कायकर्त्ता के उत्तरदायित्व —

निर्देशन कायकर्त्ता वसे तो समस्त निर्देशन कायक्रम के सफल सगठन एव सचालन के लिए उत्तरदायी होता है। किन्तु विशेष रूप से एक सत्र मे उसे कौन कौन से प्रमुख उत्तरदायित्वो को निभाना है इसका यदि उसे आभास हो तो वह

अपने काय को अधिक कुशलता स निभा सकता है। इन उत्तरदायि त्रा के स्पष्ट विभ के आधार पर वह प्रधानाध्यापक को भी इस बात का आभास करवा सकता है कि इन उत्तरदायित्वा की सफलता स निवान हेतु उसे शाला म अन्य कार्यों स यथा सम्भव अधिक स अधिक मुक्त रखना आवश्यक है। अतएव इस अध्याय म एक करियर मास्टर एव शिक्षक उपबोधक (अशकालिक निर्देशन कायकर्ता) के उत्तर दायित्वा की चर्चा करना आवश्यक समझा गया है।

(१) सत्र के कायक्रम की योजना

निदशन कायक्रम के सफल सचालन हेतु यह आवश्यक है कि निर्देशन काय कर्ता को पूरे वष भर के कायक्रमा की एक योजना बना लेनी चाहिए। इस योजना से प्रत्यक प्रवत्ति का आयोजन प्रभावोत्पादक ढग से किया जा सकता है। वार्षिक याजना बनाते समय शाला की अन्य प्रवत्तियो अवकाशो परीक्षाओं आदि का पूरा पूरा ध्यान रखना चाहिए। ताकि निर्देशन कायक्रमो के आयोजन म कोई बाधा उपस्थित न हो। यह वार्षिक योजना सत्रारम्भ के पर्याप्त समय पूव बन जानी चाहिए। यदि ग्रीष्मावकाश के पूव यह योजना बन सके तो बहुत ही उत्तम होगा। जिसके फलस्वरूप ग्रीष्मावकाश म निर्धारित कायक्रमो की तयारी की जा सकती है। व्यावसायिक वार्ताकारो से सम्पक स्थापित करना व्यापारिक एव औद्योगिक प्रति ष्ठानो की भट के लिए उनकी अनुमति लेना सूचना सामग्री सकलन के लिए सम्ब धित अधिकरणो को लिखना फिल्मो तथा फिल्मस्ट्रिप्स की पूव समीक्षा करना आदि कार्य यदि ग्रीष्मावकाश मे कर लिए जाए तो सत्र के व्यस्त कायक्रम म निर्देशन कार्यक्रम को क्रियान्वित करने म पूण शक्ति एव समय लगाया जा सकता है। यह वार्षिक योजना निर्देशन समिति के परामश से बनाई जाना उपादेय होगा। इस समिति म सामान्यतया प्रधानाध्यापक एव अन्य वरिष्ठ प्रध्यापक होते हैं अत उनकी अनुमति से बन हुए कायक्रम के सचालन म कम स कम बाधाए उपस्थित होने की आशका रहेगी।

(२) निर्देशन उपसमितियो के काय का समन्वयन

यद्यपि व्यावसायिक सूचना सेवा व्यक्तिगत सूचना सेवा निर्देशन प्रकाशन आदि के सचालन के लिए उपसमितियो का निर्माण किया जाना चाहिए, फिर भी इन समितियों को उचित माग दशन देना एव इनके कार्यों के समन्वयन का उत्तर दायित्व निर्देशन कायकर्ता का ही होता है। समय समय पर इन उपसमितियो की बठकें बुलाकर इनके काय का सिंहावलोकन किया जा सकता है भविष्य की योज नाओ पर विचार किया जा सकता है तथा कठिनाइयो के हल ढूढने का प्रयास किया जा सकता है।

( ) अनुस्थापन काय

जसाकि अध्याय के प्रारम्भ म कहा गया है कि निर्देशन कायक्रम की सफ

लता के लिए इस कायक्रम से सम्बन्धित सभी व्यक्तियों का यथोचित अनुस्थापन होना आवश्यक है। यह कार्य निर्देशन कायकर्ता के अतिरिक्त और कोई भी व्यक्ति नहीं कर सकता। अत निर्देशन कायकर्ता का यह भी एक महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व है। उसे प्रधानाध्यापक शिक्षकों छात्रों एव अभिभावकों का अनुस्थापन उचित अवसरों एव उपयुक्त विधियों से करना चाहिए। प्रधानाध्यापक का अनुस्थापन चर्चा द्वारा शिक्षकों का अनुस्थापन अध्यापक मण्डल की बैठकों म अनुस्थापन वार्ताओं द्वारा छात्रों का अनुस्थापन सत्रारम्भ अनुस्थापन वार्ताओं द्वारा तथा अभिभावकों का अनुस्थापन अभिभावक सम्मेलनों के अवसर पर अन्य शिक्षण विधियों तथा चर्चाओं के माध्यम से किया जा सकता है।

(४) व्यावसायिक वार्ताओं व्यावसायिक सम्मेलनों एव निर्देशन दिवसों का आयोजन

निर्देशन कायकर्ता का एक महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व है निर्देशन कायक्रम को लोकप्रिय बनाना एव सूचनाओं का प्रभावोत्पादक विधियों से संवरण करना। इसके लिए निर्देशन कायकर्ता विभिन्न कायक्रमों का आयोजन कर सकता है। इनमें व्यावसायिक वार्ताए व्यावसायिक सम्मेलन निर्देशन दिवस निर्देशन प्रदर्शनियाँ प्रमुख हैं। इन सब प्रवृत्तियों के आयोजन की विधियों की चर्चा अध्याय ७ म की जा चुकी है।

(५) नए छात्रों का अनुस्थापन

अनुच्छेद म हमने छात्रों के निर्देशन कायक्रम के प्रति अनुस्थापन की आवश्यकता पर बल दिया है। यहाँ हम निर्देशन कायकर्ता के एक और उत्तरदायित्व की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहेंगे। प्रत्येक शाला म प्रतिवर्ष कुछ नए छात्र प्रवेश प्राप्त करते हैं उन्हें जितने शीघ्र शाला जीवन की विशेषताओं से अवगत कराया जाएगा उन्हें शाला के वातावरण म समन्वय म उतनी ही सुविधा होगी। शाला भवन शाला की सेवाओं सुविधाओं परम्पराओं अपेक्षाओं आदि से अवगत कराने का कार्य निर्देशन कायकर्ता को सौंपा जा सकता है।

(६) अध्ययन आदतों के विषय म मार्गदर्शन

शाला विषयों म उच्च उपलब्धि हेतु उचित अध्ययन आदतों एव कुशलताओं के विकास की आवश्यकता सर्वविदित है। दुर्भाग्यवश इस ओर हमारी शालाओं म बहुत दुर्लक्ष्य होता है। वैसे तो प्रत्येक विषय अध्यापक का यह उत्तरदायित्व है कि वह अपने छात्रों म विषय से सम्बन्धित उचित अध्ययन आदतों का विकास करे। फिर भी निर्देशन कायकर्ता सामान्य अध्ययन आदतों के सम्बन्ध म छात्रों का मार्गदर्शन कर सकता है।

(७) विषयों के चयन म सहायता

उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों म सबसे बड़ी निर्देशन सेवा हो सकती है

नवमी कक्षा के छात्रों को विषय चयन में सहायता प्रदान करने की। शालाओं में उपलब्ध विभिन्न विषयों की जानकारी देना, विभिन्न विषयों की क्या व्यावसायिक सम्भावनाएं हो सकती हैं, इन विषयों में किस प्रकार की उच्च शिक्षा तथा प्रशिक्षण की सम्भावनाएं हो सकती हैं आदि विषयों से छात्रों को अवगत कराया जा सकता है। विषयों एवं वैयक्तिक योग्यताओं के सम्बन्ध पर भी प्रकाश डाला जा सकता है। छात्रों के साथ उनके अभिभावकों को भी इन सब पहलुओं से अवगत कराना आवश्यक है क्योंकि भारतीय परिस्थितियों में विषय चयन में माता पिताओं की इच्छाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है।

(८) व्यवसायों के चयन में सहायता

प्रत्येक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में कुछ छात्र ऐसे भी होंगे जोकि आगे शिक्षा प्राप्त न कर जीविकोपार्जन के साधन ढूंढना चाहेंगे। निर्देशन कार्यकर्त्ता ऐसे छात्रों की सहायता कर सकते हैं। उनकी योग्यतानुसार कौन से व्यवसायों में प्रवेश मिल सकता है अथवा कौनसी प्रशिक्षण सुविधाएं उपलब्ध हैं आदि विषयों से छात्रों को परिचित कराया जा सकता है। इस कार्य के लिए नियोजन कार्यालयों, औद्योगिक प्रतिष्ठानों आदि से सहयोग प्राप्त किया जा सकता है।

(९) छात्रों को महाविद्यालयों में प्रवेश प्राप्त करने में सहायता

हमारे छात्र महाविद्यालयों में प्रवेश प्राप्ति की सामान्य छोटी मोटी औपचारिकताओं से भी अनभिज्ञ होते हैं। प्रवेश आवेदन पत्र कैसे प्राप्त किए जाते हैं, उनकी पूर्ति कैसे की जाती है आदि कार्यों में छात्रों की सहायता करने से उनकी अनेकों उलझनें दूर हो सकती हैं। उच्च शिक्षा की सुविधाओं की सूचनाएं तो ग्यारहवीं कक्षा के छात्रों को पहले ही दी जानी चाहिए ताकि वे समय पर यह निर्णय ले सकें कि उन्हें किस महाविद्यालय में प्रवेश लेना है।

(१०) औद्योगिक एवं व्यापारिक प्रतिष्ठानों, महाविद्यालयों आदि से भेंट का आयोजन

छात्रों को व्यावसायिक जगत तथा उच्च शिक्षण संस्थाओं के जीवन से परिचित करवाने हेतु निर्देशन कार्यकर्त्ता को समय-समय पर औद्योगिक एवं व्यापारिक प्रतिष्ठानों तथा शैक्षणिक संस्थाओं से भेंट की व्यवस्था करनी चाहिए। इन भेंटों के आयोजन की विशद् रूपरेखा अध्याय ७ में प्रस्तुत की गई है।

(११) प्रकाशन कार्य

निर्देशन गतिविधियों के उचित प्रचार हेतु निर्देशन कार्यकर्त्ता को कुछ प्रकाशन कार्य का भी उत्तरदायित्व सम्भालना होगा। शाला पत्रिकाओं में अथवा अलग से निर्देशन समाचारों अथवा स्तम्भों का प्रकाशन निर्देशन कार्यक्रम को प्रभावशाली बनाने के लिए आवश्यक है। इसी प्रकार व्यावसायिक सूचना पत्रों के निर्माण का भी कार्य निर्देशन कार्यक्रम को कम खर्चीला बनाने में सहायक हो सकता है।

इसके अतिरिक्त शाला के कला अध्यापक एव छात्रा की सहायता से कुछ न्य दृश्य सामग्री का भी निर्माण किया जा सकता है जिससे निर्देशन की विभिन्न सेवाम्रा की गतिविधियाँ प्रभावोत्पादक ढग से प्रस्तुत की जा सकें।

(१२) अभिभावक शिक्षक सगमो का सचालन

निर्देशन कायक्रम की प्रत्येक सेवा म पद पद पर अभिभावको के सहयोग की आवश्यकता होती है। अत निर्देशन कायकर्ता को अभिभावको से निकट सम्पर्क स्थापित करना चाहिए। इसका एक माध्यम अभिभावक शिक्षक सगम है। प्रत्येक शाला म निर्देशन कायकर्ता को इस प्रकार के सगमो की स्थापना एव सचालन का उत्तरदायित्व लेना चाहिए। इन सगमा स शाला और अभिभावका के बीच की दूरी कम हो सकती है तथा अभिभावक शाला की प्रत्येक प्रवृत्ति म अधिक रुचि लेने की सम्भावना बन सकती है। इन सगमा को सुदृढ बनाने हेतु समय-समय पर अभिभावक सम्मेलनो का आयोजन किया जा सकता है। इन सम्मेलनो के अतिरिक्त शिक्षक अभिभावको से समय समय पर घर पर जाकर भी सम्पक स्थापित कर सकते हैं तथा पत्र व्यवहार द्वारा भी अभिभावका के साथ निकट के सम्बन्ध स्थापित किए जा सकते हैं। शिक्षक अभिभावक सगमो को सुदृढ बनाने का उत्तरदायित्व निर्देशन कायकर्ता का ही है। अभिभावक सम्मेलनो का अनुस्थापन कायक्रम तथा सूचना सचरण हेतु किस प्रकार लाभ उठाया जा सकता है इसकी चर्चा पहले ही विस्तार की जा चुकी है।

प्रधानाध्यापको एव शिक्षको को यदि निर्देशन कार्यकर्ता के उपरोक्त वर्णित उत्तरदायित्वो का स्पष्ट ज्ञान हो तो वे निस्सन्देह उसे शाला के उत्तरदायित्वो से मुक्त रख सकते हैं।

उपसहारात्मक कथन

इस सम्पूर्ण पुस्तक म निर्देशन कायक्रम के आधुनिकतम सिद्धान्तो एव कायविधियो का चर्चा करते हुए अत मे भारतीय विद्यालयो क लिए एक न्यूनतम आवश्यक निर्देशन कायक्रम की रूपरेखा प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। प्रथम नौ अध्यायो म आदश परिस्थितियो म निर्देशन सेवाओ का क्या स्वरूप होना चाहिए इसकी चर्चा की गई है जबकि इस अन्तिम अध्याय मे एक सामान्य भारतीय विद्यालय मे कौनसी न्यूनतम निर्देशन सेवाए प्रारम्भ की जा सकती हैं इस ओर सकेत किया गया है। इस न्यूनतम आवश्यक कायक्रम की रूपरेखा को प्रस्तावित करते समय हमारे अधिकाश विद्यालयो की भौतिक एव आर्थिक सीमाओ का पूर्ण रूपेण ध्यान रखा गया है। इस न्यूनतम कायक्रम के अन्तगत कुछ आवश्यक निर्देशन प्रवृत्तियो को सुझाया गया है। इसका अथ यह नहा कि जिन शालाओ मे अधिक साधन सुविधाए उपलब्ध हो वे अन्य सेवाए भ प्रारम्भ करें। फिर इस अध्याय म जो रूपरेखा है जिसम प्रत्येक शाला की एकक आवश्यकताओ साधन

सीमाओं को ध्यान में रखते हुए आवश्यक परिवर्तन किए जा सकते हैं।

इस न्यूनतम कार्यक्रम की रूपरेखा में स्थान-स्थान पर इस बात पर बल दिया गया है कि जहाँ तक हो सके निर्देशन कार्यक्रम की किसी भी प्रवृत्ति में शाला की उपलब्ध सुविधाओं साधनों का अधिक से अधिक उपयोग किया जाना चाहिए ताकि निर्देशन कार्यक्रम शाला पर एक अतिरिक्त भार के रूप में प्रतीत न हो। शाला की अन्य प्रवृत्तियों के साथ इस कार्यक्रम को जितना समन्वित किया जाएगा उतनी ही शीघ्रता से अध्यापक छात्र एवं प्रधानाध्यापक इस कार्यक्रम को स्वीकार करेंगे।

इस अध्याय में न्यूनतम कार्यक्रम प्रारम्भ करने की कुछ पूर्वावश्यकताओं का उल्लेख किया गया है जिनकी पूर्ति के बिना निर्देशन कार्यक्रम सफलता से संचालित नहीं किया जा सकता।

सामान्य रूप से प्रत्येक भारतीय शाला में कम से कम व्यक्तिगत सूचना सेवा पर्यावरणीय सूचना सेवा की स्थापना की जानी चाहिए। इन सेवाओं का भारतीय शालाओं में क्या विशेष स्वरूप हो सकता है इसकी भी इस अध्याय में चर्चा की गई है।

अन्त में एक अंशकालिक शाला निर्देशक के क्या प्रमुख उत्तरदायित्व हो सकते हैं इस ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया गया है। अपने उत्तरदायित्व की पूर्ण जानकारी के बिना कोई भी व्यक्ति प्रभावशाली ढंग से कार्य नहीं कर सकता।

शब्दावली

–अ–

अग्रदर्शी	*Forward looking*
अतिक्रमी	Intruder
अतिरिक्त निर्देशन सेवा	Referral Service
अधिकार पत्र	Bill of Rights
अधिशेष	*Surplus*
अनियन्त्रित प्रेक्षण	Uncontrolled Observation
अनुकूलन	Adaptation
अनुगमन	Follow Up
अनु मिति	Corollary
अनुरक्षण	Maintenance
अनुशास्ति	Sanction
अनुस्थापन	Orientation
अनुस्थापन वार्ताएं	Orientation Talks
अनुज्ञात्मक	Permissive
अभिग्रहण	Assumption
अभिदर्शन	Exposure
अभिदर्शित	Exposed
अभिनति	Bias
अभिनिर्धारण-दत्त	Identification data
अभिप्रेत अर्थ	Implications
अभिमुख-संवाद	Interview
अभिरुचि	Interest
अभिवृत्ति	Attitude
अभिवृत्ति मापनी	Attitude Scale
अभिक्षमता	Aptitude
अभिज्ञान	*Identity*
अभ्युपगम	Assumption
अमानकीकृत	Non Standardized
अपक्रिया	Malfunctioning

अशाब्दिक	Non Verbal
असंरचित साक्षात्कार	Unstructured Interview
अहंमान	Dominance Feeling
अंकन	Scoring
अंशकालिक	Part Time
अंतर्ग्रस्त	Involve
अंतर्वस्तु	Content
अंतर्संचरण	Inter Communication
अन्योन्य क्रिया	Interaction
अर्धप्रक्षेपी प्रविधियाँ	Semi Perjective Techniques
-आ-	
आपद	Hazards
आत्मसिद्धि	Self realization
आत्म विवरणात्मक	Self reporting
आयात	Import
आशंसन	Appreciation
आशावाद	Optimism
-ए-	
एक-एक सम्बन्ध	One to one Relationship
एकाकी	Isolate
एकात्मक	Unitary
एकल	Unique
-उ-	
उपलब्धि परीक्षण	Achievement Test
उपसिद्धान्त	Corollary
उपाख्यानवृत्त	Anecdotal Record
उपप्रमेय	Corollary
-क-	
कार्मिक	Personnel
कार्य-कृत्य	Job-Tasks
-ग-	
गुट	Cliques

–च–

चिह्नांकन सूची	Check List

–त–

तकनीशन	Technician
तात्विक	Metaphysical
तथ्यिक	Factual
तिरस्कृत	Rejected

–द–

द्वंद्व	Conflicts

–न–

निदानात्मक परीक्षण	Diagnostic Test
नियम पुस्तिका	Manual
नियोजन कार्यालय	Employment Exchange
निराशावाद	Passimism
निर्देश-तन्त्र	Frame of reference
निर्धारणमापनी	Rating Scale
निर्भ्रम	Unequivocal
नियन्त्रित प्रेक्षण	Controlled Observation
निर्वचन	Interpretation

–प–

परस्पर व्यापिता	Overlapping
परास	Range
परीक्षण	Test

–प्र–

प्रकार्यात्मक	Functional
प्रबुद्ध	Enlightened
प्रावस्थाकरण	Phasing
प्रविधि	Technique
प्रश्नावली	Questionnaire
प्रशान्तता	Serenity
प्रशासन	Administration

प्रक्षपण	Projection
प्रक्षपीप्रविधियाँ	Projective Techniques
प्राप्तांक	Scores

-प-

पुस्तकाध्यक्ष	Librarian

-पू-

पूर्णकालिक	Full Time
पूर्व परीक्षण	Tryout

-बु-

बुद्धि वैभव	Talent

-भ-

भाग अग्राही प्रेक्षण	Non Participant Observation
भागग्राही	Participant
भागग्राही प्रेक्षण	Participant Observation

-म-

मणिमप्राजलता	Crystal Clarity
मार्ग दर्शन	Refrral
मानकीकृत	Standardised
मिसलीकरण	Filing
मूर्त	Concrete

-स-

सत्तावादी	Authoritarian
समआयुसाथी	Peer Group
समानुपाती	Proportionate
समसामूह	Peer Group
समाजमितिक स्तर	Sociometric status
समाजमिति	Sociometry
समादर-सूची	Honours List
समन्वित	Consolidated

स्वरक	Tone
स्वय आग्रह	Volunteer
स्व वास्तवीकरण	*Self actualization*
सर्वाधिकारी	Totalitarian
सहकालिक	Simultaneous
साधन	Tools
साधन सम्पन्नता	Resourcefulness
साक्षात्कृत	Interviewee
साक्षात्कार	Interview
साक्षात्कारकर्ता	Interviewer
साख्यिक	Numerical
सास्कृतिक प्रतिरोध पश्चता	Cultural Lag
सास्कृतिक आघात	Shock
स्वीकार्य	Acceptable
सूचकाक	Index
सूची	Inventory
सूचीकरण	Indexing
सचरण	Dissemination
सचित अभिलेख	Cumulative Record
सभरण	Supply
सरचित साक्षात्कार	Structured Interview
सरक्षण	Conservation
सस्कृति मुक्त	Cultural Free
सज्ञापन योग्यता	Communicative Ability
यात्रिक	Mechanical
न्यून पार्श्वी	Lopsided
लोकप्रिय	Popular

—व—

वरण	Choices
वास्तववादी	Realistic
वास्तविकता अभिविन्यास	Reality Orientation
विभेदक	Differential
विरुचि	Disgust
विषयी	Subject

व्यावसायिक सर्वेक्षण	Occupational Survey
व्यावसायिक सूचना-सम्मेलन	Career Conference

–श–

शाब्दिक	Verbal
शीलगुण	Traits
शुभाशायी	Well Intentioned

–क्ष–

क्षतिभय	Risk
क्षत्रकार्य	Field Work

शुद्धि पत्र

प० स०	परा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	२	१३	निर्व्यांखी	नि यांखी
३	२	६	वभिन्नय	वभिन्य
५	२	८	राशि के ?	राशि के प्रेषण
६	४	४	क्षतिमय	क्षतिभय
७	३	४	न्पात्व	द्विपात्व
९		२	ध्येया के	शिक्षा के ध्येया का
१५	२	३	असमय हो	असमय होता जा रहा है ।
१६	१	४	व्यवहार को	व्यवहार के
१६	२	४	कार्यात्मक	अकार्यात्मक
१७	३	९	क्षतिमम	क्षतिमय
१९	५	५	कर	के
२	२	१	लोक-हतषी	लोक हितषी
२१	४	१	बजाकुरो	बीजाकुरो
२४	२	९	सिनसिनोटी	सिनसिनेटी
२५	३	३	ड्मन	ड् मन
२९	३	२	पक्ति न	व्यक्ति का न
३४	२	८	को	की
३६	४	७	निश्चिय	निश्चय
३७	१	१	दी जाती थी	दिया जाता था
३७	२	२	तब	तया
३८	४	२	श दावलियाँ	शब्द
३८	४	२	दोना ही पद शब्द	ये दोनो ही शब्द
४१	४	२	हम खीच सके	खीचने का हमने प्रयास किया।
४१	४	२	अभिक्षमाओ	अभिक्षमताओ
५१	४	९	द्विघात्व	द्विघात्व
५७	३	११	न्घात्व	द्विघात्व
६१	२	५	परिमाणस्वरूप	परिणामस्वरूप
६२	१	१७	कुछ मुई	छुईमुई
६३	१	९	चर्चाए	चर्याए

प० स०	पैरा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६८	१	२	सम सामग्री	सम्बन्धित सामग्री
८८	२	१	अनुमिनत	अनभिनत
१ ८	५	३	विशिष्ट मे	विशिष्ट सन्दर्भ मे
१ ९	४	२	कायआयोजन	काय के आयोजन
११६	३	३	हातिमय	हातिमय
१२७	५	६	मरिएम	मरिएम
१३६	१	१	अतवाय	वातावरण
१३६	३	१	होकर	होना
१५६	२	८	निष्कर्षों से विश्वसनीय	निष्कर्षों से कम विश्वसनीय
१७२	१	१	हम प्रमुख	हम तीन प्रमुख
१७४	४	७	स्तरो	उत्तरो
१८८	४	५	I E	C I E
१९६	१	५	प्रतिष्ठानो मे	प्रतिष्ठानो एव अन्य सस्थाओं म
२३२	५	४	सम्पत्ति	सम्मति
२३६	२	११	परिस्थितियो मे क्या	परिस्थितियो म निर्देशन काय कम का स्वरूप क्या
२४१	२	२	बुलेटिन	बुलेटिन
२४५	१	४	कम	कम
२४८	३	१	स्रोतों	पत्रो
२५	२	११	अधिकरणो	अधिकरणो
२५६	–	३१	Shock	Cultural Shock